सूचना

हमारे कार्य्यालय का नाम अब तक मध्यभारत पुस्तक एजन्सी था परन्तु अब उसका नाम "हिंदी साहित्य मन्दिर" ऐसा बदल दिया गया है।

सञ्चालक।

भूमिका

इस पुस्तक के प्रकाशक का आग्रह है कि जो लोकमान्य तिलक का जीवन चरित्र और व्याख्यान संग्रह वे छाप रहे हैं उसकी भूमिका में मैं कुछ लिख दूं। मैंने इस चरित्र को आदि से अन्त तक पढ़ा है। इसके उत्साही और योग्य लेखक ने हमारे चिरस्मरणीय मित्र के पवित्र और उपदेशमय जीवन का संक्षेप में ऐसा अच्छा चित्र खींचा है कि मुझको इसमें भूमिका की गोट लगाना अनावश्यक प्रतीत होता है। मुझे निश्चय है कि सहस्रों नर और नारी इस चरित्र को और लोकमान्य के चुने हुए इन लेखों और व्याख्यानों को उचित आदर के साथ पढ़ेंगे और उससे लाभ उठावेंगे।

बाल गंगाधर तिलक जी से मुझ से पहिले पहिल पूना में सन् १८८८ के आरम्भ में उनके स्थान पर भेंट हुई थी। मैं मद्रास की कांग्रेस से लौट कर आया था। उस समय हम दोनों ही के दो स्वर्गीय मित्र देशभक्त गंगाप्रसाद वर्मा और महादेव वल्लाल नाम जोशी हमारे साथ थे। हम लोगों के विचार का विषय उस समय भी यही था कि किन उपायों से अपने देश को उसकी गिरी दशा से उठावें और देश प्रबन्ध में अपने सहज स्वत्व और अधिकार फिर से स्थापित करें। बत्तीस वर्षों के अनन्तर दैवसंयोग से मैं उस दिन फिर अपने सम्मानित मित्र से उनके स्थान पर मिलने को गया था जो

पूना में उनका पिछले जीवन का अन्तिम दिन था। वे बीमारी से पूरे मुक्त नहीं हुए थे और दुर्बल थे। उस दिन जो बातें उनसे और मुझ से हुई वह देश में पूरा स्वराज्य स्थापित करने के विषय की थीं। उनको इस बात की उत्कट अभिलाषा थी कि हम लोग शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करने के युक्तियुक्त उपाय इस देश में अवलम्बन करें और उसकी प्राप्ति में सहायता पाने के लिये इंगलैंड और अमेरिका तथा अन्य देशों में अपने चुने २ योग्य प्रतिनिधियों को भेज कर उन देश के निवासियों की सहानुभूति अपने उद्देश्य के अनुकूल करें। मेरा विश्वास है कि जब से तिलक जी को विवेक (होश) हुआ और जब तक उनको चेत होश रहा तब तक उनके जीवन का प्रधान उद्देश्य और अभिलाषा यही थी कि किस प्रकार से देश की उन्नति हो औरसे कै देश में अपना राज्य फिर से स्थापित हो।

पिछले सत्तर वर्षों में हमारे देश में अनेक सुयोग्य देश भक्त नेता हुए हैं जिनका नाम भारतवासी श्रद्धा और सन्मान के साथ स्मरण करते हैं और करते रहेंगे। इनमें सब से अधिक आदर के योग्य दादाभाई नौरोजी हैं जिन्होंने साठ वर्ष से ऊपर तक अपने भारतीय भाइयों के मान और कल्याण के लिये लगातार आन्दोलन किया और जिन्होंने आधी सदी के अनुभव के उपरान्त सन् १९०६ की कांग्रेस में देश को यह मंत्र दिया कि स्वराज्य ही हमारे सब राजनैतिक अनादर और हानियों का मारक और सब सुख और सन्मान का एक निश्चित साधन है। और दूसरे अति सन्मानित पुरुष गोपाल कृष्ण गोखले हैं जिन्होंने देश की पवित्र सेवा में अपने को आहुति कर दिया। किन्तु बिना किसी और देश भक्त का

कुछ भी अपमान किये यह कहा जा सकता है कि पिछले बीस वर्षों में भारत की सर्वसाधारण जनता में जो मान और महत्त्व बाल गंगाधर तिलक को प्राप्त था वह किसी दूसरी व्यक्ति को नहीं प्राप्त था। पिछले दो वर्षों में जब से रौलेट ऐक्ट के विरोध में हमारे सन्मानित भाई मोहनदास करमचंद गान्धी जी ने देश को सत्याग्रह का उपदेश किया और विशेष कर जब से उन्होंने पञ्जाब और ख़िलाफ़त के संबंध के आन्दोलन में नई जान डाली, तब से सर्वसाधारण में उनका सब से अधिक मान और महत्व है। किन्तु उसके पूर्व प्रायः बीस वर्ष तक देश में सब से अधिक सन्मानित पुरुष बाल गंगाधर तिलक ही थे। और गान्धीजी का महत्व बढ़ने पर भी तिलक जी का मान अत्यन्त विशाल बना रहा। उनके परलोक गमन का समाचार सुन कर जिस प्रकार समस्त भारतवर्ष ने शोक प्रकाश किया उससे यह बात निर्विवाद सिद्ध है।

इस असाधारण मान का कारण क्या था? वह अनेक कारणों का समवाय था। प्रधान इनमें उनकी गम्भीर, स्वार्थ रहित, भयरहित, धैर्य्य और उत्साहयुक्त अविचल देश भक्ति थी।

"एकै धर्म एक व्रत नेमा। मन वच काय देश में प्रेमा॥"

इसी भक्ति से उन्होंने चालीस वर्ष तक देश की अविच्छिन्न सेवा की। बाल गंगाधर तिलक एक ऊँची श्रेणी के विद्वान थे। उनकी बुद्धि विचक्षण थी। उनकी वाक्शक्ति वैसी ही प्रबल थी जैसी उनकी लेख शक्ति प्रौढ़ थी। बी. ए., एल-एल. बी. की परिक्षाओं को पास कर वकालत करने के अधिकारी होकर एक ऐसे विद्वान, बुद्धिमान, स्वतंत्रता प्रिय नवयुवक का वकालत के प्रलोभनों से मुह मोड़कर,

निर्धनता से स्वयंवर करना, उनके मन के महत्व का प्रमाण है।

उस समय महाराष्ट्र में स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर एक विमल दृष्टि देशभक्त थे। उन्होंने अपनी निबन्धमाला में यह उपदेश कर रक्खा था कि लोगों को ज्ञान सम्पन्न करना देश की उन्नति का सब से उत्तम उपाय है। इस उपदेश को मान कर तिलक जी ने चिपलूणकर जी के साथ विद्या प्रचार के लिये सन् १८८० में पूना में एक नया अंग्रेज़ी स्कूल स्थापित किया। ये संस्थाएं स्वार्थ त्याग के मूल पर स्थापित हुई। इनमें जीवन भर के लिये वही पुरुष सभ्य हो सकते थे जो बीस वर्ष तक शरीर यात्रा के योग्य सहायता लेकर उनमें विद्यादान करने का संकल्प करें। इसमें तिलक जी ने ग्यारह वर्ष तक पढ़ाया और गोखलेजी ने अठारह वर्ष तक और अब तक चालीस सज्जन इसी परिपाटी से इस प्रशंसनीय संस्था के द्वारा देश की सेवा करते आये हैं।

साधारण लोगों में ज्ञान का प्रचार करने के लिये तिलकजी और उनके साथियों ने "केसरी" और "मरहठा" नामक दो पत्र निकाले। "मरहठा" और "केसरी" के लेख बड़े प्रौढ़ और निडर होते थे। उनके द्वारा दिन दिन महाराष्ट्र में अधिक जागृति होती गई। प्रजा के हित की बातों को प्रबल रीति से प्रकाश करने के कारण और अनेक उपायों से प्रजा में एक नये जीवन का संचार करने के कारण तिलकजी दिन दिन अधिकारियों की दृष्टि में खटकने लगे। १८९७ में जब प्लेग के कुप्रबन्ध के कारण पूना में एक अंग्रेज़ मारा गया, तब उनके ऊपर एक राजद्रोह का मुक़द्दमा क़ायम हुआ। उसमें तिलक जी को अठारह महीने की सजा हुई। सात अँग्रेज़ी ज्यूरर्स ने

उनको दोषी बतलाया और दो हिन्दुस्तानी ज्यूरर्स ने निर्दोष ठहराया। उनको सज़ा हुई, इससे सारे भारतवर्ष में उनके साथ सहानुभूति हुई, उनका मान महत्व अधिक बढ़ा। दूसरा बार तिलक जी पर अधिकारियों के प्रोत्साहन से ताई महाराज का मुक़द्दमा हुआ, जिसमें उनको अन्त में विजय हुई। तीसरी बार फिर एक राजद्रोह का मुक़द्मा उन पर सन् १९०८ में दायर हुआ जिसमें उनको छै वर्ष की अति कठोर सज़ा हुई। और चौथी बार सितारा के मैजिस्ट्रेट ने उनसे बीस बीस हज़ार की दो ज़मानतें मांगी, जिसमें भी "हाईकोर्ट" में उनकी विजय हुई। इन सब सङ्कटों में तिलक जी का धैर्य्य अविचल रहा। विरोधी के सामने अथवा विपत्ति के सामने कभी नही झुके। सर्वसाधारण का विश्वास था कि इन सब मामलों में तिलक महाराज निर्दोष थे, और अधिकारियों ने उनकी स्वतंत्रता के दबाने के लिये उन पर यह मुक़द्दमे क़ायम किये और उनको कठिन सज़ा दी गई।

सन् १९०५ से १९०८ तक तिलक जी से और उनके कुछ और देश सेवक देश बन्धुओं से राजनैतिक विषयों में मतभेद रहा। किंतु यह मत भेद देश की उन्नति साधन के उपायों के विषय में था। उद्देश्य में सब दलों में एकता थी। यही बात नूतन-सुधार सम्बन्धि मत भेद के विषय में सत्य है। इसलिये इस स्थान में उसका विस्तार करना उचित नहीं।

विपत्ति में उन्होंने गीता के "दुःखेष्वनु द्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः" स्थितधीः मुनि का वर्णन चरितार्थ कर दिखाया जितनी ही धीरता उन्होंने सङ्कट में दिखाई उतना ही सर्व साधारण का प्रेम और भक्ति भाव उनमें बढ़ता गया।

तिलक जी का सनातन धर्म में प्रेम और अपने देश के प्राचीन गौरव का सदभिमान, और उनके रहन सहन की सादगी, और स्वार्थ-त्याग, उनका पवित्र-चरित्र, और उनका सुख में भी और संकट में भी अपने जीवन का प्रति क्षण, देश की उन्नति के कार्य्य और विचार में अर्पित करना—इन गुणों ने लाखों प्राणियों के हृदय में उनका बड़ा ऊंचा आसन बना दिया। गवर्नमेंट दल के प्रतिनिधि उनके शत्रु सर वेलं-टाइन चिरोल ने उनका प्रभाव तोड़ने के लिये जो एक भारी पुस्तक लिखी यह बात भी उनके महत्व बढ़ाने वाली हुई।

तिलक जी का पाण्डित्य गम्भीर था। 'ओरायन' और 'वेदों में आर्य्यों का आर्कटिक होम' इन ग्रन्थों से उनकी बड़ी ख्याति हुई थी। किन्तु अन्त की छः वर्ष की सज़ा में जो उन्होंने भगवद् गीता रहस्य लिख कर अपना असामान्य पांडित्य प्रकट किया और उसमें अपने देशवासियों को और समस्त जगत को सदा के लिये गीता के लोक परलोक हित-कारी उपदेशों से अभ्युदय और निःश्रेयस साधन करने का उत्कृष्ट मार्ग दिखाया। यह उनका सब से भारी कार्य्य उनके यश को अनंत समय तक जगत में जीवित रक्खेगा। ऐसे बहुगुण सम्पन्न महान पुरुष संसार में कभी कभी जन्म लेते नका उदाहरण लोक के लिये मंगलकारी है।

प्रयाग
२३ दिसम्बर
१९२०

मदनमोहन मालवीया।

विषय-सूची

विषय ... पृष्ठ

लो० के राष्ट्रीय सन्देश ७

तिलक-प्रशंसा १४

लो० तिलक का जीवन चरित्र

लो० के पूर्वज २५

लो० का विद्याध्ययन काल २६

लो० का राजनैतिक जीवन

सन् १८८० से १८६१ तक ४१

सन् १८६१ से १८६७ तक ५०

सन् १८६७ से १६०८ तक ६१

ज़मानत का मुकद्मा और जेल ७०

सन् १६१४ से १६२० तक ८५

लो० के जीवन का रहस्य और सार ६४

लो० के लेख और व्याख्यान

१—भारत धर्म महामण्डल १०१

२—सर्व सामान्य लिपि १०८

३—राजनैतिक स्थिति ११५

४—क्या शिवाजी राष्ट्रीय वीर न थे ? १२०

५—विशुद्ध स्वदेशी १२३

६—राष्ट्रीय शिक्षा १२५

७—रिआया के हक़ १३४

विषय			पृष्ठ
८—जैन धर्म की प्राचीनता	...	...	१३८
९—कर्मयोग	...	...	१४५
१०—कैफ़ियत	...	...	१४८
लो० तिलक के 'स्वराज्य' पर ११ व्याख्यान		...	१५२
ज़बरदस्ती भर्ती	...	...	२२९

विलायत के लेख और व्याख्यान

भारत क्या चाहता है ?	...	...	२३२
हिन्दुस्थान और स्वयं-निर्णय	...	...	२६४
हिन्दुस्थान क्या चाहता है	...	...	२७०
सन्धि-परिषद् को आवेदनपत्र	...	...	२७५
केम्ब्रिज युनीवर्सिटी ...	...	...	२८२
पंजाब के अत्याचार ...	...	...	२८२

विलायत से भारत में वापिस लौटने पर

बम्बई का व्याख्यान ...	...	...	२८४
आन्दोलन जारी रक्खो	...	...	२८५
सुधार कानून रुपये में दो पैसे है	...	...	२८६
कांग्रेस के लोकशाही दल की नीति	...	...	२८९

चित्र-सूची

विषय	पृष्ठ
१. लो० तिलक (सन् १९२०)	२५
२. लो० तिलक (सन् १८९२)	५१
३. लो० तिलक (सन् १९००)	५१
४. लो० तिलक कुटुम्ब सहित	५१
५. लो० तिलक गणेशोत्सव में (सन् १९०६) ...	८२
६. लो० तिलक मंडाले जेल से मुक्त होने के बाद (सन् १९१४)	८२
७. लो० तिलक केसरी ऑफिस में कार्य्य करते हुए ...	१०१
८. लो० तिलक का शव-दर्शन	९४
९. लो० तिलक के शव-दर्शन के लिये उमड़ी हुई महिलायें	१४८
१०. शान्ति-शय्या	२३२
११. प्रयाग में लो० तिलक के अस्थियों का जुलूस ...	२८२

लोकमान्य के सन्देश

यदि तुम स्वाधीन होना चाहो तो स्वाधीन हो सकते हो, और अगर आज़ाद होना पसंद नहीं करते तो नीचे गिरोगे और सदा गिरे ही रहोगे। आज़ाद होने के लिये हथियार उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हारे पास लड़कर विरोध करने की ताक़त नहीं है तो क्या तुम में इतना आत्म संयम और आत्म-त्याग भी नहीं है कि तुम विदेशी सरकार को सहायता देना बन्द कर सको? अगर है, तो तुम कल से ही स्वाधीन हो।

तुम्हें अपने शासकों का एक बात में अनुकरण करना चाहिये। जिस प्रकार एक कलेक्टर के चले जाने पर दूसरा आकर उसका काम संभाल लेता है उसी प्रकार एक सार्वजनिक काम करनेवाले का स्थान खाली होने पर दूसरों को आगे बढ़ना चाहिये।

'मैं होमरूलर हूं' यह बात कहने को तैयार होजाओ डांवाडोल रहने से कुछ हाथ न आ सकेगा। कह दो और ज़ोर के साथ कह दो कि हम स्वराज्य ले कर मानेंगे। और मैं दावे के साथ कहता हूं कि तुम्हारे तैय्यार होते ही तुम्हें स्वराज्य मिल जायगा। इस में कुछ भी राज विद्रोह नहीं है। क्या तुम तैय्यार हो?

चाहे मेरी निन्दा हो या प्रशंसा; आज मर जाऊं अथवा नौकर शाही द्वारा कल मारा जाऊं, मुझे उसकी परवाह नहीं। किन्तु मेरा यह सच्चा उद्देश्य कि ! 'भारतीय स्वतंत्र हों,' नष्ट नहीं हो सकता।

लोकमान्य के सन्देश।

हे जननि भारत ! तूही सब सुखों का भाण्डार है। संसार में तुझ से बढ़कर कोई दूसरा देश नहीं। मैं मर कर भी यही चाहता हूं कि तेरी गोद में फिर आऊं। जब तक तेरे दुःख दूर न हों, तू स्वतंत्र न हो, तब तक यहीं यह जीवात्मा जन्म ले।

स्वराज्य का अर्थ यही है कि हमें देवता (सम्राट्) के पुजारियों (नौकर शाही) को अलग कर देना हैं; देवता को रखना है पर इन पुजारियों की कोई आवश्यकता नही।

(स्वराज्य प्राप्त करना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे मैं प्राप्त करके रहूंगा। जब तक यह भावना मेरे हृदय में जागृत है, तब तक मैं वृद्ध नहीं हूं। इस इच्छा को शस्त्र भुला नही सकता, अग्नि जला नही सकती, पानी गला नही सकता और हवा उडा नहीं सकती। अपने ही घर का प्रवन्ध करना तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा उसका अधिकारी तब तक नही हो सकता जब तक कि हम नाबालिग या पागल न हों।

स्वराज्य प्राप्ति के लिए उद्योग करना ईश्वर के प्रति-अपना कर्तव्य पालन करना है। परमात्मा इस समय महर-बान है और उसने हमें बड़ा अच्छा मौक़ा दिया है। इस समय ज़रूरत है कि हम आपस के जाति और विचार भेदों को भुलाकर आगे बढ़ें और कर्तव्य के मैदान में निर्भय होकर आडटें।

वेदान्त कहता है कि अगर आदमी कोशिश करे तो वह स्वयं 'ईश्वर' हो सकता है। अगर ऐसा है तो फिर तुम किस तरह कह सकते हो कि हम स्वराज्य नहीं पा सकते।

अगर स्वराज्य के अधिकार मुसलमानों को, राजपूतों को, या छोटी से छोटी या अन्त्यज जाति को दे दिये जावें तो मुझे कुछ परवाह नहीं। क्योंकि उस समय हमारा आपस का मामला रहेगा। इस समय तो सिर्फ़ एक ही फिकर रहनी चाहिए—वह यह कि नौकरशाही के हाथों से अपने हाथों में किस प्रकार सत्ता आसकती है।

आप को सुबह-शाम, उठते-बैठते, सदैव यह प्रार्थना करनी चाहिये कि स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा उसका अधिकारी तब तक नहीं हो सकता जब तक कि तुम नाबालिग़ या पागल न हो। जब तक कि तुम कष्ट सहने के लिये तैय्यार नहीं हो, तब तक तुम्हें कुछ भी नहीं मिल सकता।

स्वराज्य प्राप्त करने के लिए हमें प्रचण्ड स्वार्थ त्याग करना पड़ेगा। हमें इसके लिए मरने तक की भी आवश्यकता होगी। पर मरने के दो रास्ते हैं। एक वैध और दूसरा अवैध। हमारी लड़ाई वैध है, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर हमारी मौत भी वैध होनी चाहिए। हम इसके लिए कभी बेक़ानूनी और अत्याचार प्रेरक उपायों का अवलम्बन न करेंगे।

स्वराज्य हमारा हक़ ही नहीं वरन् हमारा धर्म है जैसे अग्नि से उष्णता, तन से प्राण, अलग नहीं हो सकते वैसे ही स्वराज्य हम से अलग नहीं हो सकता।

स्वराज्य मांगना राजविद्रोह है, यह बात बिलकुल झूंठ है। राजद्रोह का मतलब राजा का द्रोह करना है। लेकिन राजा का मतलब 'सिपाही' कदापि नहीं है। यदि आप यह कहें कि अमुक पुलिस के सिपाही को निकाल दो, तो क्या

यह राजद्रोह कहलायगा ? लेकिन सिपाही तो ऐसा ही समझता है ।

अंधेरी रात से बिना गुज़रे जिस प्रकार सूर्य्य का प्रकाश नहीं दिखाई दे सकता, उसी प्रकार आपत्तियों, यंत्रणाओं और लोगों की घुड़कियों को पार किये बिना स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

अब विरोध तथा प्रार्थना करने के दिन गये । अब हमें स्वावलम्बन के तत्व को धारण कर दिखला देना चाहिए कि हम सब तरह से योग्य हैं । यही सफलता की कुंजी है ।

स्वराज्य के मार्ग पर चलते रहो और बीच में कोई कुछ कहे तो बिलकुल मत सुनो । तुम सदा कहने को तैयार रहो कि अमुक वस्तु हमारी है और हम उसको लेकर ही हटेंगे ।

मंत्र सिद्ध होने तक उस मंत्र के देवता हर प्रकार से डराते धमकाते हैं । परन्तु उन धमकियों की परवाह न करने से और निर्भय रहने से मंत्र सिद्ध हो जाता है । इसी प्रकार स्वराज्य के मंत्र को निर्भीकता से जपते रहो ।

आपत्ति से डरना मनुष्यता को खो बैठना है । आपत्तियां हमें बड़ा लाभ पहुंचाती हैं । कठिनाइयां हमारे हृदय में साहस तथा निर्भीकता उत्पन्न करती है, जिनसे सुरक्षित होकर हम भारी से भारी कष्टों का सामना आनन्दपूर्वक कर सकते हैं । वह जाति, वह राष्ट्र, जिसके मार्ग में कष्ट नहीं है, उन्नति नहीं कर सकती । इसलिए हमें कष्टों का स्वागत करना चाहिए ।

आप सरकार को भरपूर सहायता दीजिए ; पर साथ ही, यह भी जिम्मेदारी उस पर रख दीजिए कि वह आपके दुःखों को दूर करे । यह बात किसी देश में नहीं हो सकती कि हम

पैसा तो पहले देदें और सरकार हमारे दुःख पीछे सुने। पैसा मांग लेना, सहायता ले लेनी, पर कुछ अधिकार न देना, यह बात अनोखा है। हमें सरकार को यह बतला देना चाहिए कि पैसा तभी मिलता है जब हृदय जीते जाते हैं।

सुधार का क़ानून क्या है? उसने हमको रुपये में सिर्फ़ दो पैसे का अधिकार दिया है और नौकरशाही चाहती है कि हम उसीको लेकर १० वर्ष सन्तुष्ट रहें। पर जब तक हमें पूर्ण स्वराज्य नहीं मिलेगा तब तक हम संतुष्ट नहीं हो सकते पहले करो और पीछे कहो।

राजनीति में उदारता नाम का कोई शब्द नहीं है। स्वार्थ की घोषणाओं पर मीठा लेप करने के लिए ही उदारता का उपयोग किया जाता है।

राजा का कर्तव्य है कि वह ऐसे काम करे, जिन से राष्ट्र का अभ्युदय, लाभ और उन्नति हो और वह दूसरे राष्ट्रों की बराबरी में अभिमान से खड़ा हो सके।

मेरा मत यह है कि कोई गवर्नमेंट चाहे वह इंग्लैण्ड की हो, चाहे कहीं की हो, गवर्नमेंट की हैसियत से उसका एक प्रकार का कर्तव्य है, धर्म है और दायित्व है। जब इस दायित्व की वह उपेक्षा करे तो मैं कहता हूं कि वह गवर्नमेंट ही नहीं। गवर्नमेंट का जो साधारण लोगों पर प्रभुत्व है, चाहे वह उसने युद्ध में जीतकर प्राप्त किया हो या लोगों ने ही उसे सौंपा हो तथापि गवर्नमेंट के कुछ कर्तव्य अवश्य हैं। हमारे आपके जैसे कुछ कर्त्तव्य हैं वैसे ही, जिसे हम गवर्नमेंट कहते हैं उसके भी कर्त्तव्य हैं।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि "सफ़लता दिलाने वाली पांच चीज़ों में एक दैव भी है" दैव यह एक मौक़ा है,

जो ईश्वर आप को देता है। चाहें तो आप उससे लाभ उठालें। अभी दैव आपके अनुकुल है। अभी आपको अपनी माँगें सामने लाना चाहिए। यह समय है। अगर आप इस वक्त आगे बढ़ने में असफल हुए तो दुनिया आपसे बहुत आगे बढ़ जायगी और आप बहुत पीछे रह जावेंगे।

पहले समझौता करने की कोशिश करना; परन्तु कदाचित् उसमें सफलता न हो तो विरोध करने की पूरी शक्ति संग्रह करना ही सच्ची राजनीति है। जिस समय श्री कृष्ण पाण्डवों की तरफ़ से सन्धि का संदेश लेकर कौरवों के पास गये थे, उस समय दोनों ही पक्ष एक दूसरे का सामना करने के लिए सैन्य सामग्री भी एकत्र कर रहे थे।

इस सुनहले अवसर को खोकर आप अपना ही बुरा कर लेंगे वरन् अपने भावी सन्तानों के हितपर भी कुठाराघात करने का अपराध करेंगे। आप के नाम से आपकी भावी सन्तति शर्मायगी और आगे आने वाली कई पुश्तें आपको कोसा करेंगी। धैर्य्य रखकर काम करते चले जाइए। लोहे को गर्म हालतही में कूटना अच्छा होता है। आप को विजय का गौरव प्राप्त होगा।

एक विदेशी भाषा का अध्ययन ज़बरन भी किसी जाति के सर मढा जाना भारत को छोड़ कर-और संसार के किसी देश में देखने में नहीं आता। यह भी एक गुलामी का मेडल है। यातो हमें आगे बढ़ते चले जाना चाहिये या इन आन्दोलनों को छोड़ देना चाहिए। अब नौकरशाही से ज़्यादा आशा करना व्यर्थ है। अमेरिका में स्वतंत्रता की घोषणा पांचवें तथा छठे दर्जे में पढ़ाई जाती है। हमें ऐसी शिक्षा क्यों नहीं दी जाती जिससे हमारे हृदयों में देशप्रेम की तरङ्गें उठें-कारण

स्पष्ट है हमारे हाथ में हमारा शासन नहीं है और इसलिए हम स्वराज्य चाहते हैं।

राजनीति देश का वेदान्त है। उस परदे को फाड़ डालिए जो मूर्ख और स्वार्थान्ध लोगों ने बीच में लगा रखा है।

राजकीय और धार्मिक शिक्षा जुदी नहीं है ये दोनों एक ही हैं। विदेशी शासन के कारण ये जुदी जुदी मालूम होती हैं।

लौकिक स्वाधीनता पर ही भौतिक स्वाधीनता अवलम्बित है।

कर्मयोग संसार को-असार नहीं मानता। वह केवल यही कहता है कि हमारे कर्म निष्काम और सुविचार पूर्ण होना चाहिए उनमें स्वार्थ की बूभी काम की नहीं।

आप चाहे भिन्न भिन्न पोशाक पहनें, भिन्न भिन्न भाषा बोलें, भिन्न भिन्न धर्मों का-आचरण करें पर याद रखिए आप सब भारतमाता की सन्तान हैं और परस्पर भाई भाई हैं। जब तक आप विभक्त होकर रहेंगे तब तक आप स्वाधा . नहीं हो सकते।

हमारे धर्म की वर्तमान स्थिति वाञ्छनीय नहीं है। इससे हममें जुदाई का भाव बहुत छागया है और एकता का भाव छिन्न भिन्न हो गया है। अब हमें जुदे जुदे पंथों के क्षुद्र भेद भावों को भूल जाना चाहिए तभी हम हिन्दू-राष्ट्र को बहुत बलवान् शक्ति बना सके हैं।

यदि तुम देश को एक सूत्र से बांधना चाहते हो, तो देश भर में एक राष्ट्र-भाषा का प्रचार करो। इससे बढ़कर दूसरी शक्ति नहीं है।

मैं भी उन लोगों में से हूं जो कहते हैं कि हिन्दी ही भारत की भावी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए।

अंतिम संदेश

देश के लिये जिसने अपने जीवन को बलिदान कर दिया है, मेरे हृदय मन्दिर में उसी के लिए स्थान है। जिसके हृदय में माता की सेवा का भाव जाग्रत है; वही माता का सच्चा सपूत है। इस नश्वर शरीर का अब अंत होना ही चाहता है। हे! भारत माता के नेताओं और सपुतों! मैं अंत में आप लोगों से यही चाहता हूं कि मेरे इस कार्य्य को उत्तरोत्तर बढ़ाना।

राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य जो इस समय हमारे सामने है, इतना महान् और विस्तृत एवं इतना ज़रूरी है कि मेरी अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह और साहस से भारत माता के सब पुत्रों को एक होकर उसका पालन करना चाहिए यह एक ऐसा कार्य्य है कि जिसे हम आगे के लिए टाल नहीं सकते। भारत माता हममें से प्रत्येक को पुकार पुकार कर कह रही है कि उठो, कमर कसो, और काम में लग जाओ!! मेरा कर्तव्य है कि मैं आपसे प्रार्थना करूं कि माता की इस पुकार पर आपस का समस्त मतभेद भूल जाओ और राष्ट्रीय आदेशों की प्रत्यक्ष मूर्ति बनजाने का उद्योग करो। माता के इस कार्य्य में न प्रतिद्वन्द्विता है, न द्वेष है, और न भय है, ईश्वर हमें हमारे उद्योगों का फल प्रदान करेगा, और यदि उस सफलता को हम न भी प्राप्त कर सके तो यह निश्चय है कि भारत की भावी सन्तान उसे अवश्यमेव प्राप्त कर लेगी।

। श्री ।

तिलक-प्रशंसा ।

म० गान्धी—"भारत का प्रेम लोकमान्य तिलक के जीवन का श्वासोच्छ्वास था। उनका धैर्य्य कभी कम न हुआ और निराशा उनको छू तक नहीं गई। उनके अलौकिक गुणों को धारण करना ही उनका स्मारक है"।

म० मालवीयजी—"उन्होंने देश के लिये असीम आपत्तियां उठायीं, क्योंकि भारत का प्रेम ही उनके हृदय की प्रधान भावना थी" मरते दमतक "स्वराज्य" ही उनका ध्येय रहा।

म० अरविंदघोष—उन्होंने बिन्दु का सिन्धु बनाया और टूटी फूटी अपूर्व सामग्रीसे स्वराज्य की एक भारी हवेली तैयार की।

ला० लाजपतराय—तिलक की मृत्यु के कारण भारत का प्रथम श्रेणी का देश भक्त और अर्वाचीन हिन्दुस्थान का एक स्फूर्ति दाता चल बसा।

मि० चिंतामणि—लोकमान्य कठिन से कठिन संकट आने पर भी अपने उद्देश से च्युत न होते थे। देश के लिये उन्होंने अपनी सारी आयु खर्च कर डाली।

मि० बिसेंट—वे भारत के लिये जिये और लड़े एवं भारत-हेतु मरे भी; क्योंकि भारत के लिये उठाये कष्टों ने ही उन का जीवन क्षीण कर दिया।

प्रो० नटराजन्—लो० तिलक की बुद्धिभव्य, साहस निर्भय और जीवन निष्कलङ्क था।

प्रि० पराँजपे—तिलक का शत्रु भी इस बात को स्वीकार करेगा कि उनमें बुद्धिमत्ता, स्वार्थत्याग और देश भक्ति भरी थी।

सरचन्द्रावरकर—उन्होंने जिस धैर्य्य से देश के लिये युद्ध किया, वही धैर्य्य अन्त में मृत्यु और रोग के साथ युद्ध करने में भी दिखाया। तिलक ने अपना नाम इतिहास में चिरस्मरणीय बना दिया।

बंबई टाइम्स—तिलक की राजनैतिक चढ़ाई बड़ी भयानक थी; किसी देश के राजनैतिक उथल पुथल के इतिहास में उसकी जोड़ नहीं मिलेगी।

वज्रपात।

[ले० भारतीय आत्मा]

(१)

वज्रपात ? मर मिटे हाय हम ?—रोने दो, संहार हुआ।
कसक कलेजे फाड़, दुखी हैं, बुरे समय पर वार हुआ।
नभ कम्पित हो उठा, करोड़ों में यह हा! हा! कार हुआ,
नहीं हाथ से गिरा भंवर में, जो मेरा पतवार हुआ।
मैं ही हूँ, मुझ इकलौती ने, अपना जीवन धन खोया।
रोने दो, मुझ हत भागिनी ने, अपना मनमोहन खोया।

(२)

खड़ा हुआ निःशंक शिवाजी पर बलि होना सिखलाया,
जहां सताया गया, तहां वह शीश उठा आगे आया।
बाग़ी दाग़ी कहलाने पर, ज़रा न मन में मुरझाया,
अगणित कंसों ने सन्मुख सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया।
जहां प्रचारा गया, वार रण करने को तैयार रहा,
मातृ भूमि के लिये, लड़ाका मरने को तैयार रहा।

(३)

"तूं अपराधी है, तूने क्यों भारत के गाये गीत वृथा।
"तूं ढोंगी है, बकता फिरता है तुच्छ देश की कीर्त्ति-कथा,"
"तुझसों का रहना ठीक नहीं ले देता हूं काला पानी,"
हे वृद्ध महर्षि हिला न सकी कायर जज की कुत्सित बाणी।
तूं सहसा निर्भय गर्ज उठा, "काला पानी सहजाऊं मैं,
मेरे कष्टों से भारत मा के बन्धन टूटे पाऊं मैं॥"

(४)

मैं 'मुंह बन्दी' का हार लिये, 'मत लिखो' कठिन कंकण धारे,
'भारत रक्षा' के शूलों की पावों में बेड़ी झनकारे,
'हथियारन लो' की हथकड़ियां, रौलट का हिय में घाव लिये'
डायर से अपने लाल कटां, कहती थी, अंचल लाल किये,
ये टूट पड़ेंगे, जरा केसरी कम्पित कर हुंकार उठे।
हां, आन्दोलन के धन्वाको तू कर में ले ठंकार उठे॥

(५)

काश्मीर कुमारी सुनते थे,-"भारत मेरा अविभाज्य रहै।
"धन वैभव का, सुख साधन की धुन, जीवन में सब त्याज्य रहै

"मैं जीता, जीता, जीता, हूं, माता के हाथ स्वराज्य रहे
"दहलादूं सात समुद्रों को, कहला लूं-हां, बल जान लिया
"लो. अपना अपना राज्य करो, अधिकार तुम्हारा मान लिया
"बलि होने की परवाह नहीं मैं हूं, कष्टों का राज्य रहे

[६]

मैं बूढ़ा हूं, दिन थोड़े हैं, चल बसने ही की बारी है
जब तक भारत स्वाधीन न हो, तब तक न मरूं, तैयारी है
मज़बूत कलेजों को लेकर, इस न्याय दुर्ग पर चढ़ो चलो
वह धन लाओ जीवन लाओ, सब आओ, लाओ दृढ़ डोर लगे
प्यारा स्वराज्य कुछ दूर नहीं, बस तीस कोटि का ज़ोर लगे

[७]

हां दूर नही यह वज्र गिरा ! लाखों ममतायें चूर चले।
सदियों बन्धन में बंधी हुई; माकी आंखों के नूर चले।
क्या भारत का पथ भूल गये, या होकर यों मजबूर चले।
भैया नैया भवरों में है, बलवन्त अचानक दूर चले।
तुम पर सब बलि बलि जावेंगे, हे दानव घालक लौट पड़ो।
भावों के फूल चढ़ावैगे, हो भारत पालक लौट पड़ो।

[८]

क्यों चल बसना स्वीकार हुआ, बोली-बोलो किस ओर चले,
ये तीस करोड़ किसे पावैं, क्यों इन सब के शिर मौर चले ?
क्यों आर्य देश के तिलक चले, क्यों कमज़ोरों के जोर चले ?
तुम सहसा उस ओर चले, यह भारत मा किस ओर चले ?
" दुखिया के जीवन लौट पड़ो, मेरे घन गर्जन लौट पड़ो।
जसुधाके मोहन लौट पड़ो, सित काली मर्दन लौट पड़ो।

[९]

शुचि प्रेम बीज, सब हृदयों में, गाली खाते खाते बोया,
सद्भावों से उसको सींचा, उसका भारी बोझा ढोया।
हां,-राष्ट्रीय पने को रक्खा-तूने अपने पन को खोया,
गोपाल कृष्ण के जाने पर, तू आशुतोष सहसा रोया!
तेरा हुंकारों का फल था; अगणित वीरों ने प्राण दिया,
राष्ट्रीय शक्ति ने तुझ से ही, अमृतसर में था त्राण लिया।

[१०]

तुझ को अब कष्ट नहीं देंगे, हाथों में झण्डा ले लेंगे,
मण्डाले के क्या, शूली के कष्टों को सादर झेलेंगे।
इग्लैंड नहीं, नभ मण्डल में, हम तेरे हैं, हो आवेंगे,
तू ने नरसिंह बनाए हैं, अपना तिलकत्व दिखावेंगे।
तू देख, देश स्वाधीन हुआ, उस पर हम लाखों जियें मरे।
बस इतना कहना मान तिलक! हम तेरे शिरपर तिलक करें।

[११]

अपने, प्राणोंपर खेल गया, तू जेल गया, संहार हुआ।
तुझपर चिरोल के दोष लगे,-पीछे से कायर वार हुआ!
बूढ़ा क़ैदी लौटा ही था, बस लड़ने को तैयार हुआ,
घोषणा प्रकाशित होते ही, पण्डों में हा हा कार हुआ।
हुंकार सुनी, वह न्याय मरा, विजयी सिंहासन डोल उठा,
"इसकी न सुनो तो इज्जत है"-वह नीति विधाता बोल उठा!

(१२)

भारत को कुछ अधिकार मिलें? ना, वह अधिकारों योग्य नहीं,
लकड़ी, पानी ढोने वालों को राज्य शक्तियां भोग्य नहीं।
सागर की छाती चीर बली, अधिकार उठाने टूट पड़ा।

उस पार्लमेण्ट के कर से सहसा रीफार्म एक्ट यह छूट पड़ा।
"मेरे जीते पूरा स्वराज्य भारत पावे अरमान यही"
बस शान यही, अभिमान यही, हम तीस कोटि की जान यही।

(१३)

स्वार्थी देवों को दूर हटा, तुम भरत खण्ड में बास करो।
यह असहकारिता का युग है, तुम आओ यहां प्रवास करो।
जो तुमको पाना इष्ट हुआ, तो आया क्यों न यहां पर वह।
श्री कृष्ण चोर है! चला गया जीवन सर्वस्व चुरा कर वह।
बन्दी होवे वह दया हीन, तू भारतीय आज़ाद रहे।
वह स्वर्ग टूट कर गिर जावे, यह आर्य भूमि आबाद रहे॥

---

(१)

शोक! शोक!! हा शोक!!! भाग्य भारत का फूटा!
जीवन धन सर्वस्व हमारा किसने लूटा?
वज्रपात! क्या सुना, हृदय से धीरज छूटा!
हा! स्वराज्य के सुदृढ़ किले का फाटक टूटा!
रङ्कों की निधि लुटगई, देश हुआ कंगाल है!
बिना तिलक सूना हुआ, भारत मा का भाल है!

कालिकाप्रसाद "कमल"

(१)

जिसने अपने देश-प्रेम से देश जगाया
जिसने था स्वातंत्र्य-सुधा-रस प्रेम पिलाया
सिंह-नाद जिस का सुनकर ब्रिटेन अकुलाया
लखकर जिस के कर्म कंप उठी कर्ज़न-काया!
भारत का वह पेशवा-हाय, कहां जाता रहा?
टूट गया है स्तम्भ वह; जो आश्रय-दाता रहा!

(२)

मंडाले का क़िला, तिलक तप-कुटी कहाई ?
"छः वर्षों की कैद" वीर ने वहीं बिताई !
नई शक्ति के साथ बोल दी पुनः चढाई ?
सत सिंधुकर पार, न्याय की लड़ी लड़ाई !
इस साहस को देखकर, था ब्रिटेन थहरा गया !
कूट-नीति-विष-कुम्भ में पावन न्याय समा गया !

रमाशंकर-अवस्थी (रमेश)

(१)

भारत के सौभाग्य तिलक का अंतिम दर्शन कर लीजे
ध्रुव तारा निज जीवन पथ का पाठक इन्हें बना लीजे
मुक्ति आपकी हो जावेगी इष्ट वस्तु मिल जावेगी
भारत माता की जलती छाती ठंडी पड़ जावेगी

(पाटलीपुत्र)

(१)

लोकमान्य, हे न्याय निष्ठे, जनता के नायक।
आत्मत्यागी, देश के सुहृद सहायक॥
देश भक्ति का पाठ पढ़ाने वाले मानो।
पुरुष सिंह गीता रहस्य के लेखक ज्ञानी॥
यों इस स्वराज्य की नाव को अध बिच छोड़ कहां चले।
हा हा ! स्वदेश से मुख मोड़ नाता तोड़ कहां चले॥

रूपनारायण पाण्डेय

लो० तिलक का जीवन चरित्र

लेखक—

श्रीयुत विनायक सीताराम सरवटे,

बी. ए., एल-एल्. बी.,

स्वर्गीय लोकमान्य

पं० बालगंगाधर तिलक

स्नेहं दयां तथा सौख्यम् यदि वा जानकी मपि ॥
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

लोकमान्य तिलक की अकल्पित मृत्यु पर भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी शोक सूचक सभाओं, व्याख्यानों और विभिन्न स्मारक-प्रस्तावों के द्वारा जो आदर और जो श्रद्धा प्रकट हुई है उसका रहस्य, उसका आदि कारण है उनकी आजीवन तपस्या। इसी प्रकार उनके सीधे-सादे सरल शब्दों और शब्दाडम्बर-प्रधान वक्तृत्व-गुण से हीन व्याख्यानों का जो प्रभाव कन्या-कुमारी से लेकर काश्मीर तक और करांची से लेकर कामरूप तक जादू की तरह होता था, उसका बीज भी वही उनकी उत्तरोत्तर विकसित होनेवाली दीर्घ तपश्चर्य्या है। कालेज-कम्पाउण्ड में ही लोकमान्य ने तपाचरण का जो वट-बीज बोया था, वह उनकी अवस्था, ज्ञान और अनुभव की वृद्धि के साथ साथ निरन्तर पुष्टि और वृद्धि पाता गया और मृत्यु-समय तक बहुल शाखाओं और जटाओं से युक्त हो गया था, यहां तक कि जीवन-काल में वे अपने ढंग के एक ही तपस्वी, एक ही महा-

भाग, एक ही नेता, कहलाये और मृत्यु के बाद तो उनके विपक्षियों, प्रतिस्पर्द्धियों और शत्रुओं तक ने दो दो आँसू उन के नाम पर बहाये—उस महात्मा के प्रति अपनी विरोधभक्ति का प्रायश्चित्त किया ! लोकमान्य के इस घोर तप का, आजीवन कर्म्मयोग का, पता उनके जीवन की प्रत्येक घटना से मिलता है। उनके जीवन-वाद्य का प्रत्येक तार, उनके कार्य्य-कुसुम का प्रत्येक सौरभ-रेणु, उनके विचार-सागर की प्रत्येक उत्तुङ्ग तरङ्ग, उनके कठोर तप-साधन की स्फूर्ति-जीवन दायिनी कहानी कहते हैं ! उनके व्याख्यानों ने न केवल महाराष्ट्र में ही जीवन डाला ; बल्कि सारे भारत में स्फूर्ति का सञ्चार किया है और प्रसङ्ग उपस्थित होने पर इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञों को भी मोहित किया है। परन्तु यह केवल उनके वक्तृत्व का ही फल नहीं। उनकी कठिन तपस्या का अवश्यंभावी परिणाम है।

उनके भाषण निःसन्देह अनेक गुणों से परिपूर्ण होते थे। निर्भ्रम, असन्दिग्ध, स्पष्ट और निर्भीक भाषा में वे अपने विचार प्रकट करते थे। उनकी विवेचन पद्धति सरल और प्रतिपादन शैली प्रभावकारक थी। परन्तु केवल इसी कारण लोग उनके शब्दों को वेदवाक्य नहीं मानते थे। उनके इन गुणों के आगे एक अलौकिक तेज था। वह था, उनके निष्काम कर्ममय जीवन का। यही तेज, यही बल, उनके भाषणों का जीवन रस था। भारत में उन्होंने अधिकतर व्याख्यान अपनी मातृभाषा मराठी में दिये हैं। अनुवाद में मूल का ओज, तेज, और प्रभाव साधारणतः नहीं आ सकता। परन्तु लोकमान्य के व्याख्यानों के विषय में यह भी अपवाद माना जा सकता है, उनके अनुवादों का भी लोगों के हृदय पर प्रायः वैसा ही प्रभाव होता है। क्योंकि उनके भाषणों का प्रभाव उनके

भाषण पटुता या भाषा-चातुर्य्य में नहीं था, बल्कि उनकी कर्मयोगिता और जनता के हृदय में उससे उत्पन्न अत्यन्त आदर और श्रद्धा में था। अतः उनके व्याख्यानों का स्वारस्य जानने के लिए उनके स्फूर्तिकर कर्ममय जीवन का इतिहास जानना महत्वपूर्ण है।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का जन्म ठीक उसी प्रकार एक महत्वपूर्ण राजनैतिक घटना के किंचित् पूर्व हुआ जैसी कि आपकी मृत्यु शासन-सुधार की योजना अमल में आने के थोड़े ही पहले हुई। जिस प्रकार आप इस मर्त्यभूमि से चल बसे, वैसे हो सन् १८५७ मे भारतीयों को अशान्ति का पहला उद्रेक होने के थोड़े ही पहले, स० १८५६ के जुलाई मास में आपने इस कर्मभूमि में पदार्पण किया। आपके पिता कोंकण प्रान्त में एक शिक्षक थे।

लोकमान्य के जो गुण—विलक्षण तेजस्विता, निश्चय, स्वाभिमान, इत्यादि—थे, वे उन पर सारे भारतखण्ड की भक्ति और प्रेम उत्पन्न करने में कारणीभूत हुए वे उनके घराने में पहले ही से सङ्क्रान्त होते आये थे। इनके परदादा श्रीयुत केशवराव पेशवों के ज़माने में अज्ञन गाँव महाल के मामलेदार थे। बाजीराव पेशवा के कम्पनी-सरकार के हाथों में पेशवाई का उदक छोड़ने के पश्चात् १८१८ ईसवी में इस नवीन सरकार ने केशवराव को पहले ही की तरह मामलत करने की आज्ञा की। परन्तु उस स्वाभिमानी पुरुष को यह बात पसन्द न हुई। रोटी के टुकड़ों के लिए हर किसी की सेवा में देह अर्पण करने पर वे तैयार न हुए। उन्होंने उत्तर दिया कि जिस देह से स्वराज्य में एक स्वामी की सेवा की, उसी देह से दूसरे विदेशी स्वामी की सेवा नहीं हो सकती।

यह कहकर उन्होंने मामलेदारी से सदा के लिए नमस्कार कर लिया। बलवन्तराव जी के पिता भी इसी प्रकार उग्र और स्वाभिमानी थे। रत्नागिरी की पाठशालाओं में वे बहुत वर्षों तक हेडमास्टर रहे। वे अपने काम में बड़े सच्चे थे और उनके प्रति विद्यार्थियों की बड़ी भक्ति थी। परन्तु अफ-सरों की खुशामद करते फिरना अथवा उनकी सख्त-सुस्त बातें सहन करना वे स्वप्न में भी न जानते थे। जिन दिनों वे हेडमास्टर थे, शिक्षा-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी ने एक आज्ञा प्रकाशित की। उसका उद्देश यह था कि असिस्टेन्ट मास्टरों से ऐसे इकरारनामे लिखवा लिये जायँ कि हम नौकरी न छोड़ेंगे। यह हुक्म इनके पास भी आया। उन दिनों असिस्टेन्ट मास्टर का वेतन ३) मासिक से प्रारम्भ होता था! तिस पर भी उन बेचारों से इस प्रकार का इक-रारनामा लिखवाने का हुक्म जारी किया गया, यह बात गङ्गाधर पन्त को अच्छी न लगी। आज्ञा-पत्र के अनुसार उन्होंने इकरारनामे तो लिखवा लिये; परन्तु जिस रिपोर्ट के साथ उन्होंने उन्हें आगे बढ़ाया उसमें लिख दिया कि अफ्रिका के गुलामों की जितनी क़द्र है उतनी भी इन अँगरेज़ी मास्टरों की नहीं है। यह बात उनके वेतन के अङ्कों और इकरार-नामा लिखवाने की इस प्रथा से स्पष्ट दिखाई देती है*

---

*जब गङ्गाधरपन्त का तबादला रत्नागिरी से हो गया तब वहा के नाग-रिकों की ओर से उन्हें 'पान-सुपारी' देने का जलसा दिया गया। उस समय सभापति के स्थान पर विद्वन्मणि सर डा० रामकृष्ण पन्त भाण्डारकर सुशोभित थे। उन दिनों आप वहा के अंगरेज़ी स्कूल के हेडमास्टर थे। उस समय आपने जो उद्गार प्रकट किये उनसे गङ्गाधर पन्त की योग्यता का अनुमान किया जा सकता है। आपने कहा—"इनकी बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता,

इस प्रकार की निर्भय स्पष्टोक्ति और तेजस्विता लो० तिलक के वंश की पूर्वपरम्परा ही थी।

लो० तिलक का विद्याध्ययन लड़कपन में उनके घरीपर हुआ। उनके पिता उत्तम शिक्षक माने जाते थे। उनकी बड़ी ख्याति थी। गणित और व्याकरण उनके प्रिय विषय थे। मराठी-व्याकरण पर गङ्गाधर पन्त ने एक छोटी सी पुस्तक सरल रीति से लिखी है। उस समय वह बहुत लोकप्रिय हुई थी। त्रिकोणमिति पर मराठी में सब से पहले उन्होंने ग्रन्थ-रचना की इसके लिए दक्षिण-प्राइज़-कमिटी से उन्हें पारितोषिक भी मिला था। हमारे चरित-नायक की भावी गणित-प्रवीणता भी, इस प्रकार, पितृ परम्परागत थो यही नही, बल्कि उसकी बुनियाद भी उनकी उसी शिक्षा में पड़ चुकी थी जो उन्हें लडकपन में अपने पिता के द्वारा मिली थी।

बलवन्तराव जी ने अंगरेज़ी शिक्षा पूने में ग्रहण की। जब वे मैट्रिक-कक्षा में थे तभी दुर्दैववश उनके पिता ने इह-लोक की यात्रा समाप्त कर दी। १८७२ ई० में लोकमान्य मैट्रिक पास हुए और डेक्कन कालेज में अपना नाम लिखाया।

कल्पकता, सदयता, निस्पृहता, परोपकारिता, और निरालस्य वर्ताव, ये गुण आधुनिक लोगों के लिए अनुकरणीय हैं। यदि कोई मुझ से पूछे कि प्राचीन समय में गुरु किस प्रकार के होते थे तो मैं आपकी ओर उंगली उठा कर कहूंगा कि वे ऐसो सीधी-सादी रहन सहन के, परन्तु अपूर्व बुद्धि सम्पन्न, थे। यदि इनका कोई सच्चा परखैया होता तो ये कभी के उच्च पद पर पहुंच गये होते। परन्तु इनकी वास्तविक परीक्षा करने वाला कोई नही मिला और जो परीक्षक आये भी तो इनमे वह गुण न दिखाई दिया जिससे उन्हें सन्तोष हो क्योंकि सुज्ञ जन उसे त्याज्य मानते है। यही कारण है जो आज १७ वर्षों से ये यही पड़े हुए हैं।

१८७६ ई० में बी. ए., और अगले, तीन वर्षों में अर्थात् १८७९ ई० में एल, एल० बी. की परीक्षा में सम्मिलित हुए और सफलता प्राप्त की।

विद्यार्थि-दशा से ही तिलक महाराज के सत्यप्रीति, स्वाभिमान, स्वीकृत कार्य्य के लिए हर तरह के कष्ट सहन करने की तैयारी, विद्वत्ता इत्यादि गुणों के चिह्न दिखाई देने लग गये थे। जब वे मराठी मदरसे में पढ़ते थे तब, एक दिन, इनके पास बैठने वाले कुछ लड़कों ने मूंगफली खाई और उनके छिलके क्लास में ही डाल दिये। जब मास्टर आये तो उन्होंने पूछा कि यह कूढ़ा किसने किया है? इस पर अन्यान्य लड़कों के साथ तिलक देव का भी नाम लिया गया। फलतः मास्टर साहब ने इन्हें भी कूढ़ा बुहार डालने की आज्ञा की। पर इन्होंने तो मूंगफली खाई थी ही नही। और लड़के कूड़ा हटाने लगे; पर ये उनमें शामिल न हुए। बात बहुत बढ़ गई और अन्त को बलवन्तराव अपना बस्ता उठाकर घर चले आये; पर कूड़ा न हटाया। दूसरे दिन मास्टर ने इनके घर चिट्ठी भेज कर पुछवाया कि इन्हें मूंग-फली दी गई थी या नहीं? उन्होंने दरजे के लड़कों से भी पूछ ताछ की। अन्त को यही प्रकट हुआ कि बलवन्तराव ने मूंगफली खाई ही नहीं थी। तब फिर वे अपने क्लास में आये। इसी तरह, जब ये हाईस्कूल में थे, तब एक बार संस्कृत-शिक्षक ने इनके दर्जे के समस्त विद्यार्थियों से कहा कि नैषध काव्य का अनुवाद लिख लो। बलवन्तराव को उसकी ज़रूरत नहीं थी। इसलिए उन्होंने उसे नहीं लिखा। कुछ दिन के बाद शिक्षक को यह हाल मालूम हुआ। उसने तिलक से जवाब तलब किया। उन्होंने कहा–स्वयं अनुवाद करने से

जितना लाभ होता है उतना दूसरे के अनुवाद पर अवलम्बित रहने से नहीं होता। इसलिए मैंने आपका अनुवाद नहीं लिखा और न लिखूंगा ही। शिक्षक को उनका यह जवाब कुछ पट तो गया; परन्तु आज्ञा-भङ्ग पर क्रोध हो आया। अन्त को बात बढ़ गई और हेडमास्टर तक पहुंची। हेडमास्टर के कहने पर भी बलवन्तराव ने ध्यान नहीं दिया। तब उन्होंने हुक्म दिया कि या तो स्कूल छोड़ दो या सज़ा कुबूल करो। सुनते ही बलवन्तराव ने बस्ता बग़ल में दबाया और घर का रास्ता लिया! जब ये कालेज में थे तब इनकी पाठ्य-पुस्तकों में स्काट का 'केनिलवर्थ' उपन्यास भी था। उसमें ब्लंट नाम का एक "यथानाम तथा गुणः" पात्र है। उस पात्र का हृदय निर्मल परन्तु बेमुरव्वत है। किसी का घमण्ड नहीं चलने देता। छोटे-बड़े, विद्वान्-अविद्वान् सबके साथ एक सा बर्ताव रखता है। चित्त को जो बात पटती है उसी के अनुसार आचरण करता है। बलवन्तराव के साथ इस पात्र का बहुत कुछ साम्य था। इसलिए उनके सहाध्यायी उन्हें "ब्लंट" के नाम से पुकारा करते थे।

हाईस्कूल तथा कालेज दोनों जगह उनके अच्छे गणितज्ञ होने की ख्याति रही। उनके समय में गणित के प्रोफेसर थे हथार्न वटे साहब। बहुत बार ऐसा होता था कि कोई जटिल सवाल आजाता और वे उसे 'कल पर' ढकेल दिया करते। ऐसे अवसर पर बलवन्तराव क्लास में प्रोफ़ेसर साहब के आने के पहले ही बोर्ड पर उस प्रश्न को हल कर के छोड़ दिया करते। दो चार बार जब ऐसी घटना हुई तब प्रोफ़ेसर साहब विद्यार्थियों को शङ्का समाधान करने, और कठिनाइयां हल करने के लिए बलवन्तराव के पास भेज दिया करते।

गणित की तरह संस्कृत में भी बलवन्तराव की उत्तम गति थी। यहां तक कि वे संस्कृत में ऊंचे दरजे की कविता भी लिख लेते थे। कालेज जीवन में लिखी गई उनकी कुछ कविताओं के नमूने श्री० कृष्णाजी अरबाजी गुरुजी ने अपने लिखे तिलक-चरित में दिये हैं।

बलवन्तराव जी का निश्चय जिस विषय में वे मन लगाते उसी में दिखलाई पड़ता। जब वे कालेज में भरती हुए तब उनका शरीर बिल्कुल दुबला-पतला था। कुछ दिनों बाद उन्हें शारीरिक सामर्थ्य प्राप्त करने की ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गये। दो तीन वर्ष खूब मन लगा कर व्यायाम किया और इतना उत्तम शरीर-सामर्थ्य प्राप्त कर लिया कि कारागृह वास के सदृश कठिन सङ्कट को भोग कर भी वह मृत्यु-समय तक उनके लिए काफ़ी रहा। पहले जहां उन्हें चौबीस डण्ड लगाना कठिन होता था तहां अब वे आठसौ डण्ड और आठसौ बैठक लीला ही लीला में करने लगे। जिन्हें मामूली सर्दी सहन करने की शक्ति नहीं थी वे दो दो घण्टे पानी में डूबे रहते। १८९९ ईसवी में बलवन्तराव काशी गये। उस समय दशाश्वमेध घाट पर भागीरथी का पात्र कोई १३०० फ़ीट चौड़ा था। आप उस घाट पर गङ्गा नहाने गये। मित्रों में चर्चा चली कि देखें कौन कितनी सरल रेखा में तैरकर गङ्गापार जा सकता है। पांच सज्जन गङ्गा में कूद पड़े। सिर्फ़ दो पुरुष उस पार जा सके। उनमें से एक थे हमारे चरित-नायक। आप सरल रेखा से २२ फीट नीचे जाकर पार पहुंचे थे। उस समय आपकी अवस्था ४३ वर्ष की थी। प्रौढ़ अवस्था में आप इतने शक्तिसम्पन्न थे। इससे यह अनुमान हो

सकता है कि कालेज जीवन में कैसा और कितना व्यायाम किया होगा।

बलवन्तराव जी की विद्यार्थि-दशा की एक और घटना यहां उल्लेख योग्य है। उससे यह ज्ञात होगा कि उनके भावी जीवन के विचारों की नींव कितने पहले से और कितनी गहरी पड़ चुकी थी। जब बलवन्तराव कालेज में गये तब वहां के अधिकांश विद्यार्थी धर्म्म का तिरस्कार करने वाले थे। उनका ख़याल था कि पुराने रीति-रिवाज, प्राचीन आचार-विचार ये सब मूर्खता-पूर्ण हैं। अतएव बहुतों ने उन से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था। छूआछूत के विचारों को "ढोंग" की मद में ढ़केल कर वे उनसे कोसों दूर रहते थे। परन्तु बलवन्तराव के गृह संस्कार भिन्न प्रकार के थे और उन्हें क़ायम रखना ही उनकी मनोदेवता को उचित जान पड़ा। जो संस्कार अनेकों युगों से हमारे अस्थिमांस मे पैबस्त हो चुके हैं और रक्त के अणु अणु में मिल गये हैं उन्हें त्याज्य समझ कर एक बारगी छोड़ देना उन्हें जंचता नहीं था। वे कहते कि यदि इस प्रकार हम अपनी सब बातें छोड़ते चले जायं और आगन्तुकों का अन्ध अनुकरण करने लगें तो हमारा सत्व कुछ भी शेष न रह जायगा।

कालेज के बोर्डिंग हाउस में स्व० प्रो० जिनसी वाले का एक दल था, जो प्राचीनता का अभिमानी कहलाता था। बलवन्तराव उसमें सम्मिलित हुए और जो लोग शौच वस्त्र पहन कर भोजन करते थे, उनके साथ भोजनालय में बैठने लगे। केसरी के पाठक इस बात से भली भांति परिचित हैं कि सनातन धर्म का यह अभिमान उनमें अन्त तक कितनी प्रखरता से रहा और उसके आचार-विचार में जो मलिनता

समय पाकर आ गई थी उसे दूर करके उसका मौलिक उज्ज्वल स्वरूप जनता के सामने प्रकट करने में वे कितने तत्पर थे।

इन सब बातों के उल्लेख का अभिप्राय केवल यह है कि बलवन्तराव के स्वभाव की जो विशेषतायें उनके जीवन में स्पष्ट रूप से दिखाई देती थीं वे अनेकांश में परम्परागत थीं और बचपन से ही उनमें दिखाई देती थीं। हां, शिक्षा के संस्कार और अनुभव की परिपक्वता से उनकी प्राकृतिक प्रतिभा का तेज अधिक दमक उठा था, परिस्थिति की प्रतिकूलता के कारण उनके निश्चय का जोर द्विगुणित मात्र हो उठा था, विद्वत्ता के कारण सनातन धर्म पर उनकी श्रद्धा बढ़ गई थी, चिन्तन के बल से वे उसी धर्म के गूढ तत्वों को विशद करके नये रूप में प्रकट कर सके। सारांश यह कि सारी भावी शिक्षा और प्रतिकूल परिस्थिति केवल उनके स्वभाव की नैसर्गिक, परम्परागत, विशेषताओं के विकास करने में कारणीभूत मात्र हुई। इससे यह भली भांति जाना जाता है कि परम्परा का महत्व कितना है और उसे शुद्ध रखने के लिए कितने प्रयत्न की आवश्यकता है।

बलवन्तराव जब एल० एल० बी० हुए तब उनके सामने दो तीन मार्ग थे। एक तो था सरकारी नौकरी का जो सामान्यतः सुख का, मानादर का, अधिकार का, और बढ़ती हुई द्रव्य-प्राप्ति का परन्तु स्वाभिमान को भस्मीभूत करने वाला मार्ग था। उस समय सरकारी नौकरी के लिए आज की तरह अफ़सरों के पास जूतियां चटखानी नहीं पड़ती थी। सरकार को नौकरी के लिए शिक्षित लोगों की आवश्यकता थी। इसलिए वह उन्हें सम्मानपूर्वक बुलाती थी। पहले

सरकारी नौकरी में आरम्भिक वेतन अच्छा मिलता था और तरक्की भी झपाटे से होती थी।

अधिकतर युवक कालेज छोड़ने पर इसी रास्ते पर लगते थे। परन्तु यह मार्ग जिसे भगवान् मनु ने 'श्ववृत्ति' संज्ञा दी है, बलवन्तराव के सदृश स्वाभिमानी और ध्येय-निष्ठ पुरुष को पसन्द नहीं हो सकता था। दूसरा मार्ग था वकालत का। इसमें स्वतन्त्रता भी क़ायम रह सकती थी और द्रव्य लाभ की भी कमी न थी। इसके सिवा इस मार्ग से, आगे चल कर, किसी बड़ी सरकारी नौकरी पर भी छलांग मारी जा सकती थी और ऐसे कितने ही उड़ानों के उदाहरण भी उस समय मौजूद थे। जो लोग स्वतन्त्रता के प्रेमी थे परन्तु धन का मोह न छोड़ सकते थे अथवा जिनका कोई ध्येय न था उनके लिए यह मार्ग सुविधाजनक था। परन्तु बलवन्तराव के ध्येय और वृत्ति के अनुरूप वह भी नहीं था। तीसरा मार्ग बड़ी जोखिम का, और अत्यन्त कष्ट का था। उसमें न तो द्रव्य की प्राप्ति ही थी और न मान तथा अधिकार का लाभ ही था। उससे न तो समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती थी और न वृद्धावस्था में आराम के साथ शांति पूर्वक जीवन बिताने की सुविधा ही हो सकती थी। उसमें केवल एक ही लाभ था। यदि हृदय देशहित के लिए छट पटाता हो तो उससे उसे शांति मिल सकती थी। स्वदेश-सेवा का ध्येय उससे साध्य हो सकता था। वह मार्ग स्व० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के शब्दों में, लोगों को ज्ञान-सम्पन्न करने के कार्य में अपने आपको अर्पण कर देना, था। यह मार्ग उस समय तक भारत की कर्म्मभूमि में विशेष परिचित नहीं था। यही, नहीं बल्कि उसके पहले पहल आरम्भ

करने का अग्र-मान स्व० चिपलूणकर शास्त्री के साथ बलवन्तराव तिलक को ही है। इसका वर्णन करने के पहले महाराष्ट्र की तत्कालीन लोक-स्थिति का वर्णन करना आवश्यक है। अन्यथा इस कार्य्य का स्वरूप समझ में न आवेगा।

इस समय की—अर्थात् १८७९–८० की–महाराष्ट्र की, किम्बहुना समस्त भारतवर्ष की जनस्थिति का सुन्दर शब्द-चित्र स्व० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अपनी उन्हीं दिनों प्रकाशित होने वाली निबन्ध-माला में खींचा है। उस समय भारतवर्ष में अंगरेज़ी राज्य की बेरोक स्थापना हुए आधे शतक से ऊपर हो चुका था। देश में जो लूट-मार और झगड़े-बखेड़े पहले हुआ करते थे वे बन्द हो गये थे और सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था का सञ्चार हो रहा था और काशी से रामेश्वर तक सोना उछालते हुए जाना शक्य हो गया था। परन्तु यह बात जुदा है कि अब सोना दिन पर दिन दुष्प्राप्य होता जा रहा था। यह बात उस समय इतने स्पष्ट रूप से ध्यान में नहीं आ सकती थी। सब दूर न्यायालय—अदालतें–स्थापित हो गई थीं और लोगों की शिकायतें—कुछ कालों–गोरों के मामलों को छोड़कर—निष्पक्षता से दूर की जाने लगी थीं। शासन–कार्य्य बे रोक चल रहा था और लोगों की शिकायतों का फैसला तुरन्त होता था। उसका भीतरी स्वरूप, जिसके द्वारा लोग चूस लिये जाते थे, लोगों की दृष्टि से परे था। अंगरेज़ी शिक्षालय स्थापित हो गये थे। अंगरेज़ों का भौतिक शास्त्र–विषयक प्रवीणता और आविष्कारों की चमक से पश्चिमी शिक्षा-दीक्षित विद्वानों की आंखें चौंधिया गई थी। उनके शानदार सुधारों पर उनकी बुद्धि लट्टू हो गई थी। तिस पर भी जब अंगरेज़ी

ग्रन्थकारों ने पूर्वीय भारतीय सुधारों की, रस्म रिवाज की और धर्म की कड़ी आलोचना करके उनपर नादानी और मूर्खता की छाप लगाई तब तो इन आंग्ल-विद्या-विभूषित लोगों को अपनी सभी बातें बिल्कुल मूर्खता भरी और त्याज्य तथा गर्हणीय दिखाई देने लगी। वे उतावले होने लगे कि कब इन-से पिण्ड छूटेगा वे समझने लगे कि हमारे पूर्वज मूर्ख थे, हमारा धर्म अप्रयोजक बातों से भरा हुआ है, हमारी संस्कृति वाहियात है, हमारे रस्म-रिवाज निरर्थक हैं, हम नादान हैं सारांश कि अपनी सभी बातें उन्हें बुरी और पश्चिमी सभी बातें भली जंचने लगी। अपने पूर्वजों की मनमानी निन्दा और अंगरेज़ों की भरपेट प्रशंसा वे लेखों और व्याख्यानों के द्वारा करने लगे। यहीं तक बस नहीं, बल्कि अंगरेज़ों की भाषा, धर्म और रीति-रिवाज का अनुकरण भी यथा सम्भव करने लगे। उस समय अधिकतर समझदार आदमियों का विश्वास था कि जब से दयालु और चतुर अंगरेज़ सरकार का राज्य हुआ है तब से देश का सब तरह कल्याण ही हुआ है। अंगरेज़ों की सत्यनिष्ठा और उदारता पर उनका भरोसा था। उनके हृदय मे यह बात जम गई थी कि अंगरेज़ लोग सचमुच ही, जैसा कि वे कहते हैं, हमारे योग्य और अपना कारोबार चलाने के लिए समर्थ होने पर हमारा राज्य हमारे हवाले करके स्वदेश को सिधार जायेंगे।

हिन्दुस्तान के सुशिक्षित लोगों की यद्यपि सामान्यतः यह दशा थी तथापि कुछ तरुण स्वाभिमानी और विचारवान व्यक्तियों को अंगरेज़ी "मतलब-सिन्धु" का यह गोरखधन्धा स्पष्ट दिखाई देने लगा था। अंगरेज़ी राजकाजियों के शब्दों और कार्य्यों में उन्हें भेद दिखाई देने लगा था। पाश्चात्य

भौतिक उन्नति को बाहरी चमक-दमक के भीतर छिपी हुई स्वार्थता और उनके हृदय के क्षुद्र और पाशवी भाव को वे पहचानने लगे थे। अंगरेज़ों के सुव्यवस्थित शासन कार्य में देश की सम्पत्ति का जो प्रवाह विदेशों को जा रहा था वह उनकी सावधान आंखों से छिपा न रह सका। ईसाई-धर्म की बाष्कल अप्रयोजकता उनकी विवेचक-बुद्धि के आगे टिक नहीं सकती थी। स्वाभिमान की जागृति के साथ ही प्राचीन हिन्दू धर्म का गूढ़ स्वारस्य, उनके आचारों की उपयोगिता, उसके सिद्धान्तों की उदात्तता, के वे क़ायल हो चले थे। परतन्त्रता से हमारे देश को चाहे कितना ही लाभ होता हो तो भी उसके बदौलत होने वाली लोगों की दुःखद-स्थिति अर्थात् देश की कर्तृत्वशक्ति का नाश होना, व्यापार-उद्योग का डूब जाना, सम्पत्ति का विदेशों की ओर खिंचाव होना, और सब से अधिक हानि यह कि देश की मानसिक उन्नति ही रुक जाना—लोगों के ध्यान में आने लगी। उन्होंने देखा कि यह अंगरेज़ी शिक्षा है तो बाघिनी की तरह। उसके दूध से जिसका पोषण हुआ वह कभी ऐसा वैसा ढीला ढाला-नहीं हो सकता। परन्तु आज तक की विशिष्ट शिक्षा-पद्धति के कारण अथवा उसका यथेष्ट संस्कार हम पर न होने के कारण, भारत में तो जिधर देखिए उधर ही इस शिक्षा के बदौलत "जी हुजूर" और "जो हुकुम" की श्ववृत्ति ही सर्व शिक्षितों में उन्हें दिखाई देने लगी है।

इस आत्मस्थिति का ज्ञान जिन कुछ लोगों को हुआ था उनमें स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर प्रधान थे। उन्होंने अपनी "निबन्धमाला" के द्वारा इस ज्ञान का अंजन समस्त महाराष्ट्रीयों की आंखों में डालना आरम्भ किया था। जिन

दिनों तिलक ने कालेज छोड़ा उन्हीं दिनों प्रकाशित होने वाले माला के अङ्कों में शास्त्री जी ने स्वदेश-स्थिति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था और उसको सुधार करने के लिए युवकों का तन, मन, धन, से प्रयत्न करने का उपदेश बड़ी व्याकुलता के साथ किया था। "लोगों की स्थिति को सुधार ने का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है—उन्हें ज्ञान सम्पन्न करना। उसके दो साधन हैं-रसना और लेखनी। पहले के अन्तर्गत पाठशालायें, व्याख्यान आदि और दूसरे के अन्तर्गत समाचार पत्र, मासिकपत्र तथा पुस्तकें आदि हैं" अतएव स्व० शास्त्री जी ने युवकों को इन्हीं का यथेष्ट उपयोग करने की सलाह दी थी।

कालेज में रहते हुए बलवन्तराव के दिमाग़ में ऐसे/ही विचार उठ रहे थे। देश सेवा में ही सारा जीवन लगा देने का सङ्कल्प उन्होंने कर लिया था। अतएव, बहुत कुछ विचार के उपरान्त, बलवन्तराव, स्व० श्री० आगरकर, तथा अन्य एक दो मित्रों ने यह निश्चय किया कि कालेज छोड़ने पर हम लोग सरकारी नौकरी के फेर में न पड़ कर एक स्वतन्त्र आदर्श पाठशाला स्थापित करें। बलवन्तराव इस समय एल० एल० बी० में, आगरकर एम०ए० में, और अन्य सज्जन बी० ए० में थे। जिन दिनों ये लोग यह निश्चय कर रहे थे उन्हीं दिनों स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर सरकारी नौकरी की रुपहरी बेड़ी तोड़कर पूने में आये थे और वे भी ऐसी ही एक पाठशाला स्थापित करने की धुन में लगे हुए थे। यह हाल इन लोगों को मालूम होते ही ये उनसे मिले और सब की सलाह से पाठशाला खोलने की बात पक्की हो गई। वर्तमान न्यूइंग्लिश स्कूल उसी विचार का फल है। १ जनवरी

१८८० ईसवी को वह स्थापित हुआ। सब से पहले उसमें विष्णुशास्त्री और बलवन्तराव सम्मिलित हुए। एक वर्ष के बाद एम० ए० पास हो जाने पर, श्री० गोपालराव आगरकर भी शरीक हो गये। इस प्रकार १८८० ईसवी से बलवन्तराव के सार्वजनिक जीवन का जो "श्रीगणेश" हुआ वह उनके स्वर्गवास तक तीन युग—४० वर्ष तक—भारतीय जनता की अखंड सेवा में समाप्त हुआ। इन चालीस वर्षों में उन्होंने जो अनेक कष्ट-कर कार्य्य आरम्भ किये, जो अनेक आन्दोलन उठाये उन सब के मूल में एक ही ध्येय था और वह था—देश की उन्नति। दिन रात उनके मन में देश-विषयक विचार उठा करते। इन चालीस वर्षों में उन्होंने दुनियादारी की तो, पर वह थी देश की दुनियादारी। अपने अथवा अपने कुटुम्ब के विषय में इतने निश्चिंत मनुष्य विरले ही होते हैं। पर, हम पूछते हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है? सारा भारतवर्ष ही उनका कुटुम्ब था और इस विश्वकुटुम्ब के आगे वे अपने संकुचित कुटुम्ब को भूल गये थे। अनेक आपत्तियों और कठिन सङ्कटों का सामना करते हुए, उन्होंने अपने जीवन के आरम्भ में जो जनसेवा व्रत का बीड़ा उठाया था उसे क्या अप्रसिद्ध दशा में और क्या प्रसिद्धि होने पर क्या अनुयायिहीन दशा में और क्या हजारों अनुयायियों के एकत्र होने पर, मृत्यु के पदार्पण करने तक वीरता के साथ निबाहा। ऐसा महात्मा जिसने जीवन के आरम्भ में निश्चित ध्येय पर जीवन के अन्तिम दिन तक एक सा आरूढ़ रह कर देश के लिए अहर्निश चालीस वर्षों तक कठिन परिश्रम किया, उन्नतिशील पश्चिमी देशों में भी कोई विरला ही होगा फिर हमारे इस हतभागी देश की तो बात ही जाने दीजिए। हमारे एक

तिलक-भक्त मित्र के कथन के अनुसार "तिलकास्तिलकोपमः" यह उक्ति भारत के राजनैतिक जीवन में तो पूर्णतः सार्थ है।

लोकमान्य तिलक के इस चालीस वर्ष के जीवन के स्वभावतः चार भाग होते हैं। १८८० ई० से १८९१ के अन्त तक पहला भाग। १८९१ से १८९७ तक दूसरा भाग। १८९८ ई० से १९०८ तक तीसरा और १९१४ से १९२० तक चौथा भाग। इनमें से प्रत्येक भाग के अन्त में उन पर कोई न कोई आपत्ति आई थी। परन्तु उनके कारण उनका अन्तस्तेज मलिन न हुआ, वल्कि अधिक प्रखर ही होता गया। उनका निश्चय बल पकड़ता गया। उनके कर्तव्य की व्याप्ति और स्वरूप विस्तृत होता गया। और जिस तिलक को १८८० ई० में, पूने में भी कुछ ही लोग पहचानते थे वे १९२० में, आसेतु हिमाचल भरतखंड के सिरताज हो गये। अब इन चार भागों के अनुसार तिलक के जीवन-क्रम का विचार करते हैं।

संन् १८८०-१८९१ ईसवी

न्यू इंग्लिश स्कूल जब स्थापित किया गया तब स्व० विष्णु-शास्त्री चिपलूणकर, बलवन्तराव तिलक इत्यादि के सामने जो आदर्श—उद्देश—था, उसका उल्लेख डा० हंटर को पाठशाला की ओर से दिये गये अभिनन्दन पत्र में किया गया है। उस समय अँगरेज़ी शिक्षा का प्रसार आज की अपेक्षा बहुत कम हुआ था। तथापि विचारवान मनुष्यों को सरकारी शिक्षा-पद्धति के दोष दिखाई देने लगे थे। परन्तु उस समय एक भी ख़ानगी—ग़ैर सरकारी—पाठशाला ऐसी नहीं थी जो उन दोषों को दूर करके जितनी हो सके निर्दोष प्रणाली से शिक्षा

देती हो। पहले तो सरकारी शिक्षालय ही कम, फिर ग़ैर-सरकारी स्कूल तो अगुंलियों पर गिनने लायक भी नहीं और तिसमें भी शिक्षा बहुत ही परिमित और अव्यवस्थित। इस दशा में इन लोगों को ऐसे स्कूल स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत होना स्वाभाविक था जो देशोद्धार-विषयक उनके विचारों और प्रयत्नों के अनुरूप हो। पूर्वोक्त अभिनन्दन-पत्र में उस संस्था का उद्देश यह बताया गया था—शिक्षा सस्ती करना और साथ ही सरकारी शिक्षा-प्रणाली में सुधार करना। उसमें यह भी कहा गया था—हमारा विश्वास है कि देश स्वयं जब तक शिक्षा-कार्य्य अपने हाथ में न लेगा, साहित्यिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक उन्नति शीघ्रता से नहीं हो सकती और इसी लिए हम ने यह उपक्रम किया है। उन दिनों सरकार ने एक शिक्षा-कमीशन बैठाया था। डाक्टर हंडर उसके अध्यक्ष थे। अतएव उन्होंने डाक्टर साहब को यह सूचना भी की थी कि वे सरकार से सिफ़ारिश करें जिससे हमारी राष्ट्रीय शिक्षा (National Education) के भावों को उत्तेजना मिले और ग़ैर सरकारी संस्थाओं की वृद्धि झपाटे से हो। कमीशन के सामने उस समय इन लोगों ने जो गवाहियां दीं उनसे भी यही उद्देश स्पष्ट होता है। उस गवाही में ये उद्गार प्रकट किये गये हैं कि खानगी शिक्षा-संस्थाओं की वृद्धि के लिए खुलावट होनी चाहिए और शिक्षा के विषय में भारतवासी स्वावलम्बन का पाठ पढ़ना सीखें। प्रचलित शिक्षा-क्रम में धार्मिक शिक्षा का अभाव है, शिक्षा-पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता है, रटाई के द्वारा शिक्षा दिया जाना बन्द होना चाहिए, अँगरेज़ी के द्वारा सब विषयों की शिक्षा दी जाती है

इसलिए यह रटाई अनिवार्य्य सी है, प्रायः $\frac{3}{4}$ समय अँगरेज़ी भाषा की पढ़ाई में ही व्यतीत हो जाता है, दूसरे विषय के ज्ञान के लिए बहुत ही थोड़ा समय मिलता है, परीक्षा का बोझ बहुत बढ़ता जाता है, स्वभाषा की उपेक्षा होती है, विश्व-विद्यालयों के पदवी-प्राप्त लोग भारतीय नागरिक नहीं, बल्कि आंग्लीभूत पदवीधर प्रति वर्ष उत्पन्न होते हैं, इत्यादि दोष भी इन गवाही में उन्होंने प्रकट किये थे। इस से यह स्पष्टतः जाना जाता है कि शिक्षा के जिन दोषों को दूर करने के लिए बङ्गाल में तथा दूसरे स्थानों में सन् १९०५ ई० मे राष्ट्रीय शिक्षा की जो योजना आरम्भ की गई थी उसका ज्ञान उन्हें कितने पहले था और उस दृष्टि से प्रयत्न करना उन्होंने किस प्रकार आरम्भ किया था। यह सिद्धान्त कि राष्ट्र की उन्नति के लिए शिक्षा का स्वरूप राष्ट्रीय होना चाहिए, उन्हें उसी समय पट चुका था और, अधिक क्या, आज प्रचलित "राष्ट्रीय शिक्षा" शब्द का प्रयोग वे तभी से करने लगे थे। इससे उनकी दूर-दर्शिता दिखाई देती है।

इस शिक्षा-संस्था की इमारत स्वार्थ-त्याग की नींव पर रखी गई थी। उसके सञ्चालकों का यह सङ्कल्प था कि इस विद्यालय के द्वारा दी जानेवाली शिक्षा भड़ैत और ऊपरी न होनी चाहिए, अतएव इस संस्था में कार्य्य करने वाले लोग ऐसे होने चाहिए जो शिक्षा के पवित्र कार्य्य के लिए अपना जीवन अर्पण करने को तैयार हों। इसलिए संस्था का यह नियम कर दिया गया कि जो लोग उदर-निर्वाह के लिए आवश्यक निश्चित वेतन पर ही आजन्म-अर्थात् २० वर्ष-शिक्षक का काम करने के लिए तैयार हों वही संस्था के आजन्म सदस्य बनाये

जायँ और संस्था की व्यवस्था उन्हीं के हाथों में रक्खी जाय। शिक्षकों का वेतन ३०) मासिक रक्खा गया था। परन्तु संस्था की आर्थिक अवस्था बहुत साधारण थी। अतएव बलवन्त-रावजी और स्व० विष्णुशास्त्री ने पहले वर्ष में यह वेतन भी नहीं लिया।

बलवन्तराव स्कूल में मुख्यतः गणित पढ़ाते थे। इसके अतिरिक्त विद्यालय की व्यवस्था और उसकी उन्नति के लिए प्रयत्न करने का भार भी तिलक पर था। इसमें उनके एक साथी भी थे—श्री० मा० ब० नामजोशी। स्कूल के लिए सामान कहाँ से और किस तरह मँगाया जाय, इस बात से लेकर विद्यालय का अभ्यास क्रम कैसा होना चाहिए, उत्तम, होनहार और स्वार्थत्यागी शिक्षक किस प्रकार मिल सकते हैं, स्कूल के लिए द्रव्य-सहायता किस प्रकार प्राप्त की जाय, यहां तक सब प्रबन्ध तिलक और नामजोशी को करने पड़ते थे। धीरे धीरे संस्कृत-कोशकार वामनशिवराम आपटे, प्रसिद्ध 'भाटिका' नाटक के लेखक श्री० वासुदेवराव केलकर, श्री० महादेव शिवराम गोले, इत्यादि कार्य्योत्साही लोग संस्था में शामिल होने लगे और दिन पर दिन उसकी उन्नति होने लगी।

परन्तु केवल स्कूल के ही काम से इन लोगों को सन्तोष नहीं हो सकता था। स्व० चिपलूणकर शास्त्री ने निबन्धमाला के द्वारा पहले ही सुझा रक्खा था कि शिक्षा का प्रसार ज़ोर शोर से होने के लिए रसना और लेखनी, पाठशाला और समाचार-पत्र ये दो ही साधन हैं। अतएव, सरकारी नौकरी से आज़ाद होने और शिक्षा-प्रचार के लिए अपने को अर्पण करने के बाद स्व० चिपलूणकर शास्त्री और बलवन्तराव

आदि के लिए स्कूल के साथ ही समाचार-पत्र का काम भी शुरू करना स्वाभाविक था। तदनुसार प्रेस का प्रबन्ध करके, जनवरी १८८० ईसवी मे अर्थात् उसी वर्ष जिस वर्ष में न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना की गई थी, मराठी का प्रसिद्ध पत्र 'केसरी' और अंगरेज़ी का "मराठा" शुरू किये गये। उस में "मराठा" का सम्पादन-भार तिलक पर सौंपा गया था। इन लोगों के पास उत्साह तो भरपूर था, परन्तु समाचार-पत्र का सञ्चालन करने के मुख्य साधन, धन, की कमी थी। तिस पर भी उन्होंने केसरी का मूल्य और पत्रों से कम रक्खा था, अतएव रुपये पैसे का प्रबन्ध करने में उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। परन्तु केसरी के गम्भीर, मार्मिक और साङ्गोपाङ्ग लेखों के बदौलत उसके ग्राहकों की संख्या शीघ्र ही बढ़ने लगी और केसरी की आर्थिक स्थिति अच्छी होती चली गई। फिर भी, यह बात याद रखने योग्य है कि लो० तिलक को दूसरी बार सज़ा होने तक केसरी कर्ज़दार था।

स्कूल और समाचार-पत्र शुरू होने के कुछ ही दिन बाद (१८८२ ई०) इन लोगों पर पहली आपत्ति आई। वह थी कोल्हापुर का मामला। उन दिनों कोल्हापुर में माधवराव बर्वे नाम के एक कारबारी थे। उनका शासन-कार्य्य प्रजा और छत्रपति दोनों के लिए अहितकर था। अतएव उनके खिलाफ़ कुछ लेख केसरी और मराठा मे निकले। बस, श्री० आगरकर और तिलक पर उन पत्रों के सम्पादक की हैसियत से मान-हानि की नालिश की गई। फलतः उन्हें १०१ दिन की सज़ा मिली। इस तथा आगे की दोनों बार की सज़ाओं के सम्बन्ध में एक विलक्षण योगायोग यह दिखाई

देता है कि तीनों दफ़ा जिन लेखों के कारण उन पर मुक़दमा चलाया गया उनमें से कोई भी लेख लो० तिलक का लिखा हुआ नहीं था। और यदि यह बात पेश की गई होती तो उनके अनुकूल विचार उस पर किया गया होता, परन्तु तिलक महाराज का यह स्वभाव ही नहीं था कि एकबार जवाबदेही सिर पर ले चुकने के बाद सङ्कट आ पड़ने पर दूसरे के सिर बला टालकर खुद आप अलग हो जायँ। इसके विपरीत उनका तो यह बिरुद था कि यदि दूसरे पर आफ़त आती हो तो उसे स्वयं शिरोधार्य्य करके ढ़ाल की तरह उसका बचाव करते। अतएव 'मराठा' का लेख उनका लिखा हुआ न होने पर भी, उसका उल्लेख तक न करते हुए, उन्होंने मुक़दमे की पैरवी जोड़ तोड़ के साथ की और यदि ऐन मौक़े पर दक्षिण के कुछ इनामदार लोगों ने गवाही देने से इनकार न किया होता तो इसमें सन्देह नहीं कि मुक़दमे का फ़ैसला उनके अनुकूल होता। अन्त को जब फ़ैसला खिलाफ़ हुआ और सज़ा भोगने की बारी आई तब भी उन्होंने और आगरकर ने उसे धैर्य्य और शान्ति के साथ भोगा। मुक़दमे का असली कारण बूढ़े से लेकर बालक तक को मालूम था। अतएव यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि इसके कारण उनकी तथा उनके पत्र की प्रतिष्ठा-वृद्धि में सहायता ही पहुँची।

न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना के चार वर्ष बाद उतरोत्तर उन्नति देखकर, सञ्चालकों की यह इच्छा हुई कि वह कालेज के रूप में परिणत किया जाय। कालेज की स्थापना करने के लिए यह आवश्यक था कि उस संस्था को कोई निश्चित और बाक़ायदा स्वरूप दिया जाय। इसके सिवा ऐसे कार्य्य के लिए विद्वान् अध्यापकों की भी आवश्यकता थी। इसी प्रकार

एक स्थायी फ़ंड जमा करना भी अनिवार्य्य था। यह सारा प्रबन्ध-भार उस समय लो० तिलक और श्री० नाम जोशी ने सहन किया। इन दोनों ने दक्षिण में कोई पचास हज़ार का चन्दा एकत्र किया। संस्था का नाम दक्षिण-शिक्षा-समिति (Deccan Education Society) रखा गया और उसकी रजिस्ट्री की गई। इस सोसाइटी की नियमावली पहले लो० तिलक ने लिखी और फिर वह सब के एकमत से स्वीकृत हुई। १८८४ ई० में कालेज खोला गया और चन्दा-दाताओं की इच्छा के अनुसार, बम्बई के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स फर्गुसन की स्मृति में उसका नाम फर्गुसन कालेज रकखा गया। पूना का प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज यही है।

परन्तु कालेज की स्थापना होने के दो ही तीन वर्षों बाद सोसायटी के सभासदों में मतभेद होने और दिन पर दिन बढ़ने लगा। अन्त को १८९० ईसवी के अन्त में, जब अन्य सभासदों से तिलक महाराज का मतैक्य होना असम्भव हो गया, लोकमान्य ने बड़े ही दुःख के साथ अपना इस्तीफ़ा पेश किया और वह तुरन्त ही मंजूर भी कर लिया गया। अपने सम्बन्ध-विच्छेद के कारण लोक० ने अपने लेखी इस्तीफ़े में जो ८० पृष्ठ का था, सविस्तर दिखलाये हैं। परन्तु उनका हाल लोगों को अच्छी तरह मालूम नहीं है, इसलिए उनके विषय में लोगों में बहुत ग़लत फ़हमी है। कितने तो उन्हें वचनभङ्ग का दोषी बताते हैं कि उन्होंने अपनी ही स्थापित संस्था को इस प्रकार छोड़ दिया। अतएव इस इस्तीफ़े के कारणों का निर्देश यहां पर करना आवश्यक है।

इस्तीफ़ा का मुख्य कारण था—सोसायटी के सङ्गठन के

सम्बन्ध में सदस्यों का मतभेद। जब न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना की गई थी तब तिलक, आगरकर इत्यादि ने यह स्थिर किया था कि योरप के जेसुइट सम्प्रदाय के ढँग पर यह संस्था चलाई जाय। जेसुइट-सम्प्रदाय के समस्त लोगों को उतनी रकम पर सन्तुष्ट रहना पड़ता है जितनी कि उन्हें संस्था की ओर से मिलती है और वे स्वयं जो उद्योग करते हैं उसकी सारी आमदनी और फ़ायदा संस्था में जमा किया जाता है। फिर चाहे किसी की बुद्धिमत्ता उद्योगशीलता और कार्य-तत्परता कम हो चाहे ज़्यादह। यही सिद्धान्त न्यू इंग्लिश स्कूल और फ़र्गुसन कालेज की स्थापना के समय स्वीकृत किया गया था। परन्तु आगे चलकर इसके सम्बन्ध में चर्चा होने लगी और दो पक्ष उत्पन्न हो गये। एक पक्ष का कहना यह था कि पांच घंटे तक सोसायटी का काम करने के बाद बाकी समय आजीवन सभासद अपनी इच्छा के अनुसार द्रव्यार्जन अथवा अन्य कामों में लगावें तो हर्ज नहीं। सब की योग्यता और बुद्धि एकसी नहीं होती। जो अधिक बुद्धि और क्षमता रखता है वह यदि विद्यालय का काम करके शेष समय में दूसरे काम करे तो रुकावट न होनी चाहिए। दूसरे पक्ष का यह कथन था कि आजीवन सभासद होने का अर्थ यह है कि वह अपना सारा समय और सारी बुद्धि—शक्ति सोसायटी के ही काम में लगावे अथवा यदि वह दूसरे काम में अपना समय लगावे तो उससे जो आय हो वह संस्था की सम्पत्ति समझी जाय। बलवन्तराव इस दूसरे पक्ष में थे। इस विषय का निपटारा कैसे हो? पहला पक्ष कहता था कि बहुमत से होना चाहिए। तिलक इसके ख़िलाफ़ थे। यह बात नहीं कि वे बहुमत को मानते न थे, परन्तु उनका कहना

यह था कि किसी संस्था के सङ्गठन के मूल तत्व बहुमत से नहीं निश्चित होते ; बल्कि संस्थापक जिन तत्वों पर उसकी नींव डालते हैं, उन्हें 'अटल तत्व' (articles of faith) समझ कर उनके अनुयायियों को उनके अनुसार चलना चाहिए। बहुमत के बल पर उसमें रद्दोबदल करना न सम्भव ही है और न अभीष्ट ही। जिन्हें वे तत्व स्वीकार न हों वे चाहें तो संस्था से अलग हो सकते हैं। परन्तु उन सिद्धान्तों में परिवर्तन के फेर मे उन्हें न पड़ना चाहिए। तिलक केवल ज़बान से ही इन तत्वों का प्रतिपादन न करते थे, बल्कि वे व्यवहार भी उनके अनुसार ही करते थे। एकबार स्व० श्री० शिवाजीराव होलकर पूना गये। उन्होंने वहां के विद्वान् और प्रतिष्ठित सज्जनों को बुलाकर उनका यथोचित सत्कार किया। तिलक भी उसमे बुलाये गये और उन्हें ३५०) प्रदान किये गये। यह रकम उनकी निजी सम्पति थी। अतएव यदि तिलक उसे अपने घर रख लेते तो अनुचित न था, परन्तु उन्होंने वह रकम सोसायटी ही को दे डाली।

इसके सिवा अन्य कुछ गौण मतभेद भी थे। परन्तु उनमें मुख्य यही था। और जब उसका निर्णय तिलक के प्रतिकूल हुआ, तथा अन्य कारणों से भी जब पारस्परिक विरोध के बढ़ाने का ही रङ्ग दिखाई दिया तब इस्तीफ़ा देने के सिवा दूसरा उपाय ही उनके लिए नहीं था। वे लाचार थे।

लो० ने जिस कार्य्य को आरम्भ करके उसे उन्नत अवस्था में लाने के लिए भर जवानी और उमङ्गों के ११ वर्ष लगातार ख़र्च किये, उसी कार्य्य को सफ़लता के किनारे आ पहुँचने पर छोड़ देने का अवसर उपस्थित होने से उन्हें कितना दुःख, खेद और निराशा हुई होगी, यह सोचने की बात है।

और इसीलिए हमने इस प्रसङ्ग को "आपत्ति" कहा है। परन्तु सिद्धान्त की रक्षा के लिए तिलक ने उसे सहन किया, और अन्य आपत्तियों की तरह, इस आपत्ति से भी तिलक का न तो धैर्य्य ही कम हुआ और न वे निराश ही हुए ; बल्कि उलटी वह उनके लिए उपकारक ही सिद्ध हुई। उन्हें विस्तृत देश कार्य के लिए अपना जीवन समर्पण करने को आज़ाद कर दिया !

१८९१-९७

इस्तीफ़ा देने के दूसरे वर्ष, अर्थात् १८९१ में, लो० तिलक 'केसरी' और मराठा दोनों पत्रों के स्वामी हुए। हम ऊपर कह चुके हैं कि १८८१ में इन पत्रों के प्रकाशित होने के थोड़े ही दिन बाद कोल्हापुर-काण्ड उत्पन्न हुआ और उसमें लो० तिलक तथा श्री० आगरकर को सम्पादक की हैसियत से सज़ा हुई थी। उस समय तथा उसके बाद १८८७ तक इन पत्रों का स्वामित्व दक्षिण-शिक्षा-समिति को था। तिलक और आगरकर के अतिरिक्त सोसायटी के अन्य सभासद भी इन पत्रों में लेख लिखा करते थे। धीरे धीरे यहां भी मतभेद का प्रवेश हुआ। केसरी और मराठा के राजनैतिक विचारों से तो सब सहमत थे, परन्तु सामाजिक विषयों में पहले से ही बहुत मतभेद था। आगे चलकर वह इतना तीव्र हो गया कि उसके कारण ही अन्य लोगों से पत्र का सम्बन्ध टूट ता गया। दो पक्ष हो गये। एक के नेता आगरकर और दूसरे के तिलक हुए। आगरकर और उनका पक्ष कट्टर सामाजिक सुधार-वादी था। वह यह प्रतिपादन करता था कि धर्म्म-कार्य्य की परवा न कर हमें समाज का

एक दम सुधार कर डालना चाहिए। प्राचीन प्रथाओं और प्रणालियों की मनमानी धज्जियां उड़ाने की ओर उनकी प्रवृत्ति थी। वे कहते थे कि यदि सुधार-कार्य्य लोगों की पहुंच के बाहर हो तो सरकार के द्वारा कानून की सहायता से उसको व्यवहार में लाना चाहिए। तिलक-पक्ष को यह बात स्वीकार नही थी। इससे यह न समझना चाहिए कि सुधार उन्हें सुहाते ही न थे। उनका कहना सिर्फ़ यही था कि समाज पर इस प्रकार टूट पड़ने और मौक़ा बे मौक़ा अपने रस्म रिवाज का मज़ाक उड़ाने में कुछ लाभ नही। समाज का सुधार धर्म्म शास्त्र और परम्परा के अनुसार जैसे जैसे समाज को पचता जाय थोड़ा थोड़ा होना चाहिए। इस कार्य्य में धर्म्मगुरुओं की भी सहायता ली जानी चाहिए। अपनापन—स्वत्व—क़ायम रखकर प्राचीन परम्परा को न छोड़ते हुए, उसी की सुदृढ़ नींव पर समाज-सुधार की इमारत खड़ी करनी चाहिए। आगरकर पक्ष का हिन्दू-धर्म्म और उसके धर्म्म शास्त्रों पर विश्वास नहीं था। स्पेन्सर, मिल, आदि के ग्रन्थों के अध्ययन के बदौलत एक मात्र "बुद्धि प्रामाण्य" के ही वे क़ायल थे। युक्ति से जो बात सिद्ध हो जाय और बुद्धि जिसे ग्रहण करे उसी बात को वे मानते थे और उसके अनुसार एक दम समाज का "काया पलट" करने को वे तैयार रहते थे। तिलक पक्ष का यह मत था कि "जिस प्रकार हम राजनैतिक विषय में कान्स्टिट्यूशनल अथवा वैध आन्दोलन करते हैं उसी प्रकार सामाजिक विषय में भी शास्त्र-सम्मत आन्दोलन करना चाहिए"। दोनों पक्ष के ये मत, आगे चल कर, 'केसरी' और आगरकर के 'सुधारक' में सविस्तर प्रकट किये गये हैं। परन्तु

उस समय उन्हें प्रकट करने का साधन 'केसरी' था और उसके लिखने का प्रधान भार श्री० आगरकर पर था। अत-एव उनके पक्ष के विचार ही उसमें अधिकता से प्रकट होते थे। यह दूसरे लोगों को पसन्द न आता था। होते होते यह मत-भेद बहुत ही तीव्र हो गया और अन्त को श्री० आगरकर ने केसरी से अपना सम्बन्ध छोड़ कर "सुधारक" नाम का एक पृथक् पत्र निकाला (सं० १८८७ ई०)। इसी समय डेकन एजूकेशन सोसायटी का सम्बन्ध भी इन पत्रों से टूट गया और जिस छापाखाने में ये पत्र छपते थे उनके स्वत्वाधिकारी लो० तिलक, प्रो० केलकर और श्री० हरि नारायण गोखले बनाये गये। परन्तु इस समय इन पत्रों पर तो बहुत कर्ज़ था और छापाखाना दिन पर दिन उन्नति करता जाता था। इस दशा में दोनों को एकत्र चलाना सुविधा जनक न था। अन्त को उसमें भी हिस्सा किया गया और कर्ज़-सहित दोनों पत्र लो० तिलक के हिस्से में आये और दूसरे दो सज्जनों के हिस्से में छापाखाना। तिलक को पत्रों की ज़रूरत थी ही, इसलिए उन्होंने यह बटवारा कुबूल किया और १८९१ से 'केसरी' और 'मराठा' पत्र के मालिक हुए।

जिस 'केसरी' पत्र ने आगे चल कर सारे महाराष्ट्र का आसन हिला दिया ; नहीं, जहां जहां मराठी भाषा बोली जाती है वहां सब दूर उसकी व्याप्ति हो गई और राजनैतिक विषय का तो उसने लोगों को चस्का ही लगा दिया, वह तिलक के सुपुर्द किस तरह हुआ उसकी पूर्व-कथा इस प्रकार है। जब केसरी इनके हिस्से में आया तब उसपर ७ हज़ार रुपया कर्ज़ था इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका भार उठाने में तिलक धन के लोभ से प्रेरित नहीं हुए

थे। उन्होंने उनका स्वामित्व इसलिए स्वीकार किया कि वे अपने मतों का प्रचार करने के और राजनैतिक जागृति के एक साधन थे और आगे चलकर यद्यपि उसकी ग्राहक-संख्या कई गुना बढ़ गई तो भी लो० ने उसका सञ्चालन इसी दृष्टि से किया।

१८९१ तक बलवन्तराव जी केसरी में बहुत कम लिखा करते थे, और सोसायटी से सम्बन्ध छोड़ने तक, १८८९ की बम्बई-कांग्रेस के सिवा, किसी भी सार्वजनिक आन्दोलन में नहीं पड़े थे। इसका कारण यह था कि वे सोसायटी के काम में ही अपनी सारी शक्ति और बुद्धि लगाते थे। परन्तु १८९१ में, सोसायटी से मुक्त होने के पश्चात्, उन्होंने ऐसे आन्दोलनों में आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया। 'केसरी' का तो सारा सम्पादन-कार्य्य वही करने लगे। उनकी सादी परन्तु ओजस्विनी भाषा, विषय का प्रतिपादन सरल रीति से करने की पद्धति, विद्वत्तापूर्ण और तर्क शुद्ध विवेचन और कड़ी परन्तु मार्मिक आलोचना—टीका—के कारण केसरी की लोकप्रियता और ग्राहकों की संख्या देखते देखते बढ़ने लगी। केसरी में उस समय, तथा उसके बाद भी, सरकार के लोक-हित के प्रतिकूल किये गये कार्य्यों की, खूब कड़ी और स्पष्ट आलोचना निकला करती थी और भिन्न भिन्न राजनैतिक विषयों पर वह ऐसे लेख प्रकट किया करता था जो निस्पृहता और निर्भयता से भरे हुए और साङ्गोपाङ्ग ऊहापोह करने-वाले होते थे। उन्हें पढ़ने से यह कल्पना भली भांति हो सकती है कि केसरी पढ़ने के लिए महाराष्ट्र इतना उत्कण्ठित क्यों रहता था।

केसरी तो राष्ट्रीय जागृति का काम कर ही रहा था,

परन्तु उसकी पुष्टि के लिए उन्होंने, इस समय में, दो उत्सव शुरू किये। इन उत्सवों को आरम्भ करने की मूल कल्पना से लेकर उन्हें प्रचार में लाने और लोकप्रिय बनाने का सर्व श्रेय लो० तिलक को ही है। इनमें से पहला उत्सव श्री गजानन का और दूसरा श्री शिवाजी छत्रपति का जयन्त्युत्सव है। पहला उत्सव धार्मिक और दूसरा ऐतिहासिक है। परन्तु बलवन्तराव जी ने उन दोनों को राष्ट्रीय रङ्ग में रंग दिया। केसरी के "विभूति पूजा" (१-६-१८६७) और "राष्ट्रीय महोत्सवों की आवश्यकता" इत्यादि लेखों में इन उत्सवों के आरम्भ करने का हेतु, उनका स्वरूप, उनके लाभ, इत्यादि का आम विवेचन किया गया है। गणपति-उत्सव, लोगों की धार्मिक भावना को जागृत करके धर्म्म-विषयक ज्ञान और आदर-वृद्धि का उत्तम साधन था। और लोगों के हृदय में अपने पूर्वजों के प्रति अभिमान उद्दीप्त करके उनका गत वैभव प्राप्त करने की तिलमिलाहट उत्पन्न करने के लिए "श्री शिवाजी उत्सव" की नींव डाली गई। कार्लाइल का मत है कि "समाज के जीवन और उत्कर्ष के लिए विभूति पूजा के सदृश दूसरा साधन नहीं।" "राष्ट्रीयता, समाज-व्यवस्था और धर्म्म के मूल में विभूति पूजा है।" यह विभूति-पूजा श्री शिवाजी-उत्सव के द्वारा आरम्भ हुई। "समाचार-पत्रों का उपयोग और लाभ मर्य्यादित होते हैं। वे कुछ ही शिक्षित लोगों तक पहुँच पाते हैं। परन्तु देश-प्रेम की लहर, स्वदेशाभिमान की ऊर्म्मि, देहात के किसानों तक पहुँचाने के लिए, इन पश्चिमी साधनों को तत्कालीन स्थिति में निरुपयोगी समझ कर, लो० तिलक ने इन उत्सवों को ढूंढ निकाला। और उनके द्वारा उन्होंने इस लहर को महाराष्ट्र के इस छोर से लेकर उस छोर

तक पहुँचा दी। १८९३ में गणपति-उत्सव और १८९४ में श्री शिवाजी-उत्सव आरम्भ हुआ। आज कल ये उत्सव सैकड़ों जगह प्रतिवर्ष मनाये जाते हैं। गणपति-उत्सव में धार्मिक चर्चा, प्राचीन प्रथा—प्रणालियों और पुरातन संस्कारों का विवेचन और मीमांसा नवीन रीति से की जाती है। शिवाजी-उत्सव में ऐतिहासिक घटनाओं, स्फूर्तिदीपक चरित्रों और उद्दीपक विभूति-गुण-गान हुआ करता है। यह श्री शिवाजी के एक ध्येय का—राष्ट्रोन्नति के आदर्श का मूर्त स्वरूप था। श्री शिवाजी के चरित्र में यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि उन्होंने मुसलमानों से लड़ाइयां लड़ीं, या हिन्दू-धर्म की रक्षा की; बल्कि वास्तविक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने एक पतित और निर्जीव राष्ट्र में नवजीवन का सञ्चार किया और उसमें अद्भुत शक्ति निर्माण करके उसे वैभवगिरि पर आरूढ़ करा दिया! प्रधान रूप से उनके अवतार का कार्य्य था स्वराज्य-सम्पादन और वही उनके उत्सव मनाने का उद्देश्य था। इससे यह गुत्थी सुलझ जाती है कि इस उत्सव में मुसलमान लोग भी क्यों सम्मिलित होते थे और बङ्गाल में भी वह क्यों इतना लोकप्रिय हुआ* महाराष्ट्र के युवक-समाज मे स्वधर्म-प्रेम, स्वदेश-प्रेम और स्वपूर्वज-प्रेम निर्माण करने में इन उत्सवों का कितना उपयोग हुआ, यह बात आज भी जब तक कोई महाराष्ट्र में जाकर यह न देखे कि ये उत्सव कितने उत्साह के साथ मनाये जाते हैं, मालूम नहीं हो सकती। तिलक महाराज के कट्टर शत्रु, सर व्हेलेंटाइन शिरोल ने भी 'Indian Unrest' नाम की पुस्तक में, जिसमें उन्होंने

---

* यही बात—क्या शिवाजी राष्ट्रीय वीर न थे। इस व्याख्यान में स्पष्ट की गई है—

भारतीय अशान्ति की मीमांसा की है, दक्षिण की वर्तमान कालीन जागृति का—उनके मत से अशान्ति का—मुख्य श्रेय इन्हीं उत्सवों को दिया है। इससे बढ़कर अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है ? *

इन दिनों बलवन्तराव की लोक प्रियता और समाज में उनका प्रभाव वेग के साथ बढ़ रहा था और उनके अनुयायियों की संख्या दिन दूनी हो रही थी। महाराष्ट्र में जिस तरुण, तेजस्वी और स्वात्याभिमानी राष्ट्रीय पक्ष का जन्म हाल ही हुआ था, उसके वे अध्वर्यु माने जाने लगे थे। यह पक्ष सरकार से बड़ी शानबान के साथ बरतता था और सरकार जो काम लोकहित के प्रतिकूल करती उनका सच्चा स्वरूप प्रकट करके उनकी वह कड़ी आलोचना करता था। हिन्दुत्व का इस पक्ष को बड़ा ही अभिमान था ; और देश के लिए हर तरह का स्वार्थत्याग करने के लिए वह तैयार रहता था। अतएव यह पक्ष सरकार की आखों में खटकने लगा। इस पक्ष में लोकमान्य का स्थान कैसा था यह बात शिरोल के निन्दा-व्यञ्जक वर्णन से स्पष्ट हो जाती है—

"He (Mr. Tilak) was the triumphant champion of Hindu Orthodoxy, the high priest of Ganesh, the

---

*It is the spirit which Shiwaji in his doings that is held forth as the proper ideal to be kept on by the rising generations.

"He was born at a time when the whole nation required relief from ; and by his self-sacrifice and courage he proved to the world that India was not a country forsaken by the Providence.

inspired prophet of a new nationalism which in the name of Shivaji would cast out the Mlechhas and restore the glories of the Marhratta history—" p.47 शत्रु की लेखनी के इस एक ही वाक्य से तिलक की तत्कालीन लोक प्रियता और राष्ट्रीय पक्ष की जनकता जितनी स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है उतनी सैकड़ों शब्दों में प्रकट करना कठिन है।

१८९५ ई० में वे बम्बई की कानून-सभा के सदस्य चुने गये। कौन्सिल में किये हुए उनके कामों का वर्णन शिरोल ने इस प्रकार किया है—When inside the Council-room he continued with the same audacity and the same impunity his campign of calumny and insult."

इन शब्दों में से यदि द्वेष-गरल निकाल दिया जाय तो इन का अर्थ यह होता है कि कानून सभा में भी उन्होंने सरकार की हानिकारक योजनाओं और कृतियों की निर्भयता पूर्वक आलोचना करने में और उनके दोष दिखलाने में कसर नहीं रक्खी थी। परन्तु उनकी आलोचना इतनी सप्रमाण और कानून की मर्यादा के अन्दर होती थी, कि सरकार उसे कटु समझते हुए भी उनका मुंह बन्द न कर सकती थी।

इसी दशा में १८९७ ई० में पूने में ब्यूबानिक प्लेग, पहले ही पहल आरम्भ हुआ। इसके एकही वर्ष पहले दक्षिण में अकाल पड़ चुका था। उसके कारण लोग पहले ही से घबराये हुये थे। तिस पर इस बिल्कुल ही अपूर्व, भयङ्कर और स्पर्श-जन्य रोग ने आ घेरा। इससे लोगों के प्राण उड़ गये थे। इसी से इस रोग का फैलाव दूसरी जगह न होने देने के लिए सरकार ने कारंटाइन और घरों की स्वच्छता रखने

का जो विधान आरम्भ किये वे तो इतने कष्टकर हो गये कि लोग कहने लगे कि इन यन्त्रणाओं से तो इस रोग से ग्रस्त होकर ही मर जाना अच्छा है। पूने में सरकार ने जो प्लेग-कमिटी नियुक्त की थी उसके ताप से तो लोग त्राहि त्राहि करने लगे। इधर ज़बरदस्ती से घरों को धुलाते समय कुछ गोरे सोल्जरों के स्त्रियों पर बलात्कार करने के समाचार माननीय गोखले ने विलायत में प्रकट किये। परन्तु पीछे से अभीष्ट व्यक्तियों के गवाही देने से इनकार कर देने पर उन्हें अपनी बात वापस लेनी पड़ी। सारांश यह कि उन दिनों लोगों का चित्त अत्यन्त उद्विग्न और संत्रस्त हो गया था। उस दशा में उस कमिटी के कष्ट से अपना पिंड छुड़ाने के लिए लोगों को दूसरा रास्ता दिखाई न दिया और चाफेकर नाम के एक पुरुष ने प्लेग-कमिटी के प्रेसिडेंट मि० रैंड का खून कर डाला! (२७-६-९७ ईसवी)

इस खून ने सारे हिन्दुस्तान में सनसनी फैला दी। सरकार के होश भी मुक़ाम पर न रहे। सरकार के दिल में यह बात जँच गई कि 'केसरी' के लेखों से ही लोगों को इस खून करने की उत्तेजना मिली। तिलक पर पहले से सरकार का रोष था ही, तिस पर भी अकाल के दिनों में उन्होंने प्रजा को यह स्पष्ट उपदेश दिया था कि यदि गुञ्जायश न हो तो लगान न दो। शिवाजी उत्सव के बदौलत जो चैतन्य लोगों में उत्पन्न हो रहा था वह उसे सहन नहीं कर सकती थी। उसने सोचा कि इन सारी आफ़तों की जड़ यही तिलक है। इसे उठाकर कहीं फेंक दें। अतएव उसने 'केसरी' के उन लेखों के सम्बन्ध में जो खून के कुछ समय पहले प्रकाशित हुए थे, तिलक को गिरफ़्तार कर लिया और बम्बई हाईकोर्ट में उन पर राज-

द्रोह का मुक़दमा चलाया गया। जस्टिस स्ट्राची के इजलास में मुक़दमा चला और उसमें छः योरोपियन तथा तीन हिन्दुस्तानी मिलकर ६ पुरुषों की ज्यूरी थी। तिलक के बचाव में अन्यान्य कारणों के अलावा एक कारण यह भी पेश किया था कि मूल लेख मराठी में है। उनके अँगरेज़ी अनुवाद में मूल लेख का असली रूप क़ायम नहीं रहता। इस दशा में यह निर्णय करने के लिए कि उनका पाठकों पर क्या प्रभाव होगा, मराठी जाननेवालों की ज्यूरी होनी चाहिए। परन्तु उनकी वह आपत्ति नहीं मानी गई। ज्यूरी में छः पुरुष मराठी न जाननेवाले योरोपियन थे और उन्हीं का मताधिक्य था। यह बात याद रखने योग्य है कि शेष ३ ज्यूररों ने जो मराठी जाननेवाले थे, तिलक को निर्दोष करार दिया और छहों योरोपियनों ने अपराधी ठहराया।

इसी मामले में जज स्ट्राची ने एक और तरह से भी अपनी आततायिता का परिचय दिया। उस समय तक सरकार के प्रति असन्तोष—कटुभाव–उत्पन्न करना राजद्रोह की व्याख्या समझी जाती थी परन्तु जिस लेख में सरकार की आज्ञा भङ्ग करने का अर्थात् उपद्रव करने का उपदेश वाच्यलक्ष्य अथवा व्यङ्ग्य अर्थ के द्वारा नहीं, वह लेख अथवा भाषण कानूनदाँ लोगों की सम्मति तथा हाईकोर्ट के फैसलों में राजद्रोहात्मक नहीं माने गये थे। किन्तु जज स्ट्राची ने इस धारा के "disaffection" शब्द का अर्थ अप्रीति अर्थात् प्रेम का अभाव, करके राजद्रोह का यह अर्थ किया कि जिस वचन के द्वारा प्रेम का अभाव होता है वह राजद्रोहात्मक है और तिलक महाराज को १८ महीने की सज़ा ठोंक दी। निस्सन्देह यह व्याख्या बिल्कुल नयी, अपूर्व कल्पित और

असमर्थनीय थी। इस व्याख्या के अनुसार सरकार के किसी भी कृत्य की आलोचना राजद्रोहात्मक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि आलोचना में कोई न कोई दोष दिखाया ही जाता है और यह स्पष्ट ही है कि जहाँ तक उस दोष का सम्बन्ध है उस आलोचना के द्वारा सरकार के प्रति कलुषितभाव, प्रेमाभाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। स्ट्राची सा० की पूर्वोक्त व्याख्या कितनी अनुचित थी यह सरकार के उस स्पष्टीकरण से भली भाँति ज्ञात हो जाती है जो उसने इस घटना के थोड़े ही दिन बाद एक अलग क़ानून बना कर किया था। उसमें उसने disaffection शब्द में शत्रुभाव, तिरस्कार इत्यादि का समावेश किया था और ऐसे भाव उत्पन्न करनेवाले लेख या व्याख्यान को राजद्रोहात्मक माना था।

इस फ़ैसले की अपील हाईकोर्ट में और फ़िर प्रिवी कौन्सिल में करने का प्रयत्न किया गया; पर वह निष्फ़ल हुआ और तिलक को कारावास भोगना पड़ा।

इसी मुक़द्दमें के आरम्भ के समय तिलक देव ने बा० मोतीलाल घोष को एक पत्र लिखा था, जो अब प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने यह लिखा है कि मित्र लोग माफ़ी मांगने का अनुरोध कर रहे हैं। परन्तु मुझे तो निश्चय है कि मै निर्दोष हूं। इस दशा में माफ़ी मांगकर अपमानपूर्वक अपने देश भाइयों में रहने की अपेक्षा काले पानी को चला जाना मुझे मंजूर है! सचमुच, क्षमा यच्ञा करना तिलक की प्रकृति के लिए एक अशक्य बात थी। "सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते।"

तिलक के मामले में न्यायलय ने तो न्याय किया ही नहीं, परन्तु जब वे कारागृह में पहुँच गये तब एक अनपेक्षित ज़ंग

से सहायता मिली। वेदों का मननपूर्वक अध्ययन करके उनके रचनाकाल और स्थल का संशोधन शास्त्रीय दृष्टि से करने का शौक़ तिलक को बहुत पहले से था इस कार्य्य के लिए उन्होंने बहुत परिश्रम किया था। अपनी सूक्ष्म और अलौकिक बुद्धि के द्वारा उन्होंने इस विषय में नवीन सिद्धान्तों का आविष्कार किया था। जब वे डेक्कन ए० सोसायटी में थे तब फुरसत का समय वे इसी काम में लगाते थे। १८९२ ई० में उन्होंने उन सिद्धान्तों पर एक निबन्ध लिखकर लन्दन की प्राच्य-परिषद् मे भेजा। उसमें उन्होंने आर्यों की मृगशीर्ण अथवा अग्रहायण नक्षत्र से वर्ण गणन करने की प्रथा के आधार पर वेद-काल का निर्णय किया था? इसी निबन्ध को उन्होंने पीछे Orion नाम से पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया। इस पुस्तक के बदौलत पश्चिमी विद्वन्मंडली में उनकी बड़ी ख्याति हुई। वे अनुपम विद्वान् और नवीन प्राच्य-संशोधक मान जाने लगे। इस ग्रन्थ ने प्रसिद्ध प्रो० मैक्समूलर की मित्रता तिलक से करा दी। उन्होंने तथा डाक्टर हण्टर ने महारानी विक्टोरिया से प्रार्थना की कि ऐसा विद्वान् पुरुष का क़ैदखाने में सड़ा करना उचित नहीं। तब विचार के उपरान्त, जब छः महिने सज़ा भोगनी बाकी रह गई थी तब, कुछ नाम मात्र की औपचारिक शर्तों पर लोकमान्य मुक्त किये गये। (६-९-१८९८)

१८९८-१९०८

यहां तक तिलक के जीवन का पूर्वार्ध हुआ, यह कहना अनुचित न होगा। महाभारत में पाण्डु-पुत्र भीम की ऐसी

ख्याति है कि कुश्ती में शत्रु जब उसकी पीठ को भूमि से लगा देता तो उसका बल दूना हो जाता था। ऐसा हाल तिलक देव का था। सरकार की यह अपेक्षा थी कि इस आपत्ति के बदौलत तिलक की लोक प्रियता, कार्य्य-शक्ति, उत्साह कम हो जायगा और अब उन्हें सरकार की आलोचना करने का साहस न होगा। परन्तु उसका यह प्रयत्न ऐसा ही था जैसा कि आग को हवा के झोंकों से बुझाने का प्रयत्न करना। फल यह हुआ कि तिलक की अन्तः शक्ति और लोकमान्यता कम होने के बजाय उलटी अनेक गुना बढ़ अलबत्ते गई। १८९७ तक तिलक महाराष्ट्र के ही अगुआ माने जाते थे। परन्तु पूर्वोक्त अभियोग ने उन्हें सारे भारत में प्रसिद्ध कर दिया। उनके आन्दोलन का जो क्षेत्र महाराष्ट्र तक ही मर्यादित था वह सारे भारत तक विस्तृत हो गया। किञ्चित् भी हतोत्साह न होते हुए दुःसह सङ्कटों से युक्त होना; बल्कि उससे वर्धितोत्साह होना, यह तिलक की अन्तर्वृत्ति की विलक्षण शक्ति, संसार की अत्यन्त महान् आत्माओं के सिवा, शायद ही कहीं दिखाई देती है।

जेल से छूट आने पर "पुनश्च हरिः ॐ" करके फिर से तिलक पहले से भी अधिक ज़ोर शोर के साथ केसरी का सम्पादन करने लगे। केसरी की बिक्री तेज़ी के साथ बढ़ रही थी। इन्हीं दिनों केसरी ने अपना निजी छापाखाना पृथक् रूप से किया।

इस समय तिलक के जीवन की तरह सारे भरतखण्ड के जीवन में एक नवीन परिवर्तन हो रहा था। लोगों में एक नवीन आशा, और आत्मशक्ति की जागृति हो रही थी और भारत के तत्कालीन कर्तृत्ववान् साम्राज्याभिमानी

वाइसराय लार्ड कर्ज़न ने, अपने सात (५+२) वर्ष के कार्य्य काल में इस जागृति को कितने ही गुना बढ़ा देने में सहायता दी। भारत के वाइसराय होने के पूर्व "Persia, Russia in Central Asia," "Problems in the Far East." नाम की जो पुस्तकें लार्ड कर्ज़न ने लिखी हैं उनमें प्रकट हुए उनके विचारों से उनके शासन-कार्य्य की भविष्य—कल्पना हो सकती थी। उनसे उनकी राजनीति—विषयक दूर दृष्टि और राजनीतिज्ञता भले प्रकार दृष्टि गोचर होती है।

लार्ड कर्ज़न ने हिन्दुस्तान की वर्तमान राजपद्धति चिरस्थायी करने, यहां के लोगों के अधिकारों को संकुचित करने, उनकी राजकीय आकांक्षायें नष्ट करने और अँगरेज़ी साम्राज्य-सत्ता का जाल भारत के आस पास से दूसरे प्रदेशों पर फलाने के जो अनेक उपाय समय समय पर आरम्भ किये थे, उनकी असलियत को प्रकट करके कड़ी आलोचना करने का व्रत-पालन केसरी ने अविराम जारी रक्खा; बल्कि, इस समय के केसरी के लेख बड़े ओजस्वी, ज़ोरदार और युक्ति-पूर्ण हैं। केसरी उन दिनों महाराष्ट्र में एक प्रबल शक्ति हो रहा था। नवीन राष्ट्रीय पक्ष का तो वह जीवन ही था। हज़ारों—लाखों महाराष्ट्रीय केसरी को पढ़ पढ़ कर अपने विचार स्थिर किया करते थे। इस प्रकार केसरी के द्वारा तिलक का प्रभाव महाराष्ट्र में और महाराष्ट्र के बाहर भी फैलता जा रहा था। उनकी अगाध विद्वत्ता, कुशाग्र बुद्धिमत्ता, अतोल निर्भयता, अनन्य स्वदेश-सेवा-तत्परता, ये गुण "Aryans and Arctic Home in the Vedas" इन ग्रन्थों से तथा उनके इस मुक़द्दमे से महाराष्ट्र के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी विश्रुत हो गये थे। उनकी बुद्धि और सच्चरित्रता

का तेज ऐसा विलक्षण था कि जो कोई मनुष्य उनसे मिलने आता और कुछ देर उनसे बात चीत करता उस पर उनका सिक्का जमे बिना नहीं रहता था।

कुछ लोगों को उनकी यह बढ़ती हुई लोक प्रियता और प्रभाव सहन न हुआ और उन्होंने उनके चरित्र पर दोषारोप करके सरकार की सहायता से उनकी बदनामी करने का प्रयत्न किया। यह प्रयत्न था—ताई महाराज का मुक़दमा। १६०२ से लेकर १६२० तक अठारह वर्षों में इस मुक़दमें की जटायें बीच बीच में उत्पन्न ही होती जाती थीं और अन्त को अन्तिम फ़ैसला तो लोकमान्य की मृत्यु के कोई ८–१५ दिन पहले ही उनके पक्ष में हुआ। इस अभियोग में तिलक को जो ज़बरदस्त मानसिक कष्ट हुआ, और उनके श्रम का, बुद्धि का, समय का और धन का जो व्यर्थ व्यय हुआ उसके लाभ से देश अलबत्ते अकारण ही वञ्चित रहा। इस मामले का वर्णन केसरी के फाल्गुन बदि ८ शके १८२५ के अङ्क में दिया गया है। वह इस प्रकार है—तिलक के जेल छूटने के कुछ ही दिन बाद उनके एक मित्र, सरदार बाबा महाराज, मरणासन्न हुए। वे निस्सन्तान थे। उन्होंने बलवन्तराव जी से साग्रह अनुरोध किया कि आप मेरी इस्टेट के एक ट्रूष्टी हो जाइए। बलवन्तराव ने अपने मित्र की इस अन्तिम इच्छा के अनुसार उनकी बात मान ली। तदनुसार मृत्यु-पत्र लिखा गया। बाबा महाराज की मृत्यु के बाद ट्रूष्टियों ने उनकी युवती विधवा पत्नी ताई महाराज की रज़ामन्दी से एक लड़का उनकी गोदी दिया। परन्तु पीछे "अन्ये मृत्स्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि" इस श्रेणी के कुछ लोगों ने उनको बहका दिया और शिकायत कराना शुरू कर दिया कि ट्रूस्टियों ने जो लड़का

मेरी गोदी दिया वह मुझे पसन्द नहीं है मुझ पर ज़बरदस्ती की गई—आदि। सरकार ने दक्षिण के सरदारों के पोलिटिकल एजण्ट के द्वारा तहकीक़ात कराई और तिलक पर जाली दस्तावेज़ बनाने और झूठी गवाही देने का इल्ज़ाम लगाकर फौजदारी में दावा दायर कर दिया। जब से मुक़दमा प्रत्यक्ष रूप से आरम्भ हुआ तब से लेकर $1\frac{1}{2}$ वर्ष में कोई १२५ दिन तक उसकी पेशियां पूना, बम्बई, उमरावती और औरङ्गाबाद में हुई। इसीसे इस बात का अनुमान हो सकता है कि इस झगड़े मे तिलक को कितनी झंझट कितना परिश्रम और कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे परन्तु इतने पर भी सन्तोष की बात यह हुई कि हाईकोर्ट की अपील में तिलक समस्त आरोपों से पूर्णतः बरी हुए और सरकार ने तिलक पर जो तूफ़ान उठाया था वह नष्ट हो गया एवं सरकारी तौर पर यह सिद्ध हो गया कि सरकार का ही पक्ष बनावटी काग़ज़ पत्रों और झूठे गवाहों के बल पर खड़ा किया गया था। इस प्रकार अन्त को सत्य की जीत हुई। इस मुक़दमे की असलियत और उसका आन्तरिक हेतु सारे महाराष्ट्र को मालूम हो चुका था—सरकार ने इस काम के लिए वकीलों के मिहनताने इत्यादि के रूप मे कोई ६०–७० हज़ार रुपये खर्च किये थे—परन्तु हाईकोर्ट में यह चाल सफ़ल न हो पाई और तिलक की कीर्ति निष्कलङ्क सिद्ध होकर संसार मे पुनः प्रस्थापित हुई। यह देख कर सारे तिलक-प्रेमियों को स्वभावतः बड़ा ही आनन्द हुआ।

मुक़दमे के पहले की तहक़ीक़ात और मुक़दमे की कार्रवाई दो ढ़ाई वर्षों तक लगातार होती रही और उसमें

सामना करना था सर्वसत्ताधीश सर्वसाधन सम्पन्न सरकार का। दूसरा कोई होता तो उसका सारा बल और उत्साह इसी में खर्च हो गया होता और फिर भी यह शङ्का ही है कि वह सफल होता या नहीं। परन्तु लोकमान्य ने स्वयं अपने बचाव की तैयारी की थी और की भी ऐसी कि अन्त में सरकार को ही नीचा देखना पड़ा। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि फिर भी उनकी अथक कार्य्य-शक्ति को देश के अन्य सार्वजनिक कार्य्य के लिए अवकाश मिल ही जाता था। इसके विषय में उनके विरोधी सर वे. शिरोल का प्रमाण काफ़ी है–"But throughout this ordeal (Tai Maharaja case) Tilak never relaxed his political activity either in the Press or in the manifold organizations which he controlled." (p. 49) अर्थात् इस मुक़दमे (ताई महाराज) का कार्य्य करते हुए भी तिलक ने अपने राजनैतिक आन्दोलनों को समाचार-पत्रों में जारी रखा और अपनी संस्थाओं के कार्य्य में कमी न आने दी।

केसरी के द्वारा राजनैतिक शिक्षा का कार्य्य धड़ाके के साथ जारी ही था। लार्डकर्ज़न के प्रत्येक कार्य्य से लोगों का चित्त क्षुब्ध होता जाता था। इस तरुण, उत्साही महत्वाकांक्षी और कर्त्तृत्ववान् वाइसराय ने भारतीय शासन कार्य के अनेक जटिल और विकट प्रश्न हल किये, उसमें नवीन कार्य्य-शक्ति निर्माण की उसके कितने ही प्रधान दोष दूर किये उसे नवीन गति दी और उच्च आकांक्षाओं से प्रेरित हो कर अविरत श्रम करने का आदर्श स्वयं अपने उदाहरण से निर्माण किया; परन्तु इन सब कार्यों के मूल में 'भारत का प्रेम' नहीं था। बस उसमें यही एक बड़ा भारी दोष था।

केसरी के शब्दों में उनमें " साहस, पराक्रम, कार्यशक्ति, दीर्घोद्योग, होशियारी, दक्षता" इत्यादि सब गुण थे "परन्तु इन गुणों का उपयोग जब ग़रीब प्रजा के हाथ पांव बांधने में, उनकी छाती पर बड़ा भारी बोझा रखकर उसकी उन्नति को रोकने में और अपनी ही शेख़ी अधिकाधिक बघारने में होता है तब ऐसे गुणों को हमारे शास्त्रों में "आसुरी सम्पत्" कहा है। "एशिया महाद्वीप के ईरान, चीन, सयाम, ब्रह्मदेश, तिब्बत, बल्कि जापान तक पर अपना प्रभुत्व कायम करके एशिया खण्ड में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापन करने की ओर कर्ज़न साहब की नीति का रुख़ था। अतएव, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि ऐसा होने के लिए पहले भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का चिरस्थायी होना परम आवश्यक था। और इसके लिए प्रजा के हाथ पांव भी भरपेट कांट छांट करने में अथवा उन्हें काफ़ी निराश करने में आपने कभी आगा पीछा नहीं सोचा। उनका न तो यह मत था और न इच्छा ही थी कि राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस) का उत्कर्ष हो, हिन्दुस्थानियों को कभी न कभी नागरिकता के अधिकार मिलें और विलायत का व्यापार कुछ कम हो जाय तो हर्ज नहीं पर भारत का व्यापार बढ़े। और इसी हेतु से उन्होंने अपने पांच सात वर्ष के कार्य्य-काल में भारत के गले की दासता की ज़न्जीर खूब मज़बूत कर डाली। उनके कार्य्य-कलाप का निचोड़ यह था कि साम्राज्य के वैभव और सुख का उपभोग सिर्फ़ गोरे लोग ही कर पावें। लार्ड कर्ज़न के शासन की यह नाप-जोख जो केसरी ने की थी, वह कितनी यथार्थ है यह बात उन्हीं के यत्न और उनके भारतीय कार्य्य-काल के इतिहास-लेखक टाइम्स के भूतपूर्व सम्पादक मि०

लवट के नीचे लिखे शब्दों से स्पष्ट सिद्ध होती है, जो उन्होंने केसरी की राय के छः वर्ष बाद "लार्ड कर्ज़न के समय का और उसके बाद का भारतवर्ष" (India under Lord Curzon and After) नामक अपनी पुस्तक में प्रकट किये थे। आप कहते हैं—"By his vigorous re-adjustment and overhauling of every branch of the machinery of administration, he infused into British rule in India that renewed strength, and restored efficiency which will enable it to withstand the shocks by which it may be eventually assailed. Our hold upon India would have been loosening today, had it not been for his seven years of anxious, largely unrecognized and still unrequited toil. He made it clear to the people of India that Great Britain is still strong to rule and the memory of his firm control will not be lightly forgotten." p. p. 33. अर्थात् शासन के प्रत्येक विभाग में अपनी अपूर्व सङ्गठन शक्ति और सञ्चालन शक्ति से उसने (लार्ड कर्ज़न ने) भारत के ब्रिटिश शासन में उस नई अपूर्व शक्ति का सञ्चार कर दिया जिससे वह बड़े बड़े धक्कों का मुक़ाबला कर सके और अपने स्थान पर डटी रह सके। यदि लार्ड कर्ज़न अपने अपूर्व परिश्रम और बुद्धि से अपने सात वर्ष के शासन काल में यह काम न करते तो आज भारतवर्ष पर हमारा कब्ज़ा ढीला पड़ गया होता। उसने भारतवासियों को साफ़ साफ़ सुझा दिया कि ग्रेट ब्रिटेन तुम पर राज्य करने के लिये काफ़ी मज़बूत है।

लार्ड कर्ज़न की यह वृत्ति, महारानी के घोषणापत्र के लिए

उनका प्रयुक्त विशेषण—"असम्भाव्य दस्तावेज़", सारे एशिया महाद्वीप के लोगों को उनका दिया हुआ प्रशंसापत्र—"असत्य भाषी," इत्यादि से उनकी उद्धतता स्पष्ट दिखाई देती थी, और उससे हिन्दुस्तान की इस राष्ट्रीय जागृति को उत्तेजना मिलती जा रही थी। सारे एशिया-खण्ड में इस समय यह जागृति की लहर हिलोरें मार रही थी। मि० लवट फ्रेज़र के कथन के अनुसार इस समय—" (There was) a wave of resentment against subjection and tutelage which has swept through every Asiatic country. The people of Asia are beginning to challenge and defy European domination. In India the movement was stimulated by increasing intercourse with the world outside, still more by the dazzling victories of an Asiatic race in the Far East. (ibid p. p. 32)

इस सारी परिस्थिति से लाभ उठाकर महाराष्ट्र में ही नहीं, भारत भर में, राष्ट्रीय पक्ष का प्रसार करने के लिए बलवन्त-राव तैयार थे। यों तो राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस) में वे पहिले ही से शामिल थे (१८६५ में, पूना की कांग्रेस के सेक्रेटरी वही थे। परन्तु इस समय कांग्रेस में उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा था और राष्ट्रीय पक्ष की गति का प्रभाव उस पर बढ़ता जाता था। १६०४ में लार्ड कर्ज़न ने एक क़ानून विश्वविद्यालयों के लिये बनाया और उसके अनुसार शिक्षा की बागडोर सरकार के हाथ में लेली गई। इससे जनता में असन्तोष फैल ही रहा था कि १६०५ में "वङ्ग-विच्छेद" की घोषणा प्रकाशित हुई। इससे बङ्गाल मे और आगे चल कर सारे भारत में ऐसी प्रचण्ड हलचल आरम्भ

हुई जो उसके ५० वर्ष पहले कभी नहीं देखी गई थी। इस समय बङ्गभङ्ग के विरोध में जो महान् आन्दोलन बङ्गाल में हो रहा था, उसे महाराष्ट्र से—तिलक पक्ष से—अनेक कल्पनाओं की–उपायों की सहायता और स्फूर्ति मिली। यही नहीं, बल्कि बङ्गाल को महाराष्ट्र में तिलक-पक्ष से जितनी हार्दिक सहायता मिली इतनी दूसरे प्रान्तों से शायद ही मिली हो। स्वदेशी का आन्दोलन महाराष्ट्र में बहुत पहले से हो रहा था। स्व० गणेश वासुदेव जोशी—सार्वजनिक काका—उसके उत्पादक थे। १८८२ ई० में इसका आरम्भ हुआ था। उसी समय "काका" को विश्वास हो गया था कि व्यापार और उद्योग की उन्नति हुए बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता। उनकी राय थी कि लोगों को स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करके उद्योग-धन्धों को आश्रय देना चाहिए। इसी हेतु से उन्होंने इस आन्दोलन को जन्म दिया। लो० तिलक उसके एक कट्टर पोषक थे। बङ्ग-भङ्ग की चढ़ाई में इस आन्दोलन का उपयोग दुधारी शस्त्र की तरह किया गया। एक धार थी स्वदेशी-हल चल और दूसरी–विदेशी माल का बहिष्कार। इस आन्दोलन का यह स्वरूप, उसकी स्वदेशी-धार से देशी व्यापार-उद्योग को मिलने वाली उत्तेजना, उसकी बहिष्कार धार से होने वाली अंग्रेज़ी व्यापारियों की हानि और उसके कारण ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार पर होने वाला अभीष्ट प्रभाव, इन दोनों धारों का परस्पर-सहायक स्वरूप, इन बातों का विवेचन जो विषय से संलग्न, सप्रमाण, मार्मिक और बहुजन-मनोवृत्ति को पटने वाला होता था, केसरी में निरन्तर किया जाता रहा और उसी के बदौलत महाराष्ट्र के प्रायः सब विचारवान

लोग बङ्गाल की हलचल में सहायता देते थे। इस समय के तिलक के कार्य्य का स्वरूप सर वे. चिरोल के शब्दों में ही पाठकों के अन्तः चक्षुओं के सामने भले प्रकार खड़ा होगा—He had been one of the first champions of Swadeshi as an economic weapon in the struggle against British rule, and he saw in the adoption of the boycott, with all the law-lessness, which it involved, an unprecedented opportunity of stimulating the active forces of disaffection. As far as Bengal was concerned, an 'advanced' press which always took its cue from Tilak's 'Kesari' had already done its work, and Tilak could rely upon the enthusiastic support of men like Bipin Chandra Pal and Arvindo Ghosh, who were politically his disciples...............

Tilak's main object at the moment was to pledge the rest of India, as represented in the Congress, to the violent course upon which Bengal was embarking." अर्थात् ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ आन्दोलन मे 'स्वदेशी' को राजनैतिक शस्त्र की हैसियत से काम में लाने में वो (लो० तिलक) अग्रुओं में से एक था। उसने देखा कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गहरी अप्रीति (घृणा) पैदा करने के लिये मोक़ा अति उपयुक्त है, और यह मोक़ा बहिष्कार का आन्दोलन हाथ में लेने से सध सकता है। बंगाल का 'एडवान्स्ड' प्रेस जो कि तिलक के 'केसरी' से हमेशा विचार लिया करता था अपना काम पहले से ही कर चुका था और तिलक को बिपिनचंद्रपाल और अरविंदघोष,—जो कि राजनैतिक रूप

से उसके अनुयायी थे,—उत्साहप्रद सहयोग से बड़ी मदद मिली। तिलक का ख़ास उद्देश यह था कि शेष भारतवर्ष भी —जैसा कि उन्होंने कांग्रेस में कहा था उसी जोशीले मार्ग का अनुसरण करे जिसका कि बंगाल ने किया है। इस वाक्य का 'violent course' 'जोशीला मार्ग' ये शब्द स्वदेशी-बहिष्कार-आन्दोलन को लक्ष करके लिखे गये हैं। चिरोल के मुंह में ये शब्द निस्सन्देह शोभा देते हैं। परन्तु उसमें से तथा अन्य वाक्यों से द्वेष का विष यदि निकाल दिया जाय तो उनसे इस बात का प्रमाण मिलता है कि बङ्गाल की राष्ट्रीयता की लहर को क़ायम रख के अन्य प्रान्तों में भी उसे फैलाने में तिलक कितने कारणीभूत हुए थे।

१९०५ में राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन काशी में हुआ। उसमें स्व० मा० गोपाल कृष्ण गोखले ने, अध्यक्ष की हैसियत से बहिष्कार का समर्थन किया और यह प्रतिपादन किया कि मौका ही आ पड़े तो उसे राजनैतिक शस्त्र समझ कर कार्य्य-विशेष के लिए उसका प्रयोग करना चाहिए। १९०६ में कलकत्ते में उसकी प्रसिद्ध बैठक हुई। और उसमें भारत के वृद्धपितामह दादाभाई नौरोजी ने भारत को स्वराज्य का मन्त्र पहले ही पहल पढ़ाया तथा कांग्रेस ने उनके नेतृत्व में स्वराज्य की सिद्धि के लिए, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा, यह साधन त्रयी निश्चित की। इन दोनों अधिवेशनों में राष्ट्रीय पक्ष का ज़ोर स्पष्टतः दिखाई देता था। पूर्वोक्त सब प्रस्ताव उसके अस्तित्व का ही फल था। चिरोल साहब कहते हैं–In the two memorable sessions held at Benares in 1905 and at Calcutta in 1906 when the agitation over the partition of Bengal was at its height, his

(Mr. Tilak's) personality was at its height, his was the dominant personality, not at the tribune, but at the lobbies" pp. 50. Mr. Gokhale played into his (Mr. Tilak's) hands and from the Presidential Chair at Benares got up to commend the boycott as a political weapon used for a definite political purpose" pp. 159. अर्थात् बनारस में १६०५ ई० में और कलकत्ते में १६०० ई० में जब कि बङ्ग-भङ्ग का आन्दोलन खूब ज़ोर शोर से चल रहा था। उस समय जो महत्वपूर्ण बैठकें इन दोनों शहरों में हुईं, वहां पर मि० तिलक ही सबसे ज़्यादा प्रभावशाली थे...... .....मि० गोखले ने तिलक के मतानुसार ही बनारस में सभापति की हैसियत से इस बात का ज़ोर से समर्थन किया था कि इस राजनैतिक मामले में बहिष्कार को एक राजनैतिक शास्त्र की गरज़ से काम में लाना चाहिये।

१६०७ में सूरत की अविस्मरणीय बैठक हुई। यह बैठक पूरी न हुई, अध बीच में ही टूट गई। इसका दोष उन लोगों को बताने की आवश्यकता नहीं है जो, इस लेखक की तरह, उस अवसर पर सूरत में मौजूद थे और जिन्होंने निष्पक्षपात पूर्वक सारी कार्रवाई अवलोकन की। उस समय के प्रायः सारे-दोनों पक्षों के-नेता अब इस मर्त्यलोक में नहीं हैं। कांग्रेस में फूट किसने डाली, इस बात का भी अब महत्व नहीं रहा। (१६०७ में जिस राष्ट्रीय सभा में लो० तिलक को बोलने की इजाज़त नहीं दी गई उसी ने उन्हें १६१८ में अपनी तरफ़ से शान्ति परिषद् का प्रतिनिधि नियुक्त किया। कलकत्ते के जिस कांग्रेस-ध्येय विषयक प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेहता—गोखले पक्ष का यह आग्रह था कि स्वराज्य शब्द की व्याख्या

स्पष्ट करके उसका अर्थ औपनिवेशिक स्वराज्य करना चाहिए, परन्तु तिलक पक्ष का कहना था कि नहीं, यह शब्द मोहमिल रखना चाहिए अथवा ध्येय ही मोहमिल—गोलमाल—रक्खा जाय। उस स्वराज्य शब्द से भी कितना ही अधिक पूर्ण स्वतन्त्रता का द्योतक आत्मनिर्णय का ध्येय स्वयं अंगरेज़ सरकार ने ही युद्ध काल में भारत के सामने रख दिया है। इस दशा में अब इस चर्चा में कुछ भी सार नहीं।

१९०७ में राष्ट्रीय पक्ष का आग्रह इसलिए था कि कलकत्ते में निश्चित राष्ट्रीय सभा की नीति का पाँव पीछे न पड़ जाय। १९१६ और उसके बाद तो राष्ट्रीय सभा ने उससे कितने ही गुना अधिक पुरोगामी स्वरूप के प्रस्ताव स्वीकृत किये। इसी एक बात से यह प्रकट हो जाता है कि देश में बहु-जन-मत का प्रवाह किस ओर बह रहा था और उसका निदर्शक पक्ष कौन सा था।

सन् १९०७, देश में राष्ट्रीय पक्ष के नवीन रक्त के प्रबल सञ्चार का निदर्शक है। आगे के व्याख्यानों में Tenets of the new party नाम के व्याख्यान में इस पक्ष के कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। आज तक 'भिक्षा देहि' का जो मार्ग निश्चित था वह निष्फल सिद्ध हुआ। अतएव स्वावलम्बन का—स्वदेशी-बहिष्कार का—सार्वत्रिक बहिष्कार का मार्ग उसमें प्रधानतः बताया गया है।

१९०७ में कांग्रेस के टुकड़े हो गये, उसमें दो विरोधी पक्ष नरम-गरम—उत्पन्न हो गये। उसके पुराने नरम नेताओं ने सिर्फ़ अपने विशेष प्रकार के स्वराज्य के ध्येय को मंज़ूर करने वाले लोगों को ही कांग्रेस में प्रवेश होने दिया और राष्ट्रीय

पक्ष का द्वार बन्द कर दिया। यह द्वार फिर अगले १० वर्षों तक, अनपेक्षित कारणों से, ज्यों का त्यों बन्द रहा।

इधर १९०७ के नरम-गरम-दलों का वाग्युद्ध जारी ही था कि उधर वङ्ग-विच्छेद के आन्दोलन के कारण, भारतवर्ष के वायु मण्डल में बिलकुल ही अपूर्व, अनपेक्षित बमकाण्ड उपस्थित हो गया, जिससे सब लोग आश्चर्य में दङ्ग रह गये! सूरत-कांग्रेस के अधिवेशन के दो ही दिन पहले ढ़ाका के मैजिस्ट्रेट का खून हो गया। दिन पर दिन यह खूनों की मालिका बढ़ती जाने लगी। सरकारी अधिकारियों के प्राण-घात के प्रयत्न होने लगे। नरम और गरम दोनों दलों के नेता इन अकल्पित दुर्घटनाओं को देखकर स्तम्भित हो गये। सरकार तो नितान्त विचार-मूढ़ हो गई और जिस तरह बन पड़ा उसी तरह इन दुर्घटनाओं को बन्द करने का प्रयत्न करने लगी। देश के एंग्लो इंडियन लोग क्रोध और द्वेष से पागल हो गये और सरकार को सुझाने लगे कि कठोर दमन नीति का आश्रय लेना चाहिये और राष्ट्रीय पक्ष के लोगों और अख़बारों का गला घोंट देना चाहिए; क्योंकि उन्हीं के लेखों और व्याख्यानों से यह अनर्थ उत्पन्न हुआ है। प्रयाग के पायोनियर ने तो यहां तक सुझाया था कि बम के सम्बन्ध में सरकार को जिन जिन नेताओं पर सन्देह हो उनकी एक सूची—प्रत्येक प्रान्त की, ज़िले की अथवा परगने की—तैयार की जाय और यह घोषणा कर दी जाय कि जिस हद में बम-दुर्घटना होगी उस हद के ऐसे १०-२०-२५ लोगों को फांसी देदी जायगी। ऐसे समय में राष्ट्र के सच्चे हितैषियों का कर्तव्य था कि सरकार को अप्रिय परन्तु सत्य बात कह दें—और वह यह कि बम दुर्घटनाओं का असली कारण है वङ्ग

विच्छेद से उत्पन्न प्रजा-संक्षोभ ! सरकार को स्पष्टता और निर्भीकिता-पूर्वक यह कह देना आवश्यक था कि—"भाफ़ के बायलर की भाफ़ सेफ्टी व्हाल्व के वज़न से न रुक कर जहां एक बार ।बाहर निकल पड़ी कि फिर इंजिनियर को उस से सङ्केत ग्रहण करके भाफ़ का ज़ोर कम करने की व्यवस्था करनी पड़ती है, उसी प्रकार यदि सरकार यह चाहती हो कि अब आगे प्रजा के सन्ताप की डिग्री बम-प्रयोग तक न बढ़े तो उसे चाहिए कि वह बदला लेने की दुष्ट-भावना को हृदय में स्थान न दे और अपनी शासन-पद्धति को सुधारने का प्रबन्ध करे।" "आस पास की परिस्थिति में जब मनुष्य को कुछ भी आशा नहीं दिखाई देती है तब उसका चित्त अपने आप उस स्थिति से ऊब जाता है। स्पेन्सर का मत है कि सरकार जब ज़िद पर चढ़ कर जुल्म करने लगती है और लोकमत का उचित आदर करने से बराबर इनकार करती चली जाती है तब ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि जिसमें भयङ्कर उपायों के सिवा अन्य उपायों से शासन कार्य्य में परिवर्तन नहीं हो सकता, लोक-स्वभाव और यह परिस्थिति दोनों एक दूसरे का तौल नहीं संभाल सकते और ऐसे समय समतोलता रखने के लिए जो भयङ्कर काण्ड करने पड़ते हैं उसे क्रान्ति कहते हैं। भारतमें यह क्रान्ति-काल अभी आरम्भ नहीं हुआ है, आगे होने वाला है। इसलिए, सावधान आदमी की तरह सरकार को चाहिए कि भविष्य काल की चोटी वह पहले ही से अपने हाथों में ले ले और क्रान्ति करने का काम जनता के हाथों में छोड़ने की अपेक्षा स्वयं ही अपनी शासन-पद्धति में उचित परिवर्तन करना आरम्भ कर दे। यह सरकार और प्रजा जन दोनों के लिए

हितकर है।" लोगों के दिल में यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई है कि अधिकारियों के कृत्यों पर हमारा कुछ न कुछ दवाव रहना चाहिए। इस इच्छा को प्रकट करने के सरल और राजमान्य उपायों से यदि सरकार ने काम न लिया, अर्थात् स्वराज्य के अधिकार देने का "श्रीगणेश" यदि सरकार ने न किया तो जो बात लोगों की स्थिति के अनुसार सरकार की सम्मति से होने वाली है वही लुक छिपकर गुप्त मार्ग से और अयोग्य रीति से करने में कुछ जल्दबाज़ अथवा उन्मत्त लोग प्रवृत्त हुए बिना न रहेंगे। सरकार यदि यह चाहती हो कि लोग आतुरता और आततायिता से गुप्त और भयङ्कर मार्गों को न ग्रहण करें तो उसे बम-गोलों का सच्चा रहस्य समझ कर प्रजा को नाहक़ सताने से बाज़ आना चाहिए, स्वराज्य के काफ़ी अधिकार देना आरम्भ कर देना चाहिए और अधिकारियों को इस मत्सर-ग्रस्त कल्पना का शिकार न होना चाहिए कि ऐसा करने से सरकार के सामर्थ्य की हेठी होती है। वर्तमान अवस्था में यही सब के लिए हितकारक है।" अपनी सदा की नीति के अनुसार केसरी ने, "बम गोलों का रहस्य," "देश का दुर्दैव" और "ये उपाय टिकाऊ नहीं हैं" इत्यादि लेखों के द्वारा यही पूर्वोक्त कार्य्य किया है। परन्तु उस समय सरकार की मनः स्थिति ऐसी हो गई थी कि ऐसी अप्रिय परन्तु स्पष्ट और सत्य बातें उसे पसन्द आना, यहां तक कि उनका सच्चा हेतु पहचानना उसके लिए अशक्य था। सरकार ने अख़बारों का गला घोंटने के लिए उन पर चढ़ाई शुरू कर ही दी थी। और उस में यह आवश्यक था ही कि केसरी के धुर्रे उड़ा दिये जायें और दूसरे पत्रों को गहरी चोट पहुंचाई जाय। सरकारने "काल" नाम के मराठी पत्र पर राजद्रोह का मुक़दमा

चलाया। उसमें काल के सम्पादक प्रो० पराञ्जपे की सहायता करने के लिए तिलक बम्बई आये थे। वहीं वे भी २४ जून १६०८ को "राजद्रोह" के आरोप में गिरफ़ार कर लिये गये। केसरी के 'देश का दुर्दैव' और "ये उपाय टिकाऊ नहीं हैं" इन लेखों के लिए १२४ अ और १५३ अ के अनुसार उन पर अपराध लगाया गया। यह मुक़द्मा १३ जूलाई से लेकर २२ जूलाई तक रात को दस दस बजे तक चलता रहा। बे० डावर जो तिलक के १८६७ वाले मुक़द्मे में उनकी ओर से पैरोकार थे इस समय जज के आसन पर विराजमान् थे। सरकार की तरफ़ से मि० ब्रैन्सन, एडवोकेट जनरल मि० इनवेरेरिटी, मि० बिनिंग ये तीन प्रख्यात योरोपियन बैरिस्टर थे और तिलक स्वयं अपनी पैरवी करते थे। इस समय उन्होंने जिस खूबी के साथ अपनी पैरवी की, उसे विशेष कर उनके जूरी के सामने किये गये भाषण को देखकर आश्चर्य चकित होना पड़ता है कि अन्य अनेक कामों में व्यग्र रहते हुए भी, वकालत का व्यवसाय न करते हुए भी उनका क़ानूनी ज्ञान कितना सूक्ष्म, सतेज और परिपूर्ण था। अपने बचाव का जैसा विषय से संलग्न प्रस्थापन और उत्थान उन्होंने किया उतनी अच्छी और योग्य रीति से बचाव करना उत्तम सिद्ध-हस्त बैरिस्टर के लिए भी असम्भव था। मुक़द्मे के सप्ताह भर स्वयं हाईकोर्ट की लायब्रेरी में पुस्तकें आदि पढ़ पढ़कर उन्होंने इतने प्रमाण एकत्र किये थे कि उनका वह भाषण मानों उसके पहले के समस्त राजद्रोह के मुक़द्मों का इतिहास ही है। स्वयं उनका भाषण बुधवार आधा दिन, गुरुवार, शुक्रवार, सोमवार, और मंगलवार आधा दिन, इस तरह ४ रोज़ तक छः छः घण्टा हुआ। उसके उत्तर में मि० ब्रैन्सन ने जो भाषण

किया उसमें सिवा तिलक के विषय में अनुदार और अधम कोटि के उद्गारों और उद्दंडता पूर्वक शब्द-प्रयोग के और कुछ नहीं था। मुक़दमें के आरम्भ में तथा उसके बाद भी तिलक का यही कहना था कि ज्यूरी में मराठी जाननेवाले और वही लोग होने चाहिए जिनमें केसरी का प्रचार है। उनका यह कथन कितना उचित था, यह ज्यूरी के निर्णय से सिद्ध होता है। ज्यूरी के सात योरपियनों ने तिलक को दोषी और दो मराठी के जानकारों ने निर्दोषी बताया। यही मानों, तिलक के कथनानुसार, उनकी निरपराधता का नैतिक प्रमाण है। ज्यूरी के अपना निर्णय प्रकट करने पर लोकमान्य ने जो धीर-गम्भीर, आत्मविश्वासपूर्ण, भावी काल सूचक शब्द उच्चारण किये वे उनके चरित्र के सारभूत हैं और भारतीयों के अंतःकरण में चिरकाल के लिए अङ्कित रहेंगे "ज्यूरी ने यद्यपि मेरे ख़िलाफ़ अपनी राय प्रकट की है तथापि मेरी अन्तरात्मा कहती है कि मैं पूर्ण निरपराध हूँ। मानवी शक्ति से अधिक सामर्थ्यवान दैवी शक्ति ही मनुष्य-मात्र की तथा राष्ट्रों की भी भवितव्यता पर अपनी सत्ता चलाती है और कदाचित् ऐसा ही ईश्वरी सङ्केत हो कि मेरे स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा मेरे कारागृह में रहने और कष्ट भोगने से ही मेरे अङ्गीकृत कार्य्य का तेज बढ़े।" रात के दस बज गये थे। तिस पर भी जज सा० ने अपना निश्चय प्रकट किया कि मुक़दमे का काम रात में ही समाप्त किया जायगा। उन्होंने अपने भाषण में तिलक की बुद्धि को व्याधिग्रस्त और सड़ी हुई बताया, और कहा कि तिलक देश पर निस्सीम प्रेम करने का बहाना करते हैं, उन्होंने अपने सामर्थ्य और बुद्धिबल का उपयोग देश के अ-कल्याण के लिए किया और अन्त में लोगों की इस टीका टिप्पणी का ख़याल

न करके कि "बे मौक़ा दयार्द्रता" दिखलाई गई, आपने उन्हें सिर्फ़ छः वर्ष कालेपानी की और १०००) जुर्माने की सौम्य सज़ा का हुक्म सुनाया !! अब, लोकमान्य के चिर वियोग के पश्चात् समस्त राष्ट्र ने, एक मत से, एक मुख से, उनके प्रति जो अपूर्व आदर और पूज्यभाव प्रकट किया उससे यह निश्चित हो गया है कि तिलक स्वदेश-प्रेम का बहाना बनाते थे या जज साहब का मन व्याधिग्रस्त होकर सड़ गया था।

तिलक महाराज की सज़ा का हाल मालूम होते ही बम्बई में बड़ी बेढब हलचल मच गई उसने (हलचल ने) स्पष्ट रूप से दिखला दिया कि उनकी अनन्य लोक-सेवा के कारण जनता के हृदय में उनके प्रति कितना आदर और भक्ति उत्पन्न हो गई थी। इस समय के जन-क्षोभ का वर्णन तिलक-विरोधी सर शिरोल की पुस्तक से यहां किया जाता है

"There were serious riots after the trial. The rioting assumed at times a very threatening character. The European Police frequently had to use their revolvers and the troops had several times to fire in self-defence.........The gravity of the disturbences, however, showed the character of the influence which Tilak had already acquired over the lower classes in Bombay, and not merely over the turbulent mill-hands." pp. 56. अर्थात् फ़ैसला होने के बाद बड़ी भारी लूटमार मची। कभी कभी लूटमार बड़ा भयङ्कर रूप धारण करती थी—योरोपियन पुलिस को अकसर अपने तमंचे काम में लाने पड़े और फ़ौज़ को अपनी रक्षा के लिये कई दफ़ा गोली चलानी पड़ी। इस प्रकार की गम्भीर स्थिति

से साफ़ मालूम होता है कि तिलक का न केवल मील मज़दूरों पर ही प्रभाव था बल्कि बंबई की साधारण श्रेणी की जातियों पर भी भारी प्रभाव था।

सरकार को पहले ही से न जाने कैसे मालूम हो गया था कि इस मामले में तिलक को सज़ा होगी ही! उसने तिलक को जेलखाने ले जाने की सब तैयारी कर रक्खी थी। सज़ा का हुक्म सुनाते ही तिलक महाराज एक बन्द गाड़ी में स्टेशन पर ले जाये गये। वहां "स्पेशल" तैयार थी। उसके द्वारा वे साबरमती के कारागृह में पहुंचाये गये। छः वर्ष के लिए काला पानी, सो भी पचास-पचपन वर्ष की अवस्था में कि जिससे फिर सकुशल लौट कर बाल-बच्चों और देश-भाइयों से मिलने में भी सन्देह था। परन्तु इस कठिन अवसर का भी उस महात्मा के चित्त पर कुछ प्रभाव न पड़ा! ट्रेन के रवाना होते ही उन्हें जो नींद लगी सो साबरमती पहुंचने पर जब वे जगाये गये तब कहीं खुली!! चित्त की ऐसी समता, हृदय पर इतना प्रभुत्व, ऐसी निष्काम वृत्ति!! के बदौलत ही वे पीछे, फुलबेंच में अपील नामंजूर होने पर जब मण्डाले के किले में पहुंचाये गये तब, "गीता-रहस्य" के सदृश अलौकिक ग्रन्थ निर्म्माण करने में समर्थ हो सके।

लोकमान्य के पहले कितने ही लोगों को देश निकाले या कालेपानी की सज़ा हुई थी। बहुतों ने अपना अपना अनुभव भी लिखा है और उसमें उन्होंने अपने कष्टों की कहानियां सुनाई हैं और स्वदेश-त्याग के समय होनेवाली वेदनाओं का वर्णन किया है। परन्तु तिलक-देव ने सज़ा का हुक्म सुनने पर, क़ैदखाने में रहते हुए, तथा सज़ा भोगकर घर लौट आने पर कभी, कहीं भी, इस प्रकार के दुखोद्गार प्रकट नहीं किये! वे

इन विकारों से सर्वथा अलिप्त रहे। जो हुआ सो ठीक ही हुआ, भोगना था, भोग लिया; यह भावना उन्होंने अपने हृदय में दृढ़ रक्खी! यह वृत्ति साधारण नहीं। अपने बचाव-भाषण में उन्होंने ज्यूरी से कहा था—"मैं यह बिल्कुल नहीं कहता कि आप मुझ पर दया अथवा कुछ महरबानी कीजिए"! यही धैर्य्य और निश्चय उनका अन्त तक क़ायम रहा। यह धैर्य्य और साहस उन्हें कहां से मिला?—ईश्वर के प्रति अटल भक्ति और अन्तः करण की शान्ति से! अब तक उन्होंने अपना जीवन सार्वजनिक आन्दोलनों में, कार्य-व्यापृतता में, राजनैतिक प्रश्नों के ऊहापोह में लगाया था। परन्तु काराग्रह में दाख़िल होते ही अपनी सब चित्तवृत्तियां उन विषयों से हटाकर, धर्म्म-चिन्तन में, मनुष्य के कर्म्मा-कर्म्म और तज्जात सुख-दुःख के मौलिक विचारों में लगा दीं। उनमें वे इतने लीन हो गये थे कि जब उनके घर के लोग, सरकार से इजाज़त लेकर उनसे मण्डाले में मिलने जाते थे तब उनसे भी उसी विषय के सिवा दूसरी बात-चीत नहीं करते थे। अपने हृदय का वह द्वार ही उन्होंने बन्द कर डाला था! उनके दिन बड़ी धांधली में और दस पांच आदमियों के जमाव में बीतते थे, परन्तु वे एक दम ऐसी जगह पहुंचा दिये गये जहां महीनों मनुष्य का दर्शन दुर्लभ था। ऐसे एकान्तवास में उन्हें छः वर्ष काटने पड़े। परन्तु अपने मन और वृत्तियों पर उनका ऐसा ज़बरदस्त प्रभुत्व था कि इसी अवधि में उन्होंने गीता-रत्नाकर का आलोडन करके उसमें से दिव्य रत्न प्रकट किया। श्रीमद्भागवद्गीता-ग्रन्थ स्वयं ही ऐसा है जिसने आज तक अनेक लोगों के चित्त को शान्ति पहुंचाई है, अनेक लोगों की प्रतिभा को पराकाष्ठा तक पहुंचाया और उसके

द्वारा दिव्य तत्वों का अधिकार कराया है! सैकड़ों लोगों ने उससे स्फूर्ति प्राप्त की है। वैदिक धर्म्म के सिद्धान्त, नीति तथा कर्म्मा कर्म्म-विवेचन और विश्व के संहार-रचना के रहस्य के वैदिक दृष्टि से आविष्करण का वह सार है। हिन्दू मात्र की दृष्टि में इससे अधिक पवित्र ग्रन्थ समस्त धार्मिक-साहित्य में कोई नहीं है। इस दशा में आत्मचिन्तन-मग्न तिलक के लिए उसी ग्रन्थ के शरण जाना उचित ही था। छः वर्ष के अहोरात्र और एक मात्र उसी के अध्ययन का अपूर्व फल "गीतारहस्य अथवा कर्मयोग" है! सनातन-धर्म के भिन्न भिन्न भागों के आचार्य्यों ने अपने अपने मत की पुष्टि के लिए गीता पर एक एक भाष्य लिखा है। उन्हीं की कोटि का यह आधुनिक भाष्य है, इसके कारण गीता के प्रचलित तात्पर्य्य में क्रान्ति हो गई है। महाराष्ट्र की ही नहीं बल्कि एक हद तक सारे भारतवर्ष की विचार-परम्परा को उसने एक नई दिशा दिखाई है, सौ दो सौ वर्षों से राष्ट्रीय साहित्य में ऐसा कोई न कोई ग्रन्थ निर्माण होता ही है जिससे राष्ट्र के विचार और आचार में क्रान्ति हुआ करती है। यह ग्रन्थ उसी श्रेणी का है। इसने सांसारिक जीवन का एक निराला ही ध्येय गीता से खोज कर लोगों के सामने रक्खा है। इस ग्रन्थ से तथा पिछले Orion Artic Home in the vedas इन पुस्तकों से तिलक की अन्तर्वाह्य राष्ट्रीयता प्रकट होती है। उनमें 'परकीयता' लेशमात्र न थी। वे भीतर बाहर सब तरह 'हिन्दू' थे। इन तीनों पुस्तकों में वैदिक संस्कृति की ही भिन्न भिन्न दृष्टियों से विवेचना की गई है और तीनों में उसका स्वरूप उज्ज्वलतर पाया जाता है।

*"गीता रहस्य"—ग्रन्थ मराठी-साहित्य में तो अपूर्व हुई है; परन्तु अब, आगे, गीता-ग्रन्थ का अध्ययन करने वाले का गीता-ज्ञान तब तक पूर्ण न कहा जायगा जब तक वह 'गीतारहस्य' का अवलोकन न करले। उसमें वेदान्त, मीमांसा, सांख्य, कर्म्मविपाक और भक्ति इत्यादि शास्त्रों के अनेक वादों और प्रमेयों का निरुपण शास्त्रीय रीति से किया गया है और प्रसङ्गानुसार गीता के प्रधान सिद्धान्तों की और अरस्तू, सुकरात, स्टाइक्स, स्पेन्सर, मिल, कौट इत्यादि पश्चिमी तत्व-वेत्ताओं के सिद्धान्तों की तुलनात्मक विवेचना की गई है। और अन्त में गीता के सिद्धान्तों की पूर्वापर सङ्गति तथा अन्य आचार्य्यों के मत का विचार करके यह सिद्ध किया है कि ज्ञान-मूलक और भक्ति प्रधान कर्मयोग का प्रतिपादन ही—गीता का मुख्य ध्येय है; यही वह युक्ति है जिसके अनुसार कर्म्म करने से किसी भी प्रकार का पाप न होते हुए, अन्त को, उसी के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। तिलक महाराज ने इस ग्रन्थ में गीता का रहस्य इस प्रकार बताया है—"गीता यह नहीं कहती कि संसार से विरक्त होकर—सन्यास ग्रहण करके—जङ्गल-झाड़ियों में भटकते फिरें; बल्कि हम को अपनी योग्यता के अनुसार अपने सांसारिक कर्त्तव्य लोकसङ्ग्रह के लिए, निष्काम भाव से, आत्मौपम्य दृष्टि से उत्साह के साथ आजीवन करते रहना चाहिए और उसके द्वारा उस नित्य परमात्मा का सर्वदा यजन करें जो पिण्ड—ब्राह्माण्ड के सर्वभूतों में एकता के साथ

---

* इस अलौकिक ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद हो गया है। मूल्य ३) मिलने का पता—मध्य भारत पुस्तक एजंसी, इन्दौर

व्याप्त है ! इसी में हमारा पारलौकिक और ऐहिक कल्याण है।" स्वयं उनका जीवन इस उपदेश का मूर्तिमान् उदाहरण था। तिलक ने इस ग्रन्थ की रचना करके राष्ट्रीय जीवन में नवीन चैतन्य निर्माण किया है !

१९१४—१९२०

जज डावर ने जब सज़ा का हुक्म सुनाया तब, उनके भाषण से ज्ञात होता है कि, स्वयं उन्हें भी यह आशा नहीं थी कि तिलक इस सङ्कट से छूट कर वापस आजायंगे। परन्तु भारत का भाग्य इतना प्रतिकूल नहीं था। १९१४ में जब लोकमान्य जेल से छूट कर आये तब सारे देश भर में अत्यन्त आनन्द छा गया और यह मालूम होने लगा कि मानों देश के गये हुए प्राण फिर से आगये। १९०८ ई० से १९१४ ई० तक—लोकमान्य को सज़ा होने से उनके लौट आने तक ६ वर्ष की अवधि में राष्ट्र के जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। भारतीय राजनीति-क्षेत्र में दो नई आत्माओं का अवतार हो चुका था। उनके प्रयत्न तथा काल के प्रवाह से राष्ट्र बराबर आगे बढ़ रहा था। उसी समय में योरपियन 'महाभारत' का श्री गणेश हुआ। विश्वभर में आत्मनिर्णय और स्वतन्त्रता के अधिकारों की घोषणा होने लगी थी। छः वर्षों तक लोकमान्य का राजनीति से कुछ भी सम्बन्ध न रहा था। परन्तु उनकी बुद्धि की सजीवता बड़ी विलक्षण थी—वह समय की गति के साथ साथ परिपक्व और वर्धिष्णु होती गई। थोड़े ही दिनों के बाद उन्होंने फिर से अपना स्वदेश-सेवा का उद्योग उतने ही ज़ोर के साथ शुरू किया

और राष्ट्रीय पक्ष के आदि सञ्चालक का स्थान पुनः प्राप्त कर लिया !

लोकमान्य की बुद्धि की सजीवता का प्रमाण उनकी उस नई नीति से मिलता है जो उन्होंने राष्ट्रीय-पक्ष के सञ्चालन के लिए निश्चित की थी। गीता के अध्ययन से उनको बुद्धि विशेष परिपक्व हो चुकी थी और "लोक सङ्ग्रह" के लिए कार्य्य करने की उनकी प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। राजसत्ता का अंश नष्ट होकर पूर्ण सात्विकता का सञ्चार हो गया था। 'वीर' के स्थान पर 'महात्मा' की गुरुता प्राप्त कर चुके थे। लोकमान्य के इस के आगे के जीवन में सिद्धान्तों को न छोड़ते हुए लोगों से मिलजुल कर काम करने की तैयारी अधिक देखाई देती है। परन्तु उनकी उद्योग-परता और बुद्धि का पुरोगामित्व, उनकी अवस्था के लिहाज़ से कम न होते हुए उलटा बढ़ रहा था। उन्होंने स्वराज्य (Home Rule) का झण्डा देश के सामने रक्खा । सारे महाराष्ट्र में स्वराज्य-सङ्घ की शाखायें स्थापन करके स्वराज्य आन्दोलन को खूब आगे बढ़ाया। युद्धकाल में आपने युवकों को अंगरेज़ी सेना में भरती होने का उपदेश दिया। आप का कहना था कि युद्धभूमि पर पैर रखने से ही युवकों में क्षात्र तेज, आत्म-विश्वास और नवीन जगत की सच्ची जानकारी हो सकेगी।

१६१६ में आपने सारे महाराष्ट्र में दौरा करके कितने ही स्वराज्य-सङ्घ स्थापित किये। इस समय के आपके व्याख्यान अत्यन्त प्रभावशाली, ओजस्वी और चित्ताकर्षक थे। महाराष्ट्र में उन्होंने बड़ी खलबली मचा दी। उनके मुंह का वह वाक्य "Home rule is my birth right and I will have it"

"अर्थात् स्वराज्य मेरा जन्माधिकार है और मैं उसे प्राप्त करके ही रहूंगा" सारे देश का "विरुद-वचन" हो गया।

इसी दौरे में आपने बेलगांव और नगर में भी भाषण दिये थे। उनके सम्बन्ध में आप पर राजद्रोह फैलाने का प्रयत्न करने का अभियोग लगाया गया और पूने के ज़िला मैजिस्ट्रेट के इजलास में २०।२० हज़ार की दो ज़मानतें दाख़िल करने के लिए मुक़दमा चलाया गया। उस समय आमतौर पर लोगों का यह ख़याल था कि स्वराज्य (Home rule) आन्दोलन को तहस-नहस करने के लिए ही सरकार ने यह मुक़दमा चलाया है। ज़िला-अदालत में तिलक अपराधी करार दिये गये और ज़मानतें तलब की गईं। परन्तु हाईकोर्ट ने अपील में ज़िला-अदालत के फ़ैसले को मनसूख कर दिया। जज साहब ने फैसला किया कि तिलक ने अपने भाषणों में स्वराज्य मांगा है और यह प्रतिपादन किया है कि भारतीय शासन में हिंदुस्तानियों का ही अधिकार होना चाहिए और राजकीय सत्ता का अंश धीरे धीरे परन्तु दिन पर दिन अधिकाधिक भारतीय लोगों को मिलना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करना क़ानून के प्रतिकूल नहीं। उनके भाषणों में की गई आलोचना ठीक थी और समष्टि रूप से सारे भाषण का फल राजद्रोह फैलाना नहीं था। इस निर्णय के बदौलत होमरूल आन्दोलन वैध सिद्ध हुआ और उसे विशेष बल मिला।

१९१६ ई० में लखनऊ में राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन हुआ। १९०८ से यह सभा एकपक्षीय हो गई थी। इस बैठक में दोनों पक्षों में एकता होगई। इस सभा में राष्ट्रीय पक्ष का प्रवेश क्या हुआ, मानों निर्जीव देह में फिर से प्राण

सञ्चार हो गया। इस सभा से देश का विश्वास जाता रहा था। अब फिर से लोग उस पर विश्वास करने लगे। गया हुआ प्रतिनिधिक स्वरूप उसे फिर से प्राप्त हुआ। इस अधिवेशन में राष्ट्रीय पक्ष की तरफ़ से समझौता करने का सारा श्रेय लोकमान्य को तथा श्रीमती बेसेन्ट को है। इसी बैठक में हिन्दू-मुसलमानों की एकवाक्यता हुई, प्रसिद्ध कांग्रेस-लीग स्कीम (Congress-League Scheme) तैयार हुई, जिसके द्वारा भारत की उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की मांग कार्य के रूप में परिणत की गई।

लोकमान्य जब मण्डाले में थे तब सर व्हेलेंटाइन चिरोल की Indian Unrest नामक प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमें सर व्हेलेंटाइन ने भारतीय जनता के क्षोभ की मीमांसा की है और उसके दोष का टीका राष्ट्रीय पक्ष और उसमें भी महाराष्ट्र के राष्ट्रीय पक्ष और उसके अध्वर्यु लोकमान्य तिलक के माथे मढ़ा है। वे कहते हैं—If anyone can claim to be truely the father of Indian unrest, it is Balgangadhar Tilak (pp 41) अर्थात् भारतीय अशान्ति का यदि कोई वास्तव में जनक हो सकता है तो वह बाल-गंगाधर तिलक ही है। यदि सर व्हेलेंटाइन इतना ही लिखकर चुप रह जाते तो विशेष क्षोभ की बात नहीं थी। भारतीय जनता का क्षोभ सर शिरोल की राय में चाहे अनिष्ट हो परन्तु सिर्फ़ यह कह देने से कि ऐसा क्षोभ भारत में है, न भारतवासी और न तिलक ही क्षुब्ध होते, परन्तु उन्होंने उसमें यह भी दिखाने का प्रयत्न किया था कि तिलक, उनका पक्ष और उनका आन्दोलन राजद्रोह से पूर्ण और अत्याचार-मूलक है और उनका उद्देश है-ब्रिटिश राज्य की जड़ को

उखाड़ना। ऐसे मिथ्यावाद से इग्लैंड में तथा बाहर के देशों में राष्ट्रीय पक्ष के प्रति ग़लतफहमी पैदा हो सकती थी। इसलिए उनका निराकार करना आवश्यक था। इस हेतु से सर ह्वेलें-टाइन पर मान-हानि की नालिश करने के लिए लोकमान्य ने इंग्लैंड जाने की तैय्यारी की। वे सीलोन तक पहुंच भी चुके थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इंग्लैंड आने का आज्ञापत्र देने से इनकार कर दिया। परन्तु पीछे से प्रवेश-पत्र मिल गया और लोकमान्य की तरफ़ से विलायत में दावा दायर किया गया। इस मामले में सर ह्वेलेंटाइन की ओर से प्रसिद्ध आय-र्लैन्ड-होमरूल-विरोधी सर एडवर्ड कार्सन पैरवी करते थे। यह बात भी अब सब को मालूम हो गई है कि इस मुक़दमे में सर ह्वेलेंटाइन की सहायता बम्बई सरकार ने किस प्रकार की। सरकारी क़ागज़-पत्र भी उन्हें देखने के लिए दिये गये थे। भारत-सरकार का एक सिविल सर्विस का अधिकारी सर ह्वेलेंटाइन की सहायता इग्लैंड में कर रहा था। यह बात भी अब प्रकट हो गई है। इतनी सारी तैय्यारी हो चुकने पर भी सर ह्वेलेंटाइन इस मामले में विजय प्राप्त कर पाते या नहीं, इसकी भी शङ्का ही है। यदि सर एडवर्ड कार्सन ने जूरी को यह न सुझाया होता कि तिलक की मान-हानि सिद्ध हो जाने पर भारत सरकार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी और लोगों पर अनिष्ट असर होगा। यदि इस मामले पर कालों-गोरों के वर्ण-द्वेष का रंग न चढ़ाया होता तो विद्वानों का अभिप्राय है कि,उसका फैसला तिलक के ख़िलाफ़ न होता। अपनी सदा की रीति के अनुसार इस मामले की जो तैयारी तिलक महाराज ने की थी उसका तथा मामले का भीतरी हाल जिन्हें मालूम था, उनका भी यही ख़याल था। तिलक को आशा थी कि

हिन्दुस्तान में नहीं, तो इंग्लैंड में ज़रूर न्याय-पूर्वक मामले का निर्णय होगा। परन्तु अन्त को हिन्दुस्तान की तरह इंग्लैंड में भी फ़ैसला उनके प्रतिकूल ही हुआ। इस मुक़दमे की असलियत को पहचानकर महाराष्ट्र ने लोकमान्य को उसके अपरिमित व्यय-भार में कितनी सहायता पहुंचाई, यह बात सब पर प्रकट ही है।

अभियोग का निर्णय प्रतिकूल हुआ। इतने दिनों का श्रम व्यर्थ गया। परन्तु फिर भी लोकमान्य की चित्तवृत्ति पर उसका कुछ भी असर न हुआ। न उनकी उद्योगपरता कम हुई। यह असम्भव था। प्रसिद्ध सुधार-क़ानून का मसविदा इस समय पार्लियामेंट में पेश था। राष्ट्रीय पक्ष और महाराष्ट्र की होमरूल लीग की तरफ़ से भेजे गये शिष्ट-मण्डल (deputation) के नेता की हैसियत से आप पहले ही से इंग्लैंड में लोकमत को जागृत कर रहे थे। मुक़दमे का काम ख़तम होने पर यह कार्य्य और भी ज़ोर के साथ होने लगा।

भारतीय राष्ट्रीय सभा के ख़र्च से विलायत में एक ब्रिटिश कांग्रेस कमिटी स्थापित है। वह शिथिल और निष्क्रिय हो गई थी। उसका मुख पत्र "इंडिया" (India) भारतीय जनता की सच्ची आकांक्षायें प्रकट न करता था। लोकमान्य ने इसके विषय में आन्दोलन किया। भारतीय कांग्रेस कमिटी की अनुमति से ब्रिटिश कांग्रेस कमिटी की रचना फिर से की। उसमें नवीन जीवन डाला। "इंडिया" (India) पत्र की नीति को बदल कर उसे भारतीय राष्ट्रीय सभा का मुख-पत्र बनाया। इस प्रबन्ध से राष्ट्रीय सभा की नीति के अनुसार ही इंग्लैंड में भले प्रकार काम होने लगा।

विलायत के लोगों को यह बता देना आवश्यक था कि

भारतीय राष्ट्र के विचार सुधार-क़ानून के विषय में क्या हैं? अतएव आपने अन्य सभासदों के साथ इंग्लैंड में अनेक व्याख्यान दिये। उनकी बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, अनुभव और स्वार्थत्यागपूर्ण जीवन का प्रभाव न पड़ना असम्भवनीय था। जिन जिन को तिलक से मिलने का अवसर मिला उनका तिलक के प्रति आदर-भाव बढ़े बिना न रहा। भारतीय आकांक्षाओं के प्रति विलायत के लेबर-पक्ष की सहानुभूति प्राप्त करने में लोकमान्य के प्रयत्न अनेक अंशों में कारणीभूत हुए हैं। इसी समय राष्ट्रीय सभा ने लोकमान्य को शान्ति-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि चुना था; परन्तु सरकार ने जब यह बात नामंजूर की तब आपने राष्ट्रपति विलसन को पत्र* लिखा और भारतीय आकांक्षाओं के प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त की।

लोकमान्य विलायत में ही थे कि इधर भारत में उनकी साठवीं वर्षगांठ मनाई गई और आपकी अनन्य देश-सेवा के उपलक्ष्य में १ लाख रुपये की थैली आपको अर्पण करने की तैयारी होने लगी। जब यह कल्पना लोगों के चित्त में उत्पन्न हुई तब आपकी जन्म तिथि को पूरा एक महीना भी नही रहा था। परन्तु यह विचार प्रकट होते ही क्या महाराष्ट्र और क्या अन्य प्रान्त सब जगहों से चन्दों की वर्षा सी होने लगी और वर्षगांठ के दिन १ लाख रुपये पूरे हो जाने की बात प्रकट कर दी गई। लोकमान्य के विलायत से लौटने पर, उनके स्वर्गवास के थोड़े ही दिन पहले, यह रक़म प्रकाश्य रूप

---

* यह पत्र विलायत के व्याख्यानों में इस पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में छपा है—देख लीजिये

से उन्हें समर्पित की गई। और उन्होंने उसे ज्यों का त्यों होमरूल लीग के हवाले कर दिया।

भारत में आने पर उन्होंने एक और महत्वपूर्ण कार्य्य किया। यह आपका अन्तिम कार्य्य था। आपने नवीन युग के अनुरूप राष्ट्रीय पक्ष का नया नाम कांग्रेस डेमोक्रेटिक पक्ष रक्खा*—और उसकी भावी नीति और कार्य्यक्रम भी निश्चित कर दिया! १६१६ की अमृतसर कांग्रेस में लोकमान्य के धुरीणत्व में राष्ट्रीय पक्ष का यह प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका था कि सुधार कानून अपूर्ण, असन्तोषकारक और निराशाजनक है। उसी प्रस्ताव के अनुसार इस पक्ष की नीति निश्चित की गई थी। इस पक्ष का कथन है कि सुधार यद्यपि अपूर्ण हैं तथापि जितने अधिकार मिले हैं उतनों ही को स्वीकार कर-के और अधिकार प्राप्त करने के लिए आन्दोलन करते रहना चाहिए। इसके लिए उन्होंने तीन साधनों को अङ्गीकार किया है-शिक्षा, आन्दोलन और सङ्गठन। पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति इस पक्ष का ध्येय है। इसलिए इस पक्ष का और तिलक का सङ्कल्प था कि कौंसिलों में जाकर वैध रीति से आन्दोलन किया जाय और इसके लिए उन्होंने ज़ोर शोर से उद्योग आरम्भ किया था कि हमारे ही पक्ष के अधिक से अधिक लोग कौन्सिल में जा सकें। वह शुरू ही था, शरीर पर धारण किया कवच कायम ही था, कि ता० २३ जुलाई को उन्हें कुछ ज्वर हो आया और अन्त में यही साधारण ज्वर उनके लिये काल ज्वर सिद्ध हो गया। दिन पर दिन हालत बिगड़ती

---

*"कांग्रेस के लोकशाही दल की नीति" नामक लेख मे—जो कि अन्तिम पृष्टों में दिया हुआ है—देखिये

गई पर लो० तिलक ने मृत्यु से वीरता-पूर्वक संग्राम किया। अन्त तक उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। अपने मित्रों को चिन्तित देखकर वो दृढ़ता से कहते कि मैं इस बीमारी का शिकार नहीं होऊंगा। मृत्यु के दो दिन पहले उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे गीता जी का पाठ करवाया। इस समय लोकमान्य सन्निपात की हालत में थे उनके पास भगवद्-गीता रक्खी हुई थी। उसमें से श्री कृष्णचंद्र का चित्र लोक-मान्य को बतला कर एक सज्जन ने पूछा "यह क्या है?" थोड़े समय तक चित्र की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर लोक-मान्य ने कहाः—"यह श्री कृष्णचंद्र का चित्र है, इनके चरित्र का सबों को अनुकरण करना चाहिये" मृत्यु के कुछ देर पहले आपने भगवान श्री कृष्ण का यह श्लोक पढाः—

> यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
> धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

पश्चात् आपने श्री कृष्णचंद्र की तसवीर को प्रणाम किया और आंखें मूंदली और इस प्रकार ता० ३१ वीं जुलाई की रात के १२ बज कर ४० मिनिट पर इस महान राष्ट्र पुरुष की इस कर्म्मभूमि पर की अवतार-लीला समाप्त हो गई।

लोकमान्य की मृत्यु के कुछ ही दिन पहले—इनकी ६४वीं वर्षगाँठ के दिन-करवीर के जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य्य ने उन्हें "राष्ट्र-सूत्रधार" की,उपाधि से सम्मानित किया था यह पदवी अत्यर्थ सार्थक थी। उससे लोकमान्य के कार्य्य की व्याप्ति

का अनुमान होता है। सच पूछिए तो महाराष्ट्र के तो लोक-मान्य 'अनभिषिक्त राजा' ही थे, परन्तु महाराष्ट्र के अतिरिक्त सारे भारत में भी उनके जैसा जनता के सार्वत्रिक आदर और श्रद्धाभक्ति का अधिकारी—कदाचित् महात्मा गाँधी को छोड़कर दूसरा कोई पुरुष नहीं था। लोकमान्य के स्वर्गवास के पश्चात् तो यह भक्ति सारे भारत में इतने सार्वत्रिक बल के साथ प्रकट हुई है कि हिन्दुस्तान के आधुनिक इतिहास में उसकी जोड़ नहीं मिल सकती।

लोकमान्य के स्वर्गवास पर उनके मित्रों ने तथा आजन्म विरोधियों और शत्रुओं ने भी मुक्त कण्ठ से जो उनका गुण-गान किया है उसमें उन्होंने तिलक के लोकादर की मीमांसा भिन्न भिन्न प्रकार से की है। सब का सार एक ही है। वह यह कि तिलक देव ने अपनी अलौकिक प्रतिभा, अपनी सारी शक्ति, अपना सारा जीवन राष्ट्र की अनन्य सेवा में लगा दिया।

लो० तिलक की तरह अलौकिक और सर्वगामिनी बुद्धिमत्ता रखनेवाला महापुरुष सदियों में कहीं एकाध बार जन्म लेता है। वे अनुपम गणितज्ञ थे, क़ानून के पारदर्शी पण्डित थे, राजनीति शास्त्र में तो वे पारङ्गत ही थे। Orion और artic Home in the Vedas इन ग्रन्थों ने 'प्राच्य संशोधक' के नाम से उनकी कीर्ति फैला दी। परन्तु उनके गीता रहस्य से इस बात का निश्चय हो जाता है कि उनका पूर्वी और पश्चिमी दर्शन शास्त्रों का अध्ययन कितना गम्भीर था और उनकी प्रतिभा कितनी व्यापक और सूक्ष्म थी। इस ग्रन्थ ने संसार के साहित्य कोष की अपूर्व वृद्धि की है और लोकमान्य को आधुनिक काल का आचार्य्यत्व प्राप्त करा दिया है।

लोकमान्य का शव-दर्शन।

भारत के सौभाग्य तिलक का अंतिम दर्शन कर लीजे।
ध्रुव तारा निज जीवन पथ का पाठक इन्हें बना लीजे॥
मुक्ति आपकी हो जावेगी इष्ट वस्तु मिल जावेगी।
भारत माता की जलती छाती ठंडी पड़ जावेगी॥

लोकमान्य की बुद्धि का यह विशेष गुण था कि वह सर्वदा सजीव रहती थी। मनुष्य चाहे कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, अवस्था के अनुसार उसकी बुद्धि दुर्बल होती जाती है। देश का युवक दल आगे बढ़ता चला जाता है और जो अग्रणी एक समय आगे रहते थे वे समय पाकर पिछड़े जाते हैं। सभी दूर यह दृश्य दिखाई देता है। परन्तु लोकमान्य इस प्रकार कभी पीछे नहीं रहे। वे 'कल' (yesterday) के कभी नहीं कहलाये।

हमेशा आज के ही रहे। समय के प्रवाह के साथ वे सदा आगे जाते और अपने पीछे पीछे देश को आगे बढ़ाते। इसीलिए वे आजन्म राष्ट्र-नेता बने रहे।

लोकमान्य जैसे ही तत्वज्ञ और ध्येयदर्शी थे वैसे ही व्यवहार कुशल और लोकसंङ्ग्रह कर्ता भी थे। ध्येय और व्यवहार की एकता उत्तम प्रकार से कर देने में वे बड़े सिद्ध-हस्त थे। अपनी कुशाग्र, दूरदर्शनी और उदात्त बुद्धि के बल पर वे ध्येय का निश्चय करते और व्यवहार में समाज के अनुसरण के योग्य उसका सद्यः स्वरूप निश्चित कर देते। जैसा कि उन्होंने स्वयं एक बार कहा था। अपने ध्येय का निश्चय हो जाने पर भी, वे इतना आगे पैर कदापि न बढ़ाते थे जिसे समाज सहन न कर सके। दो चार क़दम समाज के आगे जाकर जब वहाँ तक समाज को ले आते तब धीरे से और दो क़दम आगे बढ़ जाते। इस प्रकार उन्हें अनुयायियों की कमीं कभी नहीं रही।

लोकमान्य को युवक-दल देवता की तरह मानता था। उसका एक प्रधान कारण है उनकी

अन्तर्बाह्य पूर्वी वृत्ति

पूर्वी संस्कृति के वे अत्यन्त अभिमानी थे। बल्कि यों कहें कि यह संस्कृति उनमें समरस हो गई थी। उनके Orien से लेकर गीतारहस्य तक समस्त ग्रन्थ, उनका सारा जीवन इस संस्कृति के श्रेष्ठत्व की स्थापना करने के उद्देश से कार्य्य-प्रवृत्त हुआ था, अथवा उनका परिणाम तो निदान यही हुआ।

लोकमान्य के सारे जीवन का रहस्य उनके कर्मयोगी होने में है। अपने उत्तर जीवन में जिस निष्काम कर्मयोग का उपदेश उन्होंने संसार को फिर से किया उसके अनुसार उन्होंने स्वयं आजन्म आचरण किया। ऐसे जीवन और चैतन्यदाई कर्ममय जीवन का वर्णन Plain living and high Thinking अर्थात् "सादा जीवन और ऊचे विचार" इन शब्दों में बहुत ही शिथिल मालूम होता है। उनकी रहन-सहन तो जीवन पर्यन्त एक साधु की तरह अत्यन्त सादी थी ही; परन्तु उसके साथ ही निश्क्रियता अथवा उदासीनता उन्हें कभी छू तक नहीं गई। उन्होंने अपनी नहीं, सारे भारत की गृहस्थी की गाड़ी चलाई और वह भी ऐसी शानबान और उत्साह के साथ कि शत्रु भी दातों ऊंगली दबा गये। परन्तु उस सारी गृहस्थी—दुनियांदारी में स्वार्थ या लोभ का लेश भी नहीं था। अनासक्ति उनका अखण्ड व्रत था। यह उत्कट क्रियोत्साह और उसके साथ ही यह अपूर्व अनासक्ति का संयोग लोकमान्य के जीवन का सार है।

लोकमान्य का अत्यन्त शुद्ध आचरण इस अनासक्ति का ही एक फल था। उनके कट्टर शत्रु को भी उनके निजी वर्ताव में किञ्चित् मात्र दोष निकालने के लिए सुई के बराबर भी स्थान नहीं मिला कनक और कान्ता, मोह के इन दोनों साधनों का प्रभाव उन पर कभी नहीं पड़ा और न क्षुद्रता, मत्सर अथवा ऐसे ही मानसिक दुर्बलता उनमें किसी को दिखाई दीं। निजी तौर पर उनका वर्ताव, छोटे से लेकर बड़े तक के साथ, अत्यन्त प्रेम, निरभिमान और सरलता का था। सार्वजनिक विषयों में ज उनका विरोध करते थे उन्हें भी निजी मामलों में उनसे सहायता मिलती थी और उन लागों को भी उसे स्वीकार करने में सङ्कोच नहीं होता था। लड़कपन के कितने ही मित्रों ने उनके राजनैतिक विचारों का विरोध किया ; परन्तु इस के कारण उनकी निजी मित्रता में कभी अन्तर नहीं पड़ा। संक्षेप में, उनकी महानता या यों कहें कि फाज़िल उदारता, उनके अन्य अलौकिक गुणों की शोभा को और भी बढ़ाती थीं।

तिलक महाराज का निश्चय और दृढ़ता या निर्भयता उस अनासक्ति का दूसरा फल था। सारे भारत ने उन्हें अपने सिर चढ़ाया था। उनकी देशभक्ति के अतिरिक्त यदि कोई दूसरा गुण इसका कारणीभूत हुआ तो वह है उनकी दृढ़ता या निर्भयता। अनेक आपत्तियां उमड़ीं, अनेक यन्त्रणायें सहीं, जेल के कष्टों को भोगा, इष्ट-मित्रों ने साथ छोड़ दिया, स्व-जनों का वियोग हो गया, प्राणों तक पर आफ़त आ गई, सब कुछ गंवा बैठने का अवसर उपस्थित हो गया, तो भी रत्ती भर न डिगते हुए, किञ्चित भी खिन्न न होते हुए, अटलता और शान्ति के साथ, ही नहीं, बल्कि श्रद्धा के साथ,

जिसने सब कुछ सहन किया वह यदि भारतवासियों के हृदय का सम्राट् हो जाय तो इसमें आश्चर्य्य क्या है ?

मरते दम तक ही नहीं बल्कि, मृत्यु के बाद भी यह अनासक्ति और देशभक्ति उनके आचरण में दिखाई दी। अपना सारा जीवन तो उन्होंने राष्ट्र के चरणों में अर्पण कर ही दिया था, परन्तु ज़िन्दगी के बाद भी उन्होंने जो कुछ अपने पास रख छोड़ा था, देश-सेवा के लिए माता की वेदी पर चढ़ा दिया।

कम से कम भारत-देश तो लोकमान्य को प्रायः सर्वाङ्ग परिपूर्ण और सर्व दोष रहित मानता रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसी दशा में जी भर कर उनका गुण-गान करना अशक्य है। थोड़े में कहें तो जबतक लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक के सदृश विभूति भारत-भूमि में उत्पन्न होती है तब तक उन्नति शिखर पर आरूढ़ होने की उसकी आशा नष्ट नहीं हो सकती *।

* यह जीवन चरित्र श्रीयुत् विनायक सीताराम सरवठे बी. ए. एल. एल. भूतपूर्व सम्पादक, "मल्हारी मार्तंड विजय" इंदोर ने लिखा है।

लो० तिलक के व्याख्यान

अनुवादक

श्रीयुत सुखसम्पत्तिराय भंडारी
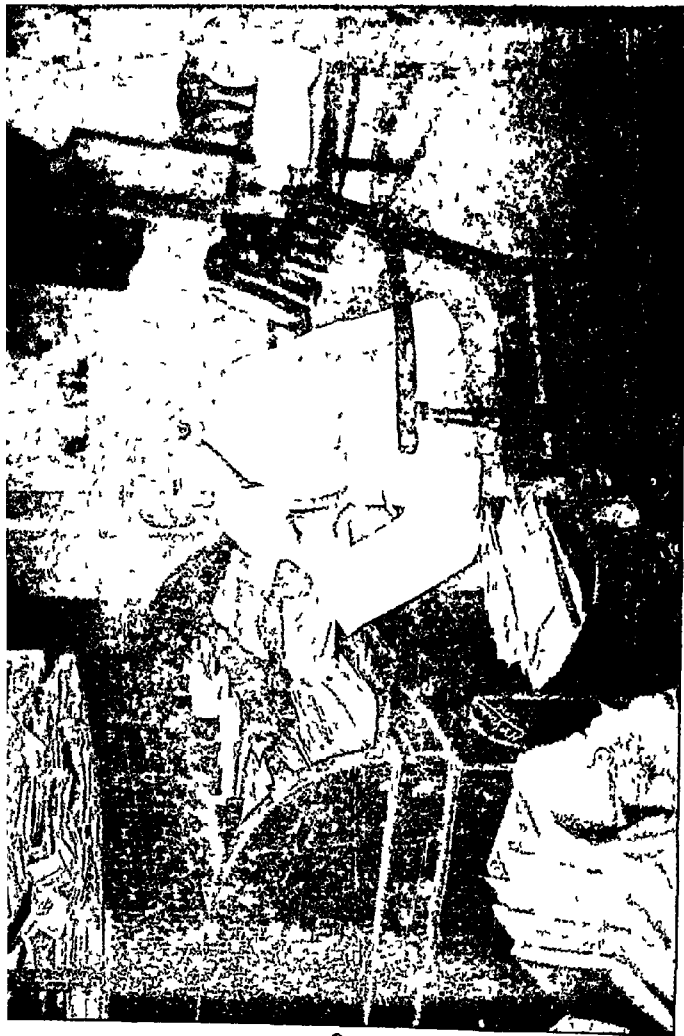
कर्मयोगी तिलक कार्य्य करते हुए।

लो० तिलक के व्याख्यान ।

भारत धर्म महामण्डल ।

[बनारस जनवरी सन् १६०६ ई०]

मुझे दुःख है कि मैं सिवा मराठी और अंग्रेज़ी के अन्य किसी भाषा में नहीं बोल सकता । धार्मिक कार्य्यों में अंग्रेज़ी भाषा का बहिष्कार करना चाहिये । पर मैं लाचार हूँ और आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे । इस समय मैं हिन्दू धर्म के महत्वपर-उसकी वर्तमान स्थिति पर-उसे नाश हो जाने से बचाने के प्रयत्नों पर-कुछ बोलना चाहता हूँ । सवाल यह है कि हिन्दू धर्म क्या है ? अगर आप हिन्दुस्थान के जुदे जुदे हिस्सों में जावेंगे तो आप हिन्दू धर्म के विषय में जुदे जुदे लोगों से जुदे जुदे विचार सुनेंगे । यहां आप लोगों में ज़्यादातर श्रीकृष्ण के अनुयाय वैष्णव होंगे । अगर आप दक्षिण में जावेंगे तो आपको रामानुजाचार्य्य के अनुयायी विशेष रूप से मिलेंगे । तब हिन्दू धर्म क्या है ? भारत धर्म महामण्डल तब तक महामण्डल नहीं हो सकता जब तक कि वह हिन्दू धर्म के जुदे जुदे पंथों को तथा हिस्सों को शामिल न करलें । उसका नाम तब ही सार्थक हो सकता है जब कि हिन्दू धर्म के जुदे जुदे पंथ एक झण्डे के नीचे मिल जावें । ये सब जुदे जुदे पंथ वैदिक धर्म की शाखाएँ हैं । सनातन

धर्म शब्द ही यह बतलाता है कि हमारा धर्म बहुत पुराना है। वह इतना पुराना है, जितना मनुष्य जाति का इतिहास है। वैदिक धर्म प्राचीन काल में आर्य्यों का धर्म था। हिन्दू धर्म जुदे जुदे हिस्सों से बना है और इनका एक दूसर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस धर्म के कई पुत्र और पुत्रियाँ हैं। अगर हम इस विचार को सामने रखकर हिन्दू धर्म के इन जुदे जुदे पंथों को मिलाने की कोशिश करें, तो यह एक ज़बरदस्त शक्ति हो जायगी। जब तक आप विभक्त हो कर रहेंगे—जब तक आप प्रेम के एक सूत्र में बंध न जायंगे, तब तक आप उठने की आशा नहीं कर सकते। धर्म राष्ट्रीयता का तत्व है। 'धर्म' यह 'धृ' धातु से बना है और इसका अर्थ है धरना या जोड़ना; धर्म किन्हें जोड़ता है? धर्म आत्मा को ईश्वर से जोड़ता है; अर्थात् आत्मा और ईश्वर का ऐक्य करवाना धर्म का काम है। ईश्वर के प्रति तथा मनुष्य के प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है, उसी का नाम धर्म है। इस तरह हिन्दू धर्म हमें नैतिक और सामाजिक बन्धन (tie) प्रदान करता है। हमारे धर्म की यह व्याख्या है। हमें पुराने समय की ओर जाकर देखना चाहिये कि वहां इसका किस प्रकार व्यवहार किया जाता था। वैदिक काल में भारत स्वतः सिद्ध (self contained) देश था अर्थात् उसकी प्रत्येक आवश्यकता उसीसे पूरी हो जाती थी। वह एक महान राष्ट्र के रूप में संयुक्त था। उसकी वह एकता टूट गई और इसीसे हमारा बड़ा पतन हुआ। अब हमारे नेताओं को चाहिये कि इस एकता को पुनः स्थापित करने की कोशिश करें। इस स्थान का हिन्दू वैसा ही हिन्दू है, जैसा मद्रास प्रान्त का हिन्दू है। आप चाहे जुदी पोशाक पहनें,

जुदी भाषा बोलें, पर आपको स्मरण रखना चाहिये कि आपकी आन्तरिक भावनाएँ, जो आपको गति देती रहती है, एक हो होंगी। गीता, रामायण और महाभारत का अध्ययन सारे देश में एक ही सी भावना उत्पन्न करता है। यह बात हमारी सामान्य बपौती, वेद, गीता और रामायण के लिये सर्व सामान्य निष्ठा नहीं दिखलाती। अगर हम जुदे जुदे पंथों के क्षुद्र भेद भावों को भूल जावें तो ईश्वर की कृपा से इन जुदे जुदे पंथों की एकता से हम अपने हिन्दू राष्ट्र को बहुत बलवान् शक्ति बना देंगे। हर एक हिन्दू को यह महत्वाकांक्षा होनी चाहिये। अगर आप इस प्रकार एकता स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे तो आप को मालूम होगा कि थोड़े ही वर्षों में सारे देश के लोगों में एक विचार और एक भावना का साम्राज्य हो जायगा। यह काम है, जो हमें करना है। हमारे धर्म की वर्तमान स्थिति वांच्छनीय नहीं है। हम में जुदाई का भाव बहुत छा गया है, और एकता का वह भाव छिन्न भिन्न हो गया है, जो हमारी उन्नति का मूल था। यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे धर्म के इतने पंथ और उपपंथ हो गये हैं। भारत धर्म महामण्डल का यह कर्त्तव्य है कि वह इस गुमी हुई एकता को फिर स्थापित करने की चेष्टा करे। बिना इस एकता के भारत संसार के राष्ट्रों में स्थान पाने का दावा नहीं कर सकता। दो सौ वर्ष से भारत वैसी ही दशा में चला आरहा है, जैसा अभी वह है। बौद्ध धर्म चमका और बौद्ध और जैनियों ने हिन्दू धर्म पर आक्रमण शुरू किये। छः सौ वर्ष की अव्यवस्था के समय के बाद शङ्कराचार्य्य नाम के एक नेता का उदय हुआ और उन्होंने हमारे धर्म के सामान्य

(common) दार्शनिक तत्वों का एकीकरण कर लोगों को इस ढङ्ग से उपदेश किया कि बौद्ध धर्म हिन्दुस्थान से चला गया।

श्रीकृष्ण ने कितना उच्च और अक्षय वचन दे रक्खा है कि जब जब धर्म की नास्ति होती है तब तब धर्म की रक्षा के लिये मैं अवतार गृहण करता हूं अर्थात् जब फूट के कारण धर्म का विनाश होता है, जब भले और साधु पुरुष सताये जाते हैं, तब श्रीकृष्ण हमारी रक्षा के लिये अवतार लेते हैं। संसार के पड़दे पर सिवा हिन्दू धर्म के ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें यह आशा पूर्ण वचन हो कि जब जब आवश्यकता होती है, तब तब ईश्वर अवतार लेता है। मुहम्मद के बाद कोई पैग़म्बर होने का वचन नहीं है। ईसा केवल एक ही वक़् संसार में अवतीर्ण हुआ। किसी धर्म में ऐसा आशा पूर्ण वचन नहीं है। यह एक ऐसा तत्व है, जिसने हिन्दू धर्म को अभी तक मरने नहीं दिया। हम कभी आशा से विहीन न रहें। नास्तिकों को चाहे जो कहने दीजिये। समय आयगा जब हमारे धार्मिक विचारों और हमारे हक़ों की न्याय संगतता मालूम होगी। किसी धर्म में इतना निश्चित और पवित्र वचन नहीं है, जैसा हमें श्री कृष्ण ने दिया है। यह वचन सत्य पर निर्भर करता है और सत्य कभी नष्ट नहीं होता। मैं इस बात को साबित करने के लिये तैयार हूं। मेरा विश्वास है कि सत्य का ठेका किसी एक ने नहीं ले लिया है। सत्य का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह विश्वव्यापी और उदार रहता है। वह किसी जाति विशेष ही तक परिमित नहीं रहता। हिन्दू धर्म सब धर्मों को आश्रय देता है। हमारा धर्म कहता है कि सब धर्म सत्य पर अपनी नींव रखते हैं। आप अपना धर्म पालन कीजिये, मैं अपना धर्म पालन करूं।

श्री कृष्ण कहते हैं कि दूसरे धर्मों के अनुयायी भी ईश्वर की पूजा करते हैं। हां, वे योग्य रूप में नहीं करते। श्री कृष्ण यह नहीं कहते कि दूसरे धर्मों के अनुयायी सदा नर्क ही में जावेंगे! मैं चैलन्ज करता हूं, अगर मुझे कोई हिन्दू धर्म की पुस्तकों में ऐसा वचन दिखला दे। हमारा हिन्दू धर्म सनातन सत्य है और अन्तमें उसकी निश्चयपूर्वक विजय होने वाली है। संख्या सम्बन्धी शक्ति (Numerical strength) भी एक बड़ी शक्ति है। क्या वह धर्म मर सकता है, जिसके करोड़ों अनुयायी हैं? कदापि नहीं मर सकता। जब तक हमारे करोड़ों भाई अकस्मात रूपसे विलीन न होजावें, तब तक हिन्दू धर्म नहीं मर सकता। हमारी गौरवशाली सफलता और विजय के लिये इस बात की ज़रूरत है कि हम सब पंथों और उपपंथो को मिलादें और धर्म के प्रवाह को बड़े सङ्गठित बल से एक दिशा में बहने दें। यह काम है,जो भारत धर्म महामण्डल को करना है। हम सब एक होजावें। अगर कोई आदमी कोई ख़ास तरह की पोशाक पहनता है, जुदे प्रकार की भाषा बोलता है, किसी अन्य देवता को पूजता है तो क्या यह कोई कारण हो सकता है कि हम अपने ऐसे हिन्दू भाई से अपना नाता तोड़ दें। हिन्दू धर्म के तत्त्व बहुत व्यापक हैं। वे उतने ही व्यापक हैं जितना उसका साहित्य है। हमारा साहित्य भी आश्चर्यकारक है। गीता में जो ज्ञान है, मुझे पूरा विश्वास है संसार का कोई तत्व ज्ञान उसे नीचा नहीं दिखा सकता। अब मैं उन शक्तियों का भी कुछ विवेचन करता हूं, जो हमारे धर्म के ख़िलाफ़ खड़ी हैं। ये शक्तियां ख़ास कर दो क़िस्म की हैं-पहली विज्ञान की और दूसरी ईसाई धर्म की। अगर हमारे धर्म पर कोई प्रतिकूल टीका होती है तो वह

इन दोनों की ही ओर से होती है। पहली शक्ति के लिये पश्चिम में बड़ा परिवर्तन हो रहा है और वह सत्य जो आज कल आविष्कृत हो रहा है हमारे ऋषियों को मालूम था। आधुनिक विज्ञान हमारे प्राचीन ज्ञान को धीरे धीरे सत्य के रूप में स्वीकार करता जा रहा है। विज्ञान के विकास से यह मालूम होने लगा है कि हमारे धर्म के मूल सिद्धान्त सत्य पर निर्भर करते हैं। उदाहरण लीजिये। हमारे यहाँ कहा है कि चैतन्य सर्वव्यापी है। अब प्रोफ़ेसर बोस ने दिखलाया है कि वदिक धर्म का यह सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान की रू से बिलकुल सत्य है। अब आत्मा के नित्यत्व की बात लीजिये।

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त भी उसके साथ साथ जाते हैं। स्पेन्सर ने कभी इन पर विश्वास नहीं किया। पर अब सर आलिवर लोज और मेयर जैसे जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने यह दिखलाया है कि शरीर के साथ आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मा अमर है। आधुनिक विज्ञान अगर पुनर्जन्म का सिद्धांत स्वीकार नहीं भी करता है तो भी कर्म का सिद्धांत स्वीकार करता है। पर ईसाई धर्म का इस पर विश्वास नहीं है। उनका विश्वास है कि ईश्वर हर एक को हर वक्त नयी आत्मा देता है। इससे इस बात का पता चलता है कि पश्चिम में परिवर्तन की हवा बहने लगी है। हमारे दुश्मन आधुनिक विज्ञान की शिक्षा के कारण अदृश्य होते जाते हैं। हिम्मत रखिये। काम करते चले जाइये। आपकी ज़रूर विजय होगी। अगर आप थोड़ा सा परिश्रम करेंगे और ऐक्य का उद्देश्य रखेंगे तो समझ लीजिये आपका भविष्य प्रकाशमान है। आज कल अमेरिकन आदि लोग भी वेदान्त को केवल पढ़ते ही नहीं हैं, पर अध्ययन भी करते हैं।

वेदान्त और योग को आधुनिक विज्ञान ने न्यायसङ्गत बतलाया है। ये दोनों आध्यात्मिक एकता की ओर लक्ष्य करते हैं। अब हमारा यह साफ़ कर्त्तव्य होना चाहिये कि हम सत्य का अनुकरण करें, अपने धर्म ग्रन्थों को सम्पादित करें और उन्हें आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में संसार के सामने रखें, जिससे कि ये सब के लिये स्वीकार करने योग्य हो जावें। मैं फ़िर आप से कहता हूं कि ऐसे कार्य्य के लिये एकता की बड़ी ज़रूरत है। आप का अपने प्रति और अपने पूर्वजों के प्रति जो कर्त्तव्य है उससे आप च्युत होंगे अगर आप प्रांतीय पक्षपात को न छोड़ेंगे और एकता न बढ़ावेंगे। हम बहुत आलसी हो गये हैं। अपने आलस्य के कारण हम इतने मूर्ख हो गये हैं कि विदेशियों से हमें यह सुनने की नौबत आती है कि तुम्हारे यहां सोना छिपा हुआ है, लोहा नहीं। आधुनिक विज्ञान भी आपकी सहायता को तैयार है। समय आयगा जब ईसाई, ईसाई धर्म का उपदेश करने की बजाय, सारे संसार में सनातन धर्म का उपदेश करेंगे। अपनी शक्तियों को केन्द्रीभूत कीजिये। हिन्दू विश्वविद्यालय की कल्पना, कि जहाँ आधुनिक विज्ञान के साथ साथ हमारा प्राचीन धर्म भी सिखलाया जायगा, बहुत अच्छी है। उसे हमारी सहायता मिलनी चाहिये। मैं फ़िर आपका ध्यान सब पंथों की एकता करने की ओर, और संसार के राष्ट्रों में योग्य स्थान प्राप्त करने की ओर खींचता हूं।

सर्व सामान्य लिपि

(यह व्याख्यान लोकमान्य तिलक ने दिसम्बर मास में मि० रमेशचन्द्रदत्त के सभापतित्व में नागरी प्रचारिणी सभा की कोन्फ्रेन्स में सन् १९०५ में दिया था ।)

सभ्य गृहस्थो ! प्रेसिडेन्ट महोदय आपके सामने नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्य्यक्षेत्र और उसके उद्देशों के लिये विवेचन कर चुके हैं । मैं भी इस विषयपर कुछ अधिक कहता, पर मेरे बाद डेढ़ घंटे के और अर्से में दस सज्जन बोलने वाले हैं, अतएव मैं थोड़ी ही देर में केवल उन्हीं ख़ास ख़ास बातों ही को कहूँगा, जिन्हें नागरी प्रचारिणी सभा को अपना कार्य्य करते समय अपने सामने रखना चाहिये ।

सबसे पहली और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात, जो हमें स्मरण रखना चाहिये, यह है कि यह आन्दोलन केवल उत्तरीय भारत में सर्व सामान्य लिपि क़ायम करदेने तक ही परिमित नहीं है । यह एक महान् आन्दोलन का जीवन है । मैं कहूंगा कि यह एक राष्ट्रीय आन्दोलन है, जो सारे भारत वर्ष में एक सर्व सामान्य भाषा स्थापित करना चाहता है । राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारत में सर्व सामान्य भाषा का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है । सर्व सामान्य भाषा ही के द्वारा हम एक दूसरे से अपने विचार विनिमय कर सकते हैं अर्थात् एक दूसरे पर अपने ख़याल ज़ाहिर करने के लिये एक सर्व सामान्य भाषा की अत्यन्त आवश्यकता है । भगवान् मनुजी ने ठीक कहा है कि वाक् अर्थात् भाषा ही से हर एक बात बोली या समझी जाती है । अतएव अगर आप राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधना चाहते हैं तो इसके लिये सर्व सामान्य

भाषा के समान अन्य कोई शक्ति नहीं है। यही उद्देश है कि जिसे सभा ने अपने सामने रखा है।

यह उद्देश किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? हमें याद रखना चाहिये हमारा उद्देश केवल उत्तरीय भारत ही के लिये सर्व सामान्य भाषा स्थापित करना नहीं है, पर हम चाहते हैं कि सारे भारत में (मद्रास तक के लिये) एक सर्व सामान्य भाषा क़ायम हो। इसमें संदेह नहीं कि जिस परिमाण से हमारा उद्देश विस्तृत होता जायगा, वैसे वैसे हमारी कठिनाइयां भी बढ़ती जांयगी। पहले हमें उन कठिनाइयों का सामना करना होगा, जिन्हें हम ऐतिहासिक कठिनाइयां कह सकते हैं। प्राचीन काल में आर्य्यों में जो झगड़े हुए और बाद में हिन्दू और मुसलमानों में जो लड़ाइयां हुई, इनसे हमारे देश की भाषा सम्बन्धी एकता टूट गई। उत्तरीय भारत में जो भाषाएँ बोली जाती है, वे संस्कृत से निकली हैं। इसके विपरीत ठेठ दक्षिण में जो भाषाएँ बोली जाती हैं, वे द्रविड़ियन से निकली हैं। इन भाषाओं में जो फ़र्क है, वह केवल शब्दों ही का नहीं है, पर उन अक्षरों का भी है, जिन से शब्द बनते हैं। इससे आगे चलकर आज कल हिन्दू और उर्दू के भेद का भी सवाल खड़ा हो रहा है। इस सवाल की ज़्यादातर इस प्रान्त में चर्चा है। हमारी ओर (महाराष्ट्र देश में) मोड़ी नाम की एक शीघ्र लिपि है। यह देवनागरी और बालबोध से, जिसमें मराठी किताबें साधारण तौर से छापी जाती है, भिन्न है।

यद्यपि हमारा ख़ास और अन्तिम उद्देश भारत के लिये एक सर्व सामान्य भाषा क़ायम करना है, पर हमें इसके लिये धीरे धीरे आगे बढ़ना चाहिये। पहले हमें हिन्दुओं के लिये एक सर्व सामान्य लिपि क़ायम कर देना चाहिये, पर इसमें थोड़ी सी

कठिनाई होगी वह यह कि आर्य्य या देवनागरी लिपि और द्रविड़ तथा तामिल लिपि में केवल अक्षरों ही का भेद नहीं है, पर स्वरों का भी है। उदाहरण के लिये द्रवेड़ियन भाषाओं में कुछ स्वर (Sounds) ऐसे हैं, जो आर्य्य भाषाओं में नहीं हैं।

पर हमने अपने मार्ग पर धीरे धीरे बढ़ने का निश्चय किया है जैसा आपके सभापति महोदय ने कहा है। पहले हमें उन्हीं भाषाओं को हाथ में लेना चाहिये जो आर्य्य भाषाएँ हैं अर्थात् जो संस्कृत से निकली हैं। ये भाषाएँ हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, और गुरुमुखी हैं। और भी कई उपभाषाएँ हैं, पर मैंने ख़ास ख़ास भाषाओं का नाम लिया है। ये सब भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं और जिन लिपियों में ये लिखी जाती हैं, वे प्राचीन भारत की प्राचीन लिपियों के परिवर्तित रूप हैं। समय के साथ साथ इन भाषाओं के व्याकरण, उच्चारण और लिपियों की ख़ासियतें बढ़ने लगीं, पर इन सबकी वर्णमालाओं में बहुत कुछ समानता पाई जाती है।

नागरी प्रचारिणी सभा सब आर्य्य भाषाओं के लिये एक सर्व सामान्य लिपि क़ायम करना चाहती है, जिससे कि उस लिपि में छपी हुई पुस्तक सब आर्य्य भाषा भाषी आसानी से पढ़ सकें। मेरा ख़याल है कि इस बात में हम सबों की एक राय होगी, हम सब लोग इसकी उपयोगिता को स्वीकार करेंगे। पर यहां कठिनाई इस बात की खड़ी होती है कि इसके लिये कौनसी लिपि सब से ज़्यादा उपयुक्त होगी। बंगाली कहेंगे कि जिस लिपि में हम लिखते है, वह गुजराती और मराठी लिपियों से बहुत पुरानी है, अतएव सर्वसामान्य लिपि के लिये उसे स्वीकार करना चाहिये। दूसरे लोग कहेंगे कि देवनागरी लिपि, जिसे कि आप लोग छपी हुई पुस्तकों

में देखते हैं, सब से पुरानी है, अतएव सब आर्य्य भाषाओं के लिये इस लिपि को स्वीकार करना चाहिये।

मेरा ख़याल है इस सवाल को हम केवल ऐतिहासिक तौर ही से हल नहीं कर सकते। अगर आप प्राचीन शिला लेखों को देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि अशोक के ज़माने से जुदा जुदा समय में कोई दस तरह की लिपियां प्रचलित थीं। ब्राह्मी इन सब में पुरानी ख़याल की जाती है। बाद में धीरे धीरे अक्षरों में परिवर्तन होता गया और हमारी हाल की सब मौजूदा लिपियां पुरानी लिपियों की परिवर्तित रूप हैं। अतएव मेरे ख़याल में सर्व सामान्य लिपि के सवाल को केवल प्राचीनता की दृष्टि (Antiquarian basis) से हल करना ठीक न होगा।

इस आफ़त को टालने के लिये हमें एक समय सुझाया गया था कि हम सब रोमन लिपि को स्वीकार कर लें। इसके समर्थन में एक युक्ति यह दी गई थी कि इससे केवल भारत ही में नहीं, पर एशिया और युरोप के बीच भी एक सर्वसामान्य लिपि क़ायम हो जायगी।

महाशयो! यह सूचना मुझे निरी भ्रमात्मक जान पड़ी। रोमन अक्षर और लिपि बड़ी ही दोषपूर्ण है और वह उन स्वरों के लिये अनुपयुक्त है, जिन्हें हम बोलते हैं। अंग्रेज़ व्याकरण वेत्ताओं ने भी इसकी सदोषता और अपूर्णता को स्वीकार किया है। इसके कहीं कहीं किसी अक्षर के तीन तीन या चार चार उच्चारण होते हैं और कहीं किसी उच्चारण या स्वर के लिये इसके दो तीन अक्षर लिखने पड़ते हैं। उसके सिवा एक और कठिनाई यह है कि हमारी भाषाओं के स्वरों को इस लिपि में ठीक लिखने के लिये उसके अक्षरों पर कुछ

ख़ास चिन्ह लगाये विना काम नहीं चल सकता। ये बातें ज़ाहिर करती हैं कि यह सूचना कितनी निः सार है।

अगर हमें सर्व सामान्य लिपि की ज़रूरत हो है तो हमें उस लिपि को स्वीकार करना चाहिये जो रोमन लिपि से पूर्ण और साङ्गोपाङ्ग हो। युरोप के संस्कृत पण्डितों ने प्रकट किया है कि देवनागरी अक्षर उन सब अक्षरों से पूर्ण हैं, जो आज कल युरोप में प्रचलित हैं। अतएव ऐसी हालत में आर्य्य भाषाओं के लिये सर्वसामान्य लीपि की खोज में दूसरी जगह जाना आत्मघातक है। इसके आगे चलकर भी मैं तो यह कहूंगा कि हमारे यहां के अक्षरों और स्वरों (Sounds) के विभाग (classification), जिस पर कि हमारे प्राचीन विद्वानों ने बहुत परिश्रम किया और जिन्हें हम पाणिनि के ग्रन्थों में पूर्णता पर पहुँचे हुए देखते हैं, इतने पूर्ण हैं कि संसार की किसी भाषा में इतना पूर्ण और उत्कृष्ट विभाग नहीं मिलेगा। यह भी एक कारण है कि हम जिन स्वरों को काम में लाते हैं, उन्हें प्रकट करने के लिये देव नागरी लिपि ही सबसे ज़्यादा उपयुक्त है। "सेक्रेड बुक्स ओफ़ दी ईस्ट" (पूर्व के पवित्र ग्रन्थ) नामक ग्रन्थ माला से प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक के अन्तिम भाग पर दी हुई भिन्न भिन्न लिपियां यदि आप देखेंगे तो आपको मेरी बात पर विश्वास होजायगा। हमारे यहां एक एक अक्षर का एक एक स्वर अर्थात् उच्चारण है और प्रत्येक स्वर के लिये एक एक अक्षर है। अब मैं नहीं जानता कि इस विषय में कोई मत भेद रहा होगा कि हमें कौनसी वर्णमाला स्वीकार करनी चाहिये। देव नागरी (Alphabet) वर्णमाला ही में इस बात की पूरी योग्यता है। अब सवाल लिपि का या लेखन के उस रूप का रहा जो कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में वर्णमाला के अक्षर धारण

करते हैं। और मैं आपसे पहले कह चुका हूं कि यह सवाल केवल प्राचीनता की बुनियाद पर हल नहीं हो सकता।

लार्ड कर्ज़न के निर्दिष्ट समय (Standard time) की तरह हम निर्दिष्ट या प्रामाणिक लिपि चाहते हैं। अगर लार्ड कर्ज़न हमें प्रामाणिक समय की बजाय राष्ट्रीय ढङ्ग पर प्रामाणिक लिपि देते तो वे हमारे विशेष आदर के पात्र होते। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। हमें प्रान्तीयता के पक्षपात को छोड़ कर यह बात करनी चाहिये। बंगाली लोग स्वभावतया ही बंगाली भाषा के लिये अभिमान रखते हैं। मैं इसके लिये उन्हे दोष नहीं देता। कोई गुजराती भाई भी यह कह सकते हैं कि उनकी लिपि लिखे जाने में सुलभ है, क्योंकि उसके अक्षरों पर ओल नहीं रहती। महाराष्ट्र भी यह कह सकते हैं कि मराठी एक ऐसी लिपि है, जिसमें संस्कृत लिखी जाती है, इस लिये वही भारत की सर्व सामान्य लिपि हो सकती है।

मैं इन विचारों के जोश को पसन्द करता हूं। पर हमें इस सवाल को हल करना चाहिये और इसके लिये व्यवहारिक रूप से इस पर वादानुवाद करना चाहिये। चाहे जो लिपि हम स्वीकार करें, पर वह ऐसी होनी चाहिये जो लिखने में सुलभ हो, आंखों को सुन्दर दीखे और जल्दी से लिखो जासके। जिन अक्षरों का आप प्रयोग करें, वे ऐसे हों जो सब आर्य्य भाषाओं के भिन्न भिन्न स्वरों को प्रकट कर सकें और द्रवेडियन भाषा के स्वर भी बिना किसी प्रकार के चिन्ह लगाये उनसे लिखे जासकें। हर एक स्वर के लिये एक एक अक्षर हों। मेरा मतलब साङ्गोपाङ्ग और पूर्ण लिपि से है। अगर हम सब लोग मिलकर दिमाग़ लड़ावें तो आधुनिक लिपियों में से इस प्रकार की लिपि बना लेना कोई बड़ी बात

नहीं है। इस प्रकार की लिपि को निश्चित करने के लिये हमें यह देखना आवश्यक है कि प्रचलित लिपियों में कौनसी ऐसी लिपि है जिसका देश में अधिक प्रचार है। अगर कोई लिपि ऐसी निकल आवे, जिसका देश के अधिकांश भाग में प्रचार है और जो उपरोक्त गुणों से भी विभूषित है तो वह सर्वसा-मान्य लिपि होने के लिये दावा कर सकती है।

आपने इस उद्देश के लिये कमेटी नियत की और आपने सर्वसामान्य लिपि को भी खोज निकाला पर मेरी समझ में अब हम लोगों को सरकार के पास जाना चाहिये और उसका इस आवश्यकता पर ध्यान खींचना चाहिये और उससे प्रार्थना करना चाहिये कि प्रत्येक प्रान्त की देशी भाषाओं की पाठ्य पुस्तकों में इस लिपि के कुछ पाठ जोड़ दिये जावें, जिससे कि भावी सन्तान अपने स्कूल ही में इस लिपि से परिचित हो जावें। नई लिपि को सीखना कोई मुश्किल बात नहीं है पर अभ्यास क्रम समाप्त हो जाने पर इसे सीखने में ज़रा कठिनाई होती है। जो उपाय मैंने बत-लाया है उससे इस सम्बन्ध की बहुत कुछ कठिनाई दूर हो सकती है। सरकार इस तरह इस काम में हमारी सहायता कर सकती है। यह राजनैतिक प्रश्न नहीं है। हां, आगे चलकर यह प्रश्न राजनैतिक समझा जावे तो आश्चर्य्य नहीं है। सरकार जिसने हमें प्रामाणिक समय तथा नाप और तोल दिया; वही सरकार सारी आर्य्य भाषाओं के लिये प्रामाणिक लिपि क़ायम करने के काम में सहायता देने से मुँह न फेरेगी।

जब यह सर्व सामान्य लिपि स्थापित हो जायगी तब लोगों को भिन्न भिन्न भाषा की पुस्तकें पढ़ने में एक लिपि

होने से कठिनता न होगी। मैं बंगाली पुस्तक नहीं समझ सकता, इसका कारण यह है कि मुझे बंगाली लिपि का ज्ञान नहीं। अगर बंगाली पुस्तक देव नागरी अक्षरों में छपी होती तो मैं ग्रन्थ कर्त्ता के भाव सम्पूर्ण रूप से नहीं तो भी बहुत कुछ समझ लेता। कम से कम सारांश तो जान ही लेता। क्योंकि बंगला भाषा में पचास फ़ी सदी शब्द संस्कृत तथा संस्कृत से निकले हुए हैं। हम पश्चिम से नये विचारों को फुर्ती के साथ ले रहे हैं, और उन्हें प्रकट करने के लिये सब आर्य्य भाषाओं की माता संस्कृत की सहायता से नये नये शब्द बना रहे हैं। यहां एक दूसरा भी मार्ग है, जो सब के लिये सामान्य भाषा प्राप्त कराने में सहायता देगा, और मुझे हर्ष है कि यह सभा वैज्ञानिक कोष को बना कर इस मार्ग को सुलभ कर रही है। मैं इस विषय पर कुछ अधिक कहता, पर और भी सज्जन बोलने वाले हैं; अतएव अब मेरा अधिक बोलना न्यायसङ्गत नहीं। इसलिये मैं आपकी आज्ञा लेकर आसन पर बैठता हूं।

राजनैतिक स्थिति।

(यह व्याख्यान लोकमान्य तिलक ने कलकत्ते में बाबू मोतीलाल घोष के सभापतित्व में सन् १९०६ में दिया था)

सभापति महोदय और अन्य सज्जनों! मैं अपने मनोभावों (Feeling and sentiments) से आप पर प्रभाव डालने में असमर्थ हूं। आपने हमारा उत्कृष्ट सत्कार किया, इसके लिये मैं अपनी ओर से तथा मेरे मित्रों की ओर से

आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं। यह सत्कार आपने मेरा निजी नहीं किया है, पर महाराष्ट्र के प्रतिनिधि की हैसियत से किया है। यह सत्कार महाराष्ट्र का है, जिसने आपकी अपनी वर्तमान नाज़ुक अवस्था में सहायता की है। सभापति महोदय ने कहा है कि समय बदल गया है पर मैं कहता हूं कि यह समय अद्वितीय है। भारत विदेशी शासन के अन्तर्गत है। भारतवासियों ने एक समय इस परिवर्तन का स्वागत किया था। इसका कारण यह था कि उस समय बहुत सी जातियां मनमाने तौर से स्वामी बन बैठी थीं और उनमें सहानुभूति न थी। इसलिये इस परिवर्तन का स्वागत किया गया और इसी से अंग्रेज़ अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो सके। उस समय इससे बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। लोग समझने लगे थे कि अवैध शासन की जगह अब हमें वैध शासन प्राप्त हो गया। पर लोगों को अपनी इन कल्पनाओं में बहुत कुछ निराश होना पड़ा। उन्होंने आशा की थी की ब्रिटिश शासन में उनकी कलाएँ तथा उद्योग धन्धे परवरिश पावेंगे और उन्हें अपने नये शासकों से बहुत कुछ मिलेगा। पर उनकी ये आशाएँ सफल न हुईं। अब उन्होंने एक नया रास्ता पकड़ा है और वह नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) से झगड़ने का है।

सौ वर्ष के पहले लोग कहते थे कि वे अपने शासकों से सामाजिक दृष्टि से नीचे दर्जे के हैं और ज्योंही वे अपनी इस स्थिति से ऊँचे उठे कि उन्हें स्वाधीनता और हक़ मिल जावेंगे। पर इस ओर की घटनाओं ने हमें बतलाया है कि यह बात निःसार थी। पचास वर्ष के पहले भारत के सब से पहले राजनीति धुरन्धर मि० दादा भाई नौरोजी ने सोचा

था कि ठीक तौर से शिक्षित हो जाने पर सरकार हमें अपने हक़ और अधिकार प्रदान कर करेगी। पर यह आशा भी सफल नहीं हुई। अब शायद ऐसा कहा जा सके कि शिक्षा की कमी के कारण भारतवासी शासन के काम में हिस्सा लेने के लिये अयोग्य हैं। पर मैं पूछता हूं कि यह दोष भी किस का है? सरकार हमें शिक्षा दे रही है ऐसी दशा में यह दोष हमारा नही है बल्कि सरकार का है। सरकार हमें जो शिक्षा दे रही है, वह हमें नीचे दर्जे की नौकरियों के लिये योग्य बनाने का दे रही है। हमें आश्वासन दिया जाता है कि एक न एक दिन लोगों को देश के शासन में हिस्सा मिलेगा। पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। देखिये! लार्ड कर्ज़न ने क्या किया। उन्होंने देखा कि इस शिक्षा के फल भयङ्कर होते जाते हैं, तो उन्होंने इस पर सरकार का ताबा और भी सख़्त कर दिया। उन्होंने युनिव्हरसिटी एक्ट बना डाला और इस तरह के तमाम स्कूलों को गवर्नमेन्ट के ताबे में (under Government Control) ले आये। भविष्य की शिक्षा-पद्धति लोगों को नौकरी ही की ओर प्रवृत्त करेगी। हम भारतवासी इस का सुधार करना चाहते हैं। बम्बई में फर्ग्यूसन कॉलेज के खोलने का काम इस प्रकार के प्रयत्न का फल था। सन् १८८० और सन् १८८४ में सरकार ने इस कॉलेज के ताबे में कुछ कॉलेज सौंपना चाहे और तब ही से यह संस्था थोड़ी बहुत सरकार के हाथ चली गई।

सरकार दिखलाती है कि वह न्याय और उत्कृष्ट प्रबन्ध की नीति से भारतवासियों पर शासन कर रही है। पर यहां न्याय से मतलब शासकों और शासितों में नहीं है पर प्रजा और प्रजा में है। हमें जो आश्वासन दिये गये थे, अब वे खुली तौर से अव्यवहार्य्य बतलाये जा रहे हैं। यह भी छोटे मोटे आदमी से

नहीं, पर खुद भारत के वाइसराय लार्ड कर्ज़न से। लार्ड कर्ज़न ने कहा है कि महारानी का घोषणापत्र अव्यवहार्य्य है। उसके मुताबिक कार्य्य होना असम्भव है। बात यह है कि नौकरशाही ने अपनी नीति स्थिर कर ली है, जिसके परे वह नहीं जाना चाहती। नौकरशाही से आशा करना व्यर्थ है। लोगों के विरोध से भी नौकरशाही अपनी नीति को नहीं बदलना चाहती।

अब विरोध तथा प्रार्थना करने के दिन गये। अब लोगों को यह दिखला देना चाहिये कि वे हक़ वा अधिकार पाने के योग्य हैं। उन्हें स्वावलम्बन के तत्व को धारण करना चाहिये। यही सफलता की कुञ्जी है।

हमारे शासकों की कोई ख़ास नीति है और आप उस में परिवर्तन चाहते हैं। सम्भव है कि विशुद्ध अनियन्त्रित शासन प्रणाली की जगह कुछ सुधार पाई हुई अनियन्त्रित शासन प्रणाली मिल जावे। क्योंकि नौकरशाही से ज़्यादा आशा करना व्यर्थ है। हमें शब्दों से नहीं, पर कृत्यों से यह दिखला देना चाहिये कि वर्तमान शासन-पद्धति अनुपयुक्त है। हमें यह दिखला देना चाहिये कि देश पर वर्तमान शासन-पद्धति से शासन नहीं किया जासकता, हमें सरकार को इस बात का विश्वास दिला देना चाहिये।

पर क्या यह बात हो सकती है? मैं तो कहूंगा कि या तो हमें आगे बढ़ते चले जाना चाहिये या इन आन्दोलनों को छोड़ देना चाहिये। नौकरशाही की सहानुभूति पर सर्वांश रूप से निर्भर रहने से काम न चलेगा। बङ्ग-भङ्ग के मामले में मि० मॉर्ले ने, अपनी अनोखी सहानुभूति का नमूना दिखलाया। उन्होंने कहा कि उन्हें लोगों के साथ सहानुभूति है पर वे बङ्ग-भङ्ग को रद्द नहीं कर सकते। इसी सहानुभूति के नमूनेदार

उदाहरण देश के क़ानून में भी मिलते हैं। ताज़ीरात हिन्द में बेतों की सज़ा है। एक दूसरा भी क़ानून है, जो कहता है कि बेंत को सज़ा पाया हुआ मनुष्य इलाज के लिये अस्पताल भेजा जायगा। यह दूसरे प्रकार की सहानुभूति लार्ड मार्ले दिखलाने के लिये तैयार हैं। अगर आप इस प्रकार की सहानुभूति के वचनों से अपनी शिकायतें छोड़ देंगे, तो आपका उद्देश नष्ट हो जायगा। जब तक आपकी शिकायतें दूर न हों, तब तक आप अपने इस उद्देश पर दृढ़ता से बने रहिये। बङ्गभङ्ग की शिकायत (grievance) भारत के पुनरुत्थान की अट्टालिका (edifice) होगी। आप अपने इस उद्देश को मत छोड़िये। सारा भारत आपके पीछे है। यह एक नींव का पत्थर (corned stone) है और इसे डालने के लिये मैं बंगाली लोगों से डाह (envy) करता हूं।

शिवाजी उस ज़माने में उत्पन्न हुए थे, जब चारों ओर अन्धकार और लाचारी थी। मैं विश्वास करता हूं कि बगाल इस समय कोई ऐसा नेता उत्पन्न करेगा जो शिवाजी की पद्धतिवों (methods) का नहीं, पर भावों का अनुकरण करेगा। यह उत्सव दिखलाता है कि ईश्वर ने हमें त्यक्त नहीं किया है—मैं आशा करता हूं कि ईश्वर हमें वह नेता देगा जो अपने आत्मत्याग, असाधारण भक्ति और निःस्वार्थ कार्य्यों से देश का पुनरुत्थान करेगा। हमें इस भूमि पर राष्ट्र बनाना चाहिये। राष्ट्र के प्रति प्रेम यह सब से पहला काम है। इसके बाद, धर्म और सरकार का नम्बर आता है।

" स्वदेशी " " स्वदेशी " की पुकार हमेशा रहेगी और हम अब से आगे बढ़ते चले जावेंगे। इसका मार्ग स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा है।

क्या शिवाजी राष्ट्रीय वीर न थे?

मानवी स्वभाव में वीर पूजा गहरी जड़ जमाये हुए है। हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को उन सब शक्ति की आवश्यकता है, जो वीर पूजा से स्फुरित होती हैं। इस उद्देश की सिद्धि के लिये भारतीय इतिहास में केवल शिवाजी ही आप को इस प्रकार के वीर मिलेंगे। शिवाजी उस समय पैदा हुए थे जब कि सारा देश दुःशासन (misrule) से अपना छुटकारा चाहता था। उन्होंने अपने उदाहरण से यह दिखला दिया था कि यह भारतवर्ष विधाता से (Providence) त्यागा हुआ नहीं है। यह बात सच है कि उस समय मुसलमान और हिन्दू विभक्त हो रहे थे, और शिवाजी को, जो कि मुसलमानी धर्म के व्यवहार (scruples) का आदर करते थे, मुग़ल शासन के विरुद्ध लड़ना पड़ा था। यह मुग़ल शासन लोगों के लिये असह्य हो गया था। पर इस से यह तथ्य नहीं निकलता कि अब हिन्दू और मुसलमान जो कि एकसां शक्ति से विहीन हैं, और समान नियमों और क़ानूनों से शासित किये जाते हैं, शिवाजी को जो कि अपने समय में अत्याचार के खिलाफ़ खड़े हुए थे अपना राष्ट्रीय वीर स्वीकार न करें। यह बात हम नहीं कहते कि आप शिवाजी की पद्धतियों (methods) को स्वीकार कीजिये। यह ज़माना शिवाजी के पद्धतियों को अङ्गीकार करने का नहीं है, वरन् भावों को (Spirit) ग्रहण करने का है। हमारे एङ्गला-इन्डियन लेखक इस सम्बन्ध में हम पर जो आरोप रखते हैं वह उनके विचार-शून्यता का परिणाम है। वे उन लोगों को डराना चाहते है, जो हम में

डरपोक हैं। इस बात का कोई विश्वास नहीं कर सकता कि इस समय शिवाजी के जीवन की प्रत्येक बात का अनुकरण करना चाहिये। पर शिवाजी ने जिन आदर्शों को सामने रखा, वे आदर्श हमारी उठती हुई सन्तानों को सामने रखना चाहिये। हम विश्वास करते हैं कि हमारे मुसलमान भाई इन लोगों की बातों में न आवेंगे। हम नहीं समझते कि हमारे एङ्ग्लो-इन्डियन लेखक इंग्लैण्ड को नेपोलियन की और फ्रान्स को, नेल्सन की पूजा करने से इस बिना पर मना करेंगे कि इससे दोनों राष्ट्रों के सम्बन्ध में तथा सहानुभूति में फ़र्क़ आयगा। इतना होते हुए भी हमारे एङ्ग्लो-इन्डियन समालोचक हमें अब भी इसी प्रकार का उपदेश दे रहे हैं। वे शायद इस बात को भूले हुए हैं कि अब हम उनकी चालबाज़ियों से अच्छी तरह वाकिफ़कार हैं। अब हम इतने अज्ञान नहीं हैं कि उनकी बात को ईश्वरीय सत्य के रूप में ग्रहण करें। शिवाजी—उत्सव मुसलमानों का दिल दुखाने के लिये नहीं किया जा रहा है। समय बदल गया है और राजनैतिक स्थिति को देखते हुए हिन्दू और मुसलमान एक ही नाव में सवार हैं तथा एक ही प्लेटफार्म पर खड़े हैं। क्या हम शिवाजी के जीवन से कुछ स्फूर्ति (inspiration) नहीं ग्रहण कर सकते ? यही एक सवाल है, जिसके फ़ैसले की ज़रूरत है। अगर इसका जवाब 'हां' होता है तो फिर इस का कोई महत्व नहीं (it matters little) कि शिवाजी का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था। बंगाल के 'बंगाली' और 'अमृत बाज़ार पत्रिका' नाम के दो सुप्रसिद्ध समाचार पत्रोंने भी यही मत अनुमोदित किया है। हम अकबर तथा पुराने इतिहास के किसी अन्य वीर का

उत्सव जारी करने के विरोधी नहीं हैं। उन उत्सवों का भी कुछ मूल्य होगा। शिवाजी के उत्सव में, सारे देश के लिये—विशेष मूल्य है। हर एक मनुष्य का यह देखने का कर्त्तव्य है कि इस उत्सव की उपेक्षा न हो तथा इसे कोई असत्य रूप में न दिखाने पावे। प्रत्येक वीर, चाहे हिन्दू हो या युरोपियन, समय के भावों के अनुसार काम करता है और हमें शिवाजी के व्यक्तिगत कार्य्यों को उस समय की परस्थिति का ख़याल कर देखना चाहिये। अगर इस तत्व को ध्यान में रख कर हम शिवाजी के जीवन को देखेंगे तो उस में अपवादजनक कोई बात (exception) नहीं मिलेगी। पर हमें इस बारे में बहुत गहरे उतरने की ज़रूरत नहीं। हमें तो केवल इतना ही कहना है कि इस समय शिवाजी को उनके कार्य्यों की वजह से नहीं, पर भावों की वजह से राष्ट्रीय वीर मानना चाहिये। यह कल्पना करना बिलकुल ग़लत है कि शिवाजी की पूजा हमें अपने मुसलमान भाइयों के साथ या सरकार के साथ लड़ने को उत्तेजित करती है, तथा इन के साथ दुर्भाव पैदा करती है।

देश की परिस्थिति के अनुसार शिवाजी का जन्म हुआ था और शिवाजी महाराष्ट्र में जन्मे थे। पर भावी नेता हिन्दुस्थान में कहां जन्मेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। क्या आश्चर्य्य अगर यह भावी नेता मुसलमान हो। यही इस सवाल की ठीक व्याख्या है अब मेरा ख़याल है कि एङ्गलो-इन्डियन् लेखक इस मामले में हमें भुलावा देने में असफल होंगे।

विशुद्ध स्वदेशी।

(यह व्याख्यान सन् १६०६ के दिसम्बर मासमें कलकत्ते के वीडन स्क्वेअर में लाला लाजपतराय जी के सभापतित्व में दिया गया था)

मुझे आशा नहीं थी कि आज मुझे बोलना पड़ेगा। पूना से लम्बी मुसाफ़री करता हुआ आज ही मैं यहां पहुँचा हूं। पर परिस्थिति ने आज मुझे बोलने को मज़बूर किया है। उस दिन लॉर्ड मिन्टो ने औद्योगिक प्रदर्शनी खोली और ऐसा करते हुए उन्होंने कहा कि विशुद्ध स्वदेशी भावों को राजनैतिक आकांक्षाओं से जुदा कर देना चाहिये। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि गत १८ मास से स्वदेशी आन्दोलन उन कार्य्य कर्ताओं के द्वारा चलाया जा रहा है, जिनके उद्देश अभी अप्रकट हैं। यह बात बिलकुल असत्य रूप में दिखलाई गई है। अगर लॉर्ड मिन्टो स्वदेशी कार्य्य कर्ताओं को बेईमान समझते हैं तो श्रीमान् प्रदर्शनी खोलने के लिये उनमें क्यों मिलते हैं? इसके विपरीत अगर लॉर्ड मिन्टो ईमानदार हैं और स्वदेशी की घोषणा करने वाले हमारे बंगाली नेता बेईमान हैं तो ऐसी दशा में वे लॉर्ड मिन्टो को प्रदर्शनी खोलने के लिये क्यों निमन्त्रित करते?

अगर लॉर्ड मिन्टो हमें नहीं चाहते, तो हम भी उनके बिना अपना काम चला सकेंगे। इस तरह के अपने भाव रख कर, उन्होंने जो प्रदर्शनी खोलना स्वीकार किया है सो बड़ी भारी ग़लती की है। क्या हमारा यह आन्दोलन अप्रमाणिक है। जर्मनी, फ्रान्स और अमेरिका में सरकार आगतमाल पर (import) टेक्स लगाकर अपने देशके छोटे (Infant) उद्योग धन्धों

की रक्षा करती है। अगर भारत सरकार भारतीय हित के लिये शासन करने का दावा करती है तो उसे भी ऐसा ही करना चाहिये था। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि भारत सरकार अपने कर्तव्य में असफल हुई है। इस लिये अब भारतवासी उस काम को करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो भारत सरकार को वर्षों के पहले कर लेना चाहिये था। क्या लॉर्ड मिन्टो, जर्मन सम्राट और अमेरिका प्रजातन्त्र के प्रेसिडेन्ट को, जिन्हों ने अपने देश के उद्योग धन्धों की रक्षा के लिये काम करने में कोई बात बाकी नहीं रखी थी, बेईमान कहेंगे ? फिर हमारे ही नेता बेईमान क्यों हैं ? क्या इसके लिये उन्हें दोष देना चाहिये कि वे उस काम को कर रहे हैं, जिसे सरकार ने हमारे लिये नहीं किया। हम मानते हैं कि सरकार के सबसे ऊंचे अफ़सर होने के कारण लॉर्ड मिन्टो लोगों की अकांक्षाओं और आन्दोलनों के प्रति साहानुभूति नहीं दिखला सकते। ऐसी दशा में हमें आशा थी कि लॉर्ड मिन्टो चुप्पी साध लेंगे। अगर मैं लॉर्ड मिन्टो की जगह पर होता, तो ऐसा ही करता। पर लॉर्ड मिन्टो ने हमें अप्रमाणिक क्यों कहा ? मैं लॉर्ड मिन्टो की इस बात के लिये अगर बहुत ही नर्म शब्द काम में लाऊँ तो यह कहूंगा कि उनकी यह बात शिष्टाचार के विरुद्ध थी। हमें कहा जाता है कि स्वदेशी औद्योगिक आन्दोलन है। इसका देश की राजनीति से कुछ सरोकार नहीं। हम सब जानते हैं कि सरकार व्यापार में नहीं लगी है। हां, शुरू शुरू में वह व्यापार में लगी थी, पर अब वह व्यापार नहीं करती। फिर वह क्यों ब्रिटिश व्यापार की रक्षा करने की कोशिश करती है ; फिर वह क्यों ब्रिटिश व्यापार के बढ़ाने के साधनों को काम में लारहा है ? अगर

भारत सरकार ब्रिटिश राष्ट्र की व्यापारिक अकांक्षाओं से अपना सम्बन्ध तोड़ दे तो फिर स्वदेशी कार्य्य कर्त्ता अपने इस आन्दोलन को राजनीति से जुदा करने के प्रश्न पर विचार करेंगे। पर जब तक स्वदेशी और राजनीति का परस्पर संबन्ध है, तब तक स्वदेशी के आन्दोलन को राजनीति से जुदा कर देना भारी भूल होगी। वास्तव में देखा जाय तो स्वदेशी का इतना व्यापक अर्थ है कि इस में राजनीति (Politics) का भी समावेश हो जाता है। सच्चा स्वदेशी होने के लिये हमें उन सब बातों की ओर ध्यान देना चाहिये जो हमारे देश को सभ्य राष्ट्र के दर्जे पर पहुंचा सकें, फिर चाहे वे बातें राजनैतिक हों, चाहे औद्योगिक हों या साम्पत्तिक हों। सज्जनो! मैं फिर आपसे अप्रमाणिकता के आरोप का विरोध करने के लिये अनुरोध करता हूं।

राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीय—शिक्षा पर आज मैं कुछ कहूंगा। "राष्ट्रीय शिक्षा"—इन शब्दों से हम लोग ज़्यादा परिचित नहीं हैं। इसलिये इसका मतलब बतला देना मुझे बहुत ज़रूरी मालूम पड़ता है। 'केवल लिख पढ़ लेना' शिक्षा नहीं है। यह तो शिक्षा प्राप्त करने का ज़रिया है। वास्तव में शिक्षा वह है जिस से हम अपने पूर्वजों की अनुभव की हुई बातों को जान सकें, सैकड़ों, हज़ारों वर्षों की तपस्या के बाद प्राप्त किये हुए ज्ञानामृत को कुछ चख सकें। यह योग्यता चाहे पुस्तकों से हासिल हो अथवा और किसी उपाय से। हर एक कार्य्य में शिक्षा की ज़रूरत है। इसलिये हर एक मनुष्य का कर्त्तव्य है

कि वह अपनी सन्तान को शिक्षा प्रदान करे । हमारा व्यापार, हमारा कला कौशल दूसरों ने अपना रक्खा है किन्तु हम भूल बैठे हैं । कुम्हार चीनी मिट्टी के बर्तन बनाना तो जानता है किन्तु वह मिट्टी कैसी बनती है, नहीं जानता । इस लिये उसका व्यापार नष्ट हो गया । वैसे ही धार्मिक शिक्षा की दशा हुई । जो मनुष्य यह नहीं जानता कि धर्म क्या है, भला वह कब अपने धर्म का अभिमानी हो सकता है । देश भरमें ईसाई पादरियों के प्रभाव जम जाने का एक मात्र कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव ही है । व्यापारी अपने बालकों को स्कूलों में भेजने से हिचकते हैं--बहुत से भेजते भी नहीं--क्यों ? इसलिये कि उनके लड़कों को वह शिक्षा नहीं मिलती जिसकी उन्हें आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त उनके लड़के आजकल के पढ़ाई के ढङ्ग से शौक़ीन हो जाते हैं । दफ्तरों में प्रातः काल से सन्ध्या तक १० रुपये पर पिसौनी करना उन्हें अच्छा मालूम पड़ता है, किन्तु उस गद्दी पर जहां उनके बाप दादे बैठते आये और जिस गद्दी के प्रताप से उन्होंने लाखों की सम्पत्ति इकट्ठी करली उस पर बैठना अपमान समझते हैं। इन सब का कारण यह है कि उनकी शिक्षा एक तरफ़ा है ।

सरकार को इनजीनियरों, डाक्टरों तथा क्लर्कों की आवश्यकता हुई । उसने ऐसे स्कूल खोल दिये जहां से यह मांग पूरी की जा सकें । अतएव जो विद्यार्थी इन स्कूलों से निकले, उन्हें नौकरी की सनक सवार हुई, 'नौकरी' की लगन लगी । अस्तु, पहले तो कुशल थी कि जिन्होंने तीन चार दर्जे अंग्रेज़ी के पास कर लिये वे आसानी से अपना जीवन निर्वाह कर सकते थे । किन्तु अब तो नाकों चना चबाना पड़ता है । ऐसों को भोजन के लाले पड़े रहते हैं । इसलिये

अब हम लोग कुछ होश में आये हैं। कुछ सज्ञान हो चले हैं। इतना लिख पढ़ चुकने पर भी हम अपनी साधारण आवश्यकताओं के पूरा करने में असमर्थ हैं। यह दोष हमारा नहीं, किन्तु उस शिक्षा का दोष है जो हम को दी जाती है। अब यह प्रश्न उठता है कि मौजूदा शिक्षा प्रणाली को कैसे सुधारा जाय? यदि शिक्षा विभाग अपने हाथों में होता तो क्या था! आज उसमें आवश्यक परिवर्तन कर लिये जाते।

हम लोगों ने पहले गवर्नमेन्ट से कहा था कि शिक्षा-विभाग हमें सौंप दो। हम लोग ऐसी शिक्षा के ग्राहक हैं जिससे हम सब अच्छे नागरिक बन सकें। बंबई के गवर्नर महोदय आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कुछ परिवर्तन आवश्यक समझते हैं। किन्तु उनका कहना है कि सरकार के पास रुपया ही नहीं है। यह बहाना निःसार मालूम पड़ता है—किन्तु सम्भव है, यह सत्य हो वा मिथ्या हो। पर यह सत्य है कि सरकार इस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकती। सरकार हमें धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकती। उसका यह करना उचित भी है क्योंकि हमारा धर्म और, और सरकार का और। किन्तु हमें ऐसी शिक्षा क्यों नहीं दी जाती जिससे हमारे हृदयों में देश प्रेम की तरङ्गें उठें। अमेरिका में स्वतन्त्रता की घोषणा पाँचवे व छठे दर्जे में पढ़ाई जाती है। इस तरह से वे अपने बच्चों को राजनीति की शिक्षा देते हैं। ८० वा ६० वर्ष की बात है कि जर्मनी के व्यापार को विलायत के साथ बराबरी करने में कुछ धक्का पहुंचा; इस पर जर्मन-सरकार ने विज्ञान तथा कल इत्यादि बनाने की शिक्षा देना तुरन्त प्रारम्भ कर दिया। आज वही जर्मनी व्यापार, कलाकौशल आदि में इतना

प्रबल हो गया है कि संसार के अन्य राष्ट्र उससे डरते हैं। सच तो यह है कि गवर्नमेन्ट को ख़ुद इन सब बातों को करना चाहिये। हम लोग गवर्नमेन्ट को टेक्स देते हैं—क्यों? इसी लिये कि वह हमारी भलाई करे। हमारी उन्नति का सर्वदा ध्यान रक्खे। किन्तु हमारी गवर्नमेन्ट हमको लूंजा रखना चाहती है। विलायत और हिन्दुस्थान के व्यापारिक स्वार्थ में फ़रक़ है। भला सरकार कब इस मामले में हस्तक्षेप (दख़ल) करने लगी?

हमारे गांवों की दशा क्या है?—गांवों में पाठशालाओं का समुचित प्रबन्ध न होने से हमारे ग्रामनिवासी अपने बच्चों को नहीं पढ़ा सकते; इस लिये यह प्रबन्ध हमें स्वयं करना चाहिये। इस विषय पर बहुत कुछ वाद विवाद हुआ अन्त में यही नतीजा निकला कि लोगों को उचित शिक्षा के लिये जातीय पाठशालाओं का खोलना आवश्यक है। हमारे बहुत से निज के पाठशालाओं में समुचित शिक्षा नहीं दी जाती—क्यों? इसी लिये कि कहीं सरकार की एड (मदद) न छिन जाय। अतएव अपना स्कूल खोलना हमारा परम कर्त्तव्य है। इस ओर लोगों का ध्यान भी खिंचा है। देश भर में ऐसे प्रयत्न हो रहे हैं। हरिद्वार का गुरुकुल इसी नमूने की पाठशाला है। बरार और मद्रास में भी लोगों के हृदय ऐसे स्कूलों के प्रति आकर्षित हुए हैं। हमारा महाराष्ट्र इस मामले में थोड़ा पीछे है। मैं आपसे जातीय पाठशालाओं के बारे में कह चुका। अब इन पाठशालाओं में हमें क्या करना चाहिये इस पर आप को दो चार बातें सुनाऊँगा।

बहुत सी चीज़ें जो जातीय विद्यालयों में जारी की जायंगी उनमें से पहली और सबसे पहली चीज़ धार्मिक शिक्षा

होगी। केवल व्यवहारिक शिक्षा चरित गठन के लिये काफ़ी नहीं है। धार्मिक शिक्षा की बड़ी ही आवश्यकता है; क्योंकि मनुष्य ऊंचे ऊंचे सिद्धान्तों के सम्पर्क से कुत्सित (बुरे) विचारों को तर्क कर देता है वा यों कहिये जहां ऊंचे सिद्धान्तों (उसूलों) का भाव है वहां बुराइयों का अभाव है। धर्म (मज़हब) उस जगन्नियन्ता सर्व शक्तिमान् परमेश्वर का दुर्लभ दर्शन सुलभ कर देता है। हमारा सनातन धर्म कहता है कि मनुष्य अपने कर्मों के वल से देवता भी हो सकता है। यदि हम कर्म वल से देवता वन सकते हैं तो हम अपने कर्म वल से युरोपियनों की तरह वुद्धिमान और कार्य्य-कुशल क्यों न वनें? कुछ लोग कहते हैं कि मज़हव (धर्म) लड़ाई झगड़े की जड़ है। किन्तु मैं उनसे सादर पूँछता हूं कि मज़हव वा दीन झगड़ना कव सिखलाता है? संसार में यदि कोई मज़हव है जो सिखलाता है कि, 'अपने मज़हव में वने रहो दूसरों के मज़हवी विचारों से घृणा मत करो' तो वह मज़हव हिन्दू मज़हव है।

इन स्कूलों में हिन्दुओं को हिन्दू धर्म, मुसलमानों को इसलामी धर्म पढ़ाया जावेगा।

दूसरी बात जो हम लोग इन पाठशालाओं में करेंगे वह यह है कि विदेशीय भाषा पढ़ने के असह्य वोझ को हम कम करेंगे। हमारे युरोप निवासी भाई इस देश में वहुत दिनों तक रहने पर भी दो घंटे लगातार यहां की भाषा नहीं वोल सकते। लेकिन हमारे वेचारे ग्रेजुएटों को अंग्रेज़ी भाषा में ज़रूरत से ज़्यादा योग्यता प्राप्त करना अनिवार्य्य तथा अत्यावश्यक है। आज कल वही, जो अंग्रेज़ी वोल सकते हैं अथवा लिख सकते हैं, शिक्षित कहे जाते हैं। परन्तु केवल भाषा ज्ञान को सच्ची शिक्षा नहीं कहते। एक विदेशीय भाषा

का अध्ययन ज़बरदस्ती किसी जाति के सर मढ़ा जाना भारत को छोड़कर और संसार के किसी देश में देखने में नहीं आता। जिस शिक्षा को हम अपनी मातृभाषा द्वारा केवल ७ वा ८ वर्ष में प्राप्त कर सकते हैं उसी शिक्षा के लिये हमें व्यर्थ २५ वा २६ वर्ष लगा देने पड़ते हैं। अंग्रेज़ी हम सीखेंगे पर इसका सीखना अनिवार्य्य क्यों किया जावे? मुसलमानों के शासन काल में हम फ़ारसी पढ़ते थे किन्तु हम फ़ारसी पढ़ने को मजबूर कदापि नहीं किये जाते थे। समय को इस अनावश्यक रीति से नष्ट न होने देने के लिये हम लोगों ने इन जातीय स्कूलों में अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना निश्चित किया है।

इन पाठशालाओं की तीसरी विशेष बात औद्योगिक शिक्षा होगी। किसी स्कूल में यह शिक्षा नहीं दी जाती, गो कि यह शिक्षा का एक अत्यावश्यक अङ्ग है। इन जातीय स्कूलों में यह दी जायगी। इस शताब्दी भर हमें नहीं मालूम था कि मेचिस वा दियासलाई कैसे बनती हैं। और हमारे देश में पुवाल बहुतायत से मिलता है, इस लिये यदि दिया-सलाई बनाने का धन्धा हम अपने हाथों में लेलें तो बाहरी मेचिस का यहां आना बहुत घट जायगा।

ठीक यही दशा चीनी के व्यापार का है। इस देश में वैसे ही अच्छे गन्ने उत्पन्न होते हैं जैसे मिरच द्वीप में। वैज्ञानिक जाँच से मालूम हुआ है कि पूना के आस पास में पैदा होने वाले गन्नों से उतनी हो चीनी निकल सकती है, जितनी मिरच के गन्नों से। केवल चीनी में हर साल छै करोड़ रुपया इस देश से बाहर चला जाता है। ऐसा क्यों हो? क्या इस देश में हमें गन्ने नहीं मिलते वा चीनी बनाने

कल्याण के गणेशोत्सव में लो० तिलक और रा ब. चिन्तामणराव वैद्य सन १९०६

के यन्त्र (कल) नहीं मिलते? लेकिन तब भी हम चीनी नहीं बनाते वा बहुत कम बनाते हैं। क्यों? इसी लिये कि इस व्यापार की हमें शिक्षा ही नहीं मिली। जर्मनी में यह दशा नहीं है। औद्योगिक विभाग इस बात का पता लगाया करता है कि कौन सा उद्योग नष्ट हो रहा है और यदि मालूम हो गया कि फलाँ फलाँ उद्योग गिर रहा है झट सरकार उस की सहायता करती है। उसमें फिर से जीवन डालने की कोशिश करती है। अंग्रेज़ी सरकार ठीक वही बात विलायत में करती है। किन्तु न जाने क्यों हमारे इस देश में ऐसा नहीं करती। चाहे यह सरकार की ग़लती हो वा सरकार जान बूझ कर ऐसा करती हो; लेकिन यह सिद्ध है कि हमें चुप चाप नहीं बैठना चाहिये। यदि सरकार नहीं करती तो हमें खुद करना चाहिये। चीनी से राब उत्पन्न होती है—और राब से मदिरा बनती है-परन्तु गवर्नमेन्ट हमें मदिरा बनाने का अधिकार नहीं देती। इस लिये हम सस्ती चीनी नहीं बेच सकते। एक छोटा मिरच का टापू २०००० टन चीनी प्रति वर्ष भारत में भेजता है। यह सब सरकार की नीति के चमत्कार हैं। किन्तु अभी हम जानते नहीं। यदि हम थोड़ा दबाव डालें तो गवर्नमेन्ट को यह नीति बदलना पड़ेगी। हम लोगों ने इन सब गूढ़ बातों को कालेज छोड़ने के कम से कम २५ वर्ष बाद समझा है-हमारे नवयुवकों को युवावस्था ही में इन्हें जानना चाहिये।

चौथी बात जो इन स्कूलों में विशेष ध्येय होगी वह राजनैतिक शिक्षा है।

सरकारी स्कूलों में यह विषय नहीं पढ़ाया जाता। सरकार हमारे नवयुवकों को इन सब बातों से अलग रखना

चाहती है। लेकिन हर एक विद्यार्थी को जानना चाहिये कि महारानी विक्टोरिया की घोषणा हम भारतवासियों के अधिकारों की नींव है।

दादाभाई नौरोजी ने जो बात (स्वराज्य) ४० वर्ष के निरन्तर परिश्रम के बाद सिद्ध कर दी है उसे हर एक विद्यार्थी को बचपन ही में जानना चाहिये। लग भग ३० व ४० करोड़ रुपया प्रति वर्ष बिना किसी बदले के भारतवर्ष से निकल जाता है। जिसका परिणाम यह है कि आज हम शोचनीय निर्धनावस्था में गिरगये हैं। ये बातें यदि हमारे नवयुवक बचपन से समझने लगें तो यौवन काल में यह बातें उनके हृदय पट पर हमेशा के लिये जम जायगी और मिटाये न मिटेंगी। इस लिये राजनीति की शिक्षा स्कूलों में अवश्य देना चाहिये। बड़े बड़े विद्वान अपने अनुभव तथा विद्या से इस पवित्र कार्य्य में सहायता कर रहे हैं। अब धनवानों की बारी है कि वे धन का श्रोत खोलें; धन को इस पवित्र काम के लिये बहा दें। यदि हमारी आगामी सन्तान अच्छी बनी, सच्चे नागरिक की तरह अपना जीवन निर्वाह कर सकी तो किसी विशेष व्यक्ति को नहीं, बल्कि हर एक भारतवासी को इससे आनन्द तथा अभिमान होगा। अच्छा होता यदि हमारी सरकार ही इस कार्य्य को कर देती। किन्तु यदि वह (सरकार) नहीं कर सकती, तो हमें ज़रूर करना चाहिये। जैसे सूर्य्योदय को कोई नहीं रोक सकता, वैसेही इस कार्य्य को भी कोई नहीं रोक सकता। हम बिलकुल दिवालिये नहीं हो गये हैं। अमेरिका में तो ऐसा काम एक मनुष्य कर लेता है। माना कि यहां कोई एक व्यक्ति इसे करने का साहस नहीं रखता, तब भी हमारी संख्या तीस कोटि की है। हम सब कार्य्य को मिल

कर करें। एक एक नगर से पांच पांच लाख रुपया केवल मदिरा के लिये प्रति वर्ष वाहर जाता है। फिर क्या आप इसमें सहायता न करेंगे? केवल दृढ़ संकल्प की आवश्कता है। सरकार को नाखुश होने दो, हमें अपना कर्तव्य करना चाहिये। मुझे आशा है कि सरकार इसमें रुकावट नही डाल सकती। यदि सरकार हमें विवाह करने से मना करे तो क्या हम उसे मानेंगे? वही वात शिक्षा की है जैसे चूहों के विल खोदने के भय से मनुष्य घर वनवाना नहीं वन्द कर देता उसी तरह सरकार की नाराज़गी के भय से हमें अपने कर्तव्य पथ से नहीं हिलना चाहिये। यदि संयोग से कोई आपत्ति उठ खड़ी हुई तो हमारे नवयुवकों को उसका सामना करना पड़ेगा। कठिनाइयों से डरना मनुष्यत्व को खो वैठना है। कठिनाइयां बड़ी लाभकारी होती हैं। कठिनाइयां मनुष्य के आनन्द के श्रोत हैं। कठिनाइयां हमारे हृदय में साहस तथा निर्भीकता उत्पन्न करती हैं जिनसे सुरक्षित होकर हम भारी से भारी कठिनाइयों का सामना व मुक़ावला कर सकते हैं। वह जाति जिसके मार्ग में कठिनाइयां नहीं हैं उन्नति नहीं कर सकती। वह राष्ट्र जिसका रास्ता तेज़ व नौकीले काँटोंसे आच्छन्न (ढका हुआ) नहीं है, उन्नत अवस्था को नहीं प्राप्त हो सकता। स्वराज्य के न होने से हमें ऐसी शिक्षा (अर्थात् जातीय शिक्षा) नहीं मिलती। अस्तु हमें इन अधिकारों की आशा दुराशा में न फँस कर उठना चाहिये और कमर कस कर कार्य्य क्षेत्र में तुरन्त ही प्रवेश करना चाहिये।

रिआया के हक़

(यह व्याख्यान लो० तिलक ने चिकोदी में दिया था)

मैं इस बात को न समझ सका कि आपने ग़रीब रिआया की ओर से मेरी मेहमानदारी क्यों की? मैं खुद एक ग़रीब आदमी हूं और मुझे भी उतने ही अधिकार हैं, जितने आपको हैं। आपकी तरह ही कुछ कारोबार कर मैं अपना निर्वाह करता हूं। मैं बहुत लम्बे अर्से से इस बात का विचार कर रहा हूं कि ग़रीब रिआया के दुःख क्या हैं? उनकी कठिनाइयां क्या हैं? उन्हें किस बात की ज़रूरत है? मैं एक ग़रीब रिआया की हैसियत से इसका विचार कर रहा हूं, और इसी लिये मुझे आप लोगों के साथ केवल सहानुभूति ही नहीं है, पर मुझे इस बात का अभिमान है कि मैं भी आप लोगों में से एक हूं।

हमारी वर्तमान दशा देखकर मेरे हृदय में बड़ा दुःख होता है और हमारे सामने ये सवाल खड़े होते हैं कि (१) हम अपनी वर्तमान स्थिति कैसे सुधार सकते हैं (२) इस सम्बन्ध में सरकार के क्या कर्त्तव्य हैं? सरकार ग़रीब रिआया की शासक है। सरकार पर ग़रीब रिआया के भी हक़ हैं। सरकार धनवानों के लिये नहीं, ग़रीबों के लिये है। ग़रीब रिआया अपनी रक्षा आप नहीं कर सकती और जब एक दल दूसरे दल पर ज़ुल्म करे तो सरकार का कर्तव्य है कि उस दल की रक्षा करे जिस पर ज़ुल्म किया जाता है। सरकार पर अपना हक़ दिखलाने का और उसे अपने दुःख सुना कर उन दुःखों को मिटवा लेने का प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है। अगर सरकार उनकी न सुने तो उन्हें सरकार

को इस ओर ध्यान देने के लिये मजबूर करना चाहिये। ग़रीब के दिये हुए टेक्स का फ़ायदा उठाने का धनवान को अधिकार नहीं है। यह वक्त ऐसा है कि धनवानों पर ज़्यादा टेक्स लगाया जाना चाहिये। अगर सरकार अपनी रिआया की देख भाल नहीं रखती है–अगर वह यह नहीं देखती है कि वह अमीर है या ग़रीब, तो उसे यह काम करने के लिये बाध्य करना चाहिये और इसी लिये अधिकार के स्थानों पर हम अपने आदमी चाहते हैं। इसी लिये हम चाहते हैं कि वे आदमी जो शासन कार्य करते हैं हमारे द्वारा चुने जावें। अब सवाल यह है कि वर्तमान सरकार इस ढङ्ग की है या नहीं? इसके साथ ही साथ और भी कई सवाल उठते हैं, जिन में से एक यह है कि हमारे उद्योग-धन्धे उन्नति पा रहे हैं या नहीं। इन सब सवालों का जवाब अधिकार पर निर्भर करता है क्योंकि इन सब की जड़ अधिकार ही पर ठहरी हुई है। यह बात अब सब लोग स्वीकार कर चुके हैं।

मैं आपके सामने इस वक्त यह कहने के लिये खड़ा हूं कि आप इस युद्ध में सरकार की सहायता करें, पर आप सरकार की सहायता के लिये फ़न्ड इकट्ठा करते समय अपने दुःखों को सरकार के सामने रखने में मत हिचकिचाइये। आप सरकार को धन दीजिये पर सरकार पर आप यह भी जिम्मेदारी रख दीजिये कि वह आपके दुःख सुने। यह बात किसी देश में नहीं हो सकती कि हम पैसा तो पहले देदें और सरकार हमारे दुःख पीछे सुने। दोनों काम साथ साथ होना चाहिये। हम कहते हैं कि लाखों आदमियों को युद्ध में जाना चाहिये। बम्बई प्रेसिडेन्सी और बरार दोनों से मिलकर सरकार १००० आदमी चाहती है। बम्बई अकेली सरकार को

८०० आदमी दे रही है। आप युद्ध बांड ख़रीदिये। पर आप उन्हें होमरूल के छोटे दस्तावेज़ ख़याल कीजिये। पैसा मांग लेना, सहायता ले लेनी, पर कुछ अधिकार नहीं देना, यह बात अनोखी है। सम्राट् हमें यह नहीं कहते कि आप पैसा देते चले जाइये, पर अधिकार मत मांगिये। यह कहना सहानुभूति सूचक नहीं है कि अभी पैसा दे दो, और जब सर्वत्र शान्ति हो जायगी तब हम विचार करेंगे। सरकार को हमें यह सिखला देना चाहिये कि पैसा तब ही मिलता है, जब हृदय जीते जाते हैं। क्या छोटे और क्या बड़े, क्या अमीर और क्या ग़रीब, सबको अपने अपने हक़ों का ख़याल करना चाहिये। उन्हें सरकार की सहायता करना चाहिये, पर साथ ही साथ अपने हक़ भी सम्पादन करना चाहिये। बच्चा भी इस बात को जानता है कि देश की दशा बहुत ग़रीब है। आप ख़याल कीजिये कि १५० करोड़ रुपया इकट्ठा करना कितना मुश्किल होगा। सौ वर्ष से भारतवर्ष में से करोड़ों रुपया विदेशों में जा रहा है और इस लिये आज इस देश में, इच्छा होते हुए भी युद्ध फंड के लिये आवश्यक धन इकट्ठा करने में हमें कठिनाई हो रही है। क्या यह बात इस बात का प्रमाण नहीं है कि हमारा देश कितना ग़रीब हो गया है। हमें ग़रीबी से मुक्त करानेवाला केवल एक ही रास्ता है और वह होमरूल है। होमरूल का अर्थ अपनी इच्छा के मुताबिक़ अपने घर का कारोबार चलाना है। कलेक्टर लोग बहुत होशियार आदमी हैं पर अगर वे अपने आप को सर्व साधारण के नौकर समझ कर कार्य करेंगे तो इस वक़् से दस गुना अच्छा काम करेंगे। जब तनख़्वाह और पद लोगों के हाथों में रहेंगे, तब अधिकारियों पर लोगों का ताबा (Control) रह सकेगा। आज

तो यह हाल है कि नोकर अपने आपको स्थायी समझ रहे हैं। हमें ऐसी व्यवस्था करना चाहिए कि नोकर, नोकर ही समझे जावें। अगर पैसा हमारा है तो वह हमारी इच्छा के मुताबिक खर्च होना चाहिये। हमारी यह इच्छा कदापि नहीं है कि गोरे लोग यहां से चले जावें। हम युद्ध-ऋण इकट्ठा करने के लिये जो सहायता दें उसका उद्देश ही यह है कि हम पर यही साम्राज्य रहे। हम अंग्रेज़ों की सहायता से आगे बढ़ना चाहते हैं। हमारा कहना यह है कि जो नोकर, अपने आपको स्वामी समझने लगे हैं, वे अपने आपको फिर नोकर समझने लगें। आप सरकार के लिये अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिये तैयार रहिये। आप सरकार को भर शक्ति से सहायता दीजिये, पर इस बात को न भूलिये कि होमरूल आपका आदर्श है और आपकी भलाई इसी में रही हुई है। आज का उपदेश यही है कि आप सहायता कोजिये, पर चुपचाप तौर से नहीं। आप कहिये कि यह सहायता होमरूल के लिये है अगर सरकार हमें होमरूल का वचन देगी तो हम १५० करोड़ के बदले ३०० करोड़ इकट्ठा कर लेंगे। जो बातें साफ़ हों, उन्हें कहने में आप मत डरिये। हां इसमें कुछ तकलीफ़ ज़रूर होगी। पर बिना तकलीफ़ के कोई चीज़ प्राप्त नहीं हो सकती। होमरूल कोई आकाश से आकर आपके हाथों में न गिर जायगा।

जो दुःख उठाता है, उसे पीड़ा होती है। यह नाइलाज बात है। आप उत्साह पूर्वक काम करते चले जाइये। यह हमारा सौभाग्य है कि इस वक्त इंग्लैंड के लोग हमारी बातें सुनने के लिये राज़ी हैं। कांग्रेस ने होमरूल का प्रस्ताव पास कर दिया है, हिंदू और मुसलमान मिल गये हैं। गर्म और

नर्म दोनों दलों ने अपना मत भेद मिटा दिया है। यह काम करने का समय है। मैं यह सब बातें ग़रीबों के लिये कह रहा हूं। धनवानों में मेरी विशेष श्रद्धा नहीं है। पैसा फंड से हमें अनुभव हुआ है कि धनवानों से ग़रीबों ने ज़्यादा खुशी से अपनी जेब से पैसे निकाले। मैं आपसे ये बातें इसलिये कह रहा हूं कि मैं खुद ग़रीब आदमी हूं। होमरूल यह एक ऐसा आदर्श है कि जहां हमने उसे पाया कि हमारी सब इच्छाओं की पूर्ति हो जायगी। अगर हम उत्साह और परिश्रम के साथ काम करते रहेंगे तो इस बात के चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि युद्धान्त के दो तीन वर्ष बाद आपको होमरूल मिल जायगा। हमें अपने आपस के टन्टे बखेड़े मेंट देना चाहिये, हमें उन लोगों की एक न सुनना चाहिये जो होमरूल के विरुद्ध बोलते हैं, आप इसके लिये अपने मन का निश्चय कर लीजिये। काम करते चले जाइये। पूरे राजभक्त रहिये। इस ढङ्ग से काम कीजिये कि इंग्लैंड के लोग आपकी बाजू पर आ जावें। ईश्वर आपकी जरूर सहायता करेगा। ईश्वर उन्हें सफलता प्रदान करता है जो उत्साह पूर्वक काम करते हैं।

'जैन धर्म की प्राचीनता'

(यह व्याख्यान ता. ३० नवंबर सन् १९०४ को श्री जैन श्वेतांबर कान्फरेंस के तीसरे अधिवेशन पर बड़ोदे में दिया था)

जैन धर्म प्राचीन होने का दावा रखता है। मैं यद्यपि जैन

नहीं हूं, परन्तु मैंने जैन धर्म के इतिहास तथा प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन किया है, और जैन धर्मी मित्रों के संसर्ग से बहुत कुछ परिचय भी पाया है, इसलिये इन दो आधारों से आज जैन धर्म के विषय में कुछ कहने की इच्छा करता हूं। मैं जैन धर्म के विरुद्ध बोलने के लिये नहीं खड़ा हुआ हूं, परन्तु उसके अनुकूल थोड़े से शब्द कहना चाहता हूं। जैन धर्म विशेष कर ब्राह्मण धर्म के साथ अत्यंत निकट संबंध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन और परस्पर संबंध रखने वाले हैं जैन हिन्दू ही है, हिन्दुओं से बाहिर नहीं है वे हिन्दुओं से प्रथक नहीं गिने जा सकते अनेक महाशय जैनियों को हिन्दू धर्म से पृथक् करते हैं और हिन्दू धर्म से जैन धर्म को अलहदा समझते है। परन्तु यथार्थ में यदि देखा जावे तो वह हिन्दू धर्म ही है। जैन समुदाय हिन्दू कौम में ही है। जिस हिन्दू धर्म में अन्य अनेक धर्मों की गणना होती है, उसी हिन्दू धर्म में जैन धर्म की भी गणना है। कितने ही लोगों ने दोनों में भेद बतलाया है परन्तु वह भेद यथार्थ नहीं है। जैन और ब्राह्मण धर्म हिन्दू धर्म ही है। ग्रंथों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है, कि जैन धर्म अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मत भेद रहित है। सूत्र इस विषय में इतिहास के दृढ़ सबूत हैं। और निदान खिस्ती सन् से ५२६ वर्ष पहिले का तो जैन धर्म सिद्ध है ही इस बात को हिन्दु धर्म वाले भी जानते है। यह सभी जानते हैं कि शकवालों के शक चल रहे हैं मुसलमानों का शक खिस्तियों का शक विक्रम शक शालिवाहन शक सब बराबर चल रहे हैं। इसी प्रकार जैन धर्म में महावीर स्वामी का शक चलता है जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके है शक चलाने की कल्पना जैनी

भाइयों ने ही उठाई थी। वीर शक के पहिले युधिष्ठिर का शक चलता था ऐसा कहा जाता है, परन्तु उस कल्पना का वर्तमान समय से कुछ संबंध नहीं है, यद्यपि जैन धर्म प्राचीनता में पहिले नंबर नहीं हैं तथापि प्रचलित धर्मों में जो प्राचीन धर्म हैं उनमें यह प्राचीन है। जैन धर्म की प्रभावना महावीर स्वामी के समय में हुई थी। महावीर स्वामी जैन धर्म को पुनः प्रकाश में लाये, इस बात को आज २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके, उसी समय से जैनधर्म अस्खलित रीति से चल रहा है। इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दूधर्म प्राचीन हैं वर्तमान में जो हिन्दू हैं वे एक समय चार वर्णों में विभक्त थे, उनमें के ही जैनी हैं। ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण थे। इन्हीं चार वर्णों में से जैनियों का समुदाय उत्पन्न हुआ है। इस कारण से दोनों धर्मों की समानता आज तक व्यक्त हो रही है। इन दोनों धर्मों की एकता प्रकट रीति पर जानी जा सकती है। और पृथक्ता की भ्रांन्ति का निवारण अभ्यास से हो सकता है क्योंकि अब इस भ्रांति के टिकने योग्य स्थान नहीं है। गौतमबुद्ध महावीर स्वामी का शिष्य था। ऐसा पुस्तकों से विदित होता है। जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्म की स्थापना के प्रथम जैन धर्म का प्रकाश फैल रहा था यह बात विश्वास करने योग्य है। गौतम और बौद्ध के इतिहास में २० वर्ष का अंतर है। चौवीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे, इसी से भी जैन धर्म की प्राचीनता जानी जाती है। बौद्ध धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बौद्ध धर्म के तत्व जैन धर्म के तत्वों के अनुकरण हैं।

" ब्राह्मण धर्म पर जैन धर्म की छाप "

महाशयो ! यहां पर मुझे एक आवश्यक बात प्रगट करना है। वह यह है कि अनुमान ५००, ६०० वर्ष पहिले जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म इन दो धर्मों का तत्व संबंधी झगड़ा मच रहा था। मत भेद तथा विचारांतरो के कारण जैसे मौके निरंतर आया करते हैं वैसा वह भी एक मौका था। एक जीतता है और दूसरा हारता है इस में मत भेद होता है परन्तु विशेष अन्तर गिनने योग्य नहीं होता। श्रीमान महाराज गायकवाड़ ने पहिले दिन कान्फरेंस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार " अहिंसा परमो धर्मः " इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप (मोहर) मारी है। यज्ञ यागादिकों में पशुओं का वध होकर जो " यज्ञार्थ पशु हिंसा " आज कल नहीं होती है जैन धर्म ने यही एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मण धर्म पर मारी है। पूर्व काल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी, इस के प्रमाण मेघदूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रंथों से मिलते हैं। रतिदेव नामक राजा ने जो यज्ञ किया था, उस में इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्त वर्ण हो गया था। उसी समय से उस नदी का नाम चर्मवती प्रसिद्ध है, पशुवध से स्वर्ग मिलता है, इस विषय में उक्त कथा साक्षी है, परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय (पुण्य) जैन धर्म के हिस्से में है।

झगड़े की जड़ हिंसा।

ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म दोनों के झगड़े की जड़ हिंसा थी, अब वह नष्ट हो गई है। और इस रीति से ब्राह्मण धर्म

अथवा हिन्दू धर्म को जैन धर्म ने अहिंसा धर्म बनाया है। हिंसा किसी जीव के मारने अथवा किसी के जीव लेने को कहते हैं। संसार के लगभग संपूर्ण धर्मों में हिंसा का निषेध किया है। बौद्ध धर्म में निषेध है, परंतु चीनादि देशवासी बौद्धों में हिंसा का पारावार नहीं है। हिन्दुस्तान से बौद्ध के विनाश होने का यही एक कारण है। बाइबिल में कहा है कि (Do not kill) हिंसा मत करो परन्तु इसका अर्थ खिस्ती लोग इतना ही करते हैं कि "खून मत करो" इस रीति से बाइबिल की आज्ञा का निराला ही अर्थ किया जाता है सहस्त्र वधि मनुष्यों का युद्ध में संहार होता है, परन्तु उस में राजा की आज्ञा कारण भूत बतलाई जाती है, यथार्थ में अहिंसा का बहुत थोड़ा अर्थ किया जाता है, सो हिंद के जो लक्षा-वधि पशुओं का बध होता है उस के पाप का बोझा खिस्ती धर्म के अर्थ समझाने वालों के सिर पर है। परंतु ब्राह्मण धर्म पर जो जैन धर्म ने अक्षुण्ण छाप मारी है उस का यश जैन धर्म को ही योग्य है। अहिंसा का सिद्धांत जैन धर्म में प्रारम्भ से है। और इस तत्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्ध धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्व भक्षी हो गया है।

ब्राह्मण और हिन्दु धर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द होगया यह भी जैन धर्म का प्रताप है। अहिंसा और दयाकी विशेष प्रीति से कई एक लोगों के हृदय हिंसा के दुष्कृत्यों से दुखने लगे, और उन्हों ने आवेशवश स्पष्ट कह दिया कि जिस वेद में हिंसा है हम को वह वेद मान्य नहीं। जो देव हिंसा से प्रसन्न होता हो उस देव की हम को आवश्यकता नहीं और जिन ग्रंथों में हिंसा का विधान होवे वे ग्रन्थ हम से

दूर रखे जावें। दया और अहिंसा की ऐसी ही स्तुत्य प्रीति ने जैन धर्म को उत्पन्न किया है, स्थिर रक्खा है और इसी से चिरकाल स्थिर रहेगा। इस अहिंसा धर्म की छाप जब ब्राह्मण धर्म पर पड़ी और हिंदुओं को अहिंसा पालन करने की आवश्यकता हुई; तब यज्ञ में पिष्ट पशु का विधान किया गया सो महावीर स्वामी का उपदेश किया हुआ धर्म तत्व सर्वमान्य हो गया और अहिंसा जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म में मान्य हो गई। ब्राह्मण धर्म में दूसरी त्रुटी यह थी कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य तथा शूद्रों को समान अधिकार प्राप्त नहीं था। यज्ञ यागादि कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे क्षत्री और वैश्यों को यह अधिकार नहीं था और शूद्र विचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे बनते थे, इसे प्रकार मुक्ति प्राप्त करने की चारों वर्णों में एकसी छुट्टी नहीं थी। जैन धर्म ने इस त्रुटी को भी पूर्ण की है और पीछे से श्रीमान् शंकराचार्य ने जो ब्राह्मण धर्म का उपदेश किया है; उस में धर्म का मुख्य तत्व अहिंसा बतलाया गया है। भगवद् गीता में यह भी कहा गया है कि भक्ति योग से स्त्रियें तथा शूद्र मोक्ष पासक्ते हैं। जैन धर्म ने जिस प्रकार मोक्ष का मार्ग सब के लिये खुला रक्खा है, उसी प्रकार ब्राह्मण धर्म ने भी अपने मान्य ग्रन्थों के द्वारा बतलाया है, अर्थात् अहिंसा और मोक्ष का अधिकार इन दोनों ही धर्मों में एक सरीखे माने गये हैं। जैन धर्मी वेदों को नहीं मानते हैं, इसी प्रकार खिस्ती आदि भी वेद को नहीं मानते हैं; परन्तु जैन धर्म यह एक हिन्दु धर्म है, तथा ब्राह्मण धर्म से बहुत संबंध रखता है। पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण और जैन पंडित जैन धर्म के धुरंधर विद्वान् हो गये हैं और विद्या प्रसंग में

दोनों का पहिले से प्रगाढ़ सम्बन्ध है, ब्राह्मण धर्म से मिलना हुआ है। इस कारण टिक रहा है बौद्ध धर्म विशेष भ्रमित होने के कारण हिन्दुस्तान से नाम शेष हो गया। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य का बड़ा वाद विवाद हुआ था। परन्तु जय तथा पराजय कुरोपाटकिन तथा कुरोकी के समान ही हुई थी जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म का पीछे से कितना निकट संबंध हुआ है सो ज्योतिष शास्त्री भास्कराचार्य के ग्रंथ से विशेष उपलब्ध होता है। उक्त आचार्य ने ज्ञान दर्शन और चारित्र (character) को धर्म के तत्व बतलाये है। उन्होंने कहा है कि ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म विशेष सम्बन्ध से वेष्टित हैं एक ही आर्य प्रजा के दोनों धर्म हैं। इन दोनों धर्मों का ऐसा निकट संबन्ध निरन्तर ध्यान में रखना चाहिये, और परस्पर ऐक्य बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। स्वर्गीय मि० वीरचन्द राघवजी गांधी जो अमेरिका को गये थे और चिकागो के प्रदर्शन के समय स्वामी विवेकानंद जी के साथ धर्म के व्याख्यान देते थे उन्हों ने मुझ से कहा था कि स्वामी विवेकानंद और मैं दोनों ही हिन्दु धर्म का बोध अमेरिकन् लोगों को दे रहे हैं ऐसा मुझे जान पड़ता था। भाइयो! अपने धर्म हिंदुस्थान से बाहिर क्यों नहीं स्थापित होना चाहिये? अंग्रेज़ सरकार ने हमारे हाथ में हथियार रहने देने की कोई आवश्यकता नहीं समझी और हम में उस की प्रवृति भी नहीं है परन्तु अपने धर्म रूपी हथियारों से हम को सब देशों में विजय लाभ करना चाहिये। हम परस्पर अपने आचरण अपने धर्मानुकूल रख के चाहें जिस जगह ऐकता से रह सकेंगे। हम इस समय भो यदि विजय लाभ नहीं करें तो हमारा आलस्य और अज्ञान है। संपूर्ण जैनी

भाइयों तथा ब्राह्मण धर्म पालने वालों को परस्पर एक माँ बाप के युगल पुत्रों की तरह तथा एक ही पुरुष के दायें बायें हाथ की तरह एक समझ के परस्पर हाथ में हाथ मिला के अपने अहिंसा धर्म के अभ्युदय के लिये आपस का मत भेद छोड़ कर प्रयत्न करना चाहिये। समय बीतने पर इस कार्य में यश अवश्य मिलेगा।

कर्मयोग।

कर्मयोग, जिसके लिये मैं व्याख्यान देता हूं, न तो नया सिद्धान्त ही है और न नया आविष्कार ही है, जो अभी आविष्कृत किया गया हो। हमारे यहां कर्मयोग का सिद्धान्त इतना पुराना है कि श्रीकृष्ण जैसे महान् आचार्य भी इस के आविष्कारक नहीं कहला सकते। यह बात याद रखना चाहिये कि अनन्त काल से, जब कि आर्य लोग सुख, समृद्धि और ज्ञान के सर्वोच्च आसन पर विराजमान थे, हमारी इस सिद्धान्त पर बपौती (Heritage) चली आ रही है। कर्मयोग याने "कर्त्तव्य का सिद्धान्त" समग्र आध्यात्मिक विज्ञान का—प्रत्यक्ष कर्म का—तथा निःस्वार्थ ध्यानमय जीवन का सारभूत है। इस विश्वव्यापी सिद्धान्त का अनुकरण अत्यन्त अभिलाषित मानवी आदर्शों के निकट पहुंचा देता है। 'स्वराज्य' यह भी इस कर्त्तव्य पालन का स्वाभाविक फल है। कर्मयोगी स्वराज्य के लिये प्रयत्न करता है और ज्ञानी उसके लिये चिन्तवन करते हैं। स्वराज्य क्या है? अपनी आत्मा पर स्थित और निर्भर रहने का नाम स्वराज्य है। इस लोक में भी स्वराज्य है और परलोक में भी स्वराज्य है।

हमारे ऋषिगण, जो इस महान् सिद्धान्त अर्थात् कर्मयोग के समर्थक थे, स्वयं ही जंगलों में चले जाया करते थे। उन्हें चिन्ता न थी क्योंकि लोग उस समय स्वराज्य का उपभोग करते थे और हमारे क्षत्रिय राजा, लोगों के, इस अधिकार की रक्षा करते थे। मेरा यह विश्वास है, मेरा यह सिद्धान्त है कि लौकिक स्वाधीनता पर ही आत्मिक स्वाधीनता निर्भर है। हमारे पूर्वजों का भी यही सिद्धान्त था, जिन्होंने केवल ध्यान (Meditation) ही को जीवन का सार नहीं समझ रखा था। जो आदमी हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है और जो दूसरों के लिये भार रूप होकर अपना जीवन बिताता है उसके लिये यह कैसे आशा को जा सकती है कि उसकी ईश्वर रक्षा करेगा। ईश्वर आलसी और अकर्मण्य मनुष्य की सहायता नहीं करता। आप अपने आप को ऊँचा उठाने के लिये प्रयत्न करते रहिये फिर आप सर्वशक्तिमान् परमात्मा की सहायता की आशा रख सकते हैं। आपको यह आशा न करना चाहिये कि हमारे कर्मों का फल तुरन्त मिल जायगा। ऐसा हमेशा नहीं होता। हमें भरशक्ति से अपना प्रयत्न करना चाहिये और उसका फल अपनी भावी सन्तानों के लिये छोड़ देना चाहिये। आम का वृक्ष आप लगा दीजिये, मगर उसके फल आप न चख सकेंगे तो आपकी भावी सन्तान तो अवश्य चखेगी। अपने प्रयत्न और परिश्रम का फल आप अपनी सन्तानों के लिये रहने दीजिये। हम काम करते जावें इस में किसी प्रकार की ढिलाई न होना चाहिये। हमें अपने भावी सन्तानों के लिये कुछ छोड़ जाना चाहिये न कि उनके लिये आफ़त (Curse) बन जाना चाहिये। कर्म ही हमारा मार्ग प्रदर्शक सिद्धान्त होना चाहिये।

यह कर्म बिलकुल निष्काम और सुविचारपूर्ण होना चाहिये। राजा चाहे हो, पर हमें अपना विकाश करने की पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिये। यही एक अक्षय (Immutable) धर्म है। कर्मयोग ही वह पदार्थ है जो धर्म सिद्ध करवाता है तथा सांसारिक और आध्यात्मिक वैभव को प्राप्त करवाता है। हम स्वराज्य चाहते हैं; क्योंकि यह हमारे भावी सौभाग्य की नींव है। स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य को नहीं चाहते। हम अपनी भलाई के लिये भी ब्रिटिश साम्राज्य को चाहते हैं। पर ब्रिटिश साम्राज्य में रहते हुए हम यह चाहते है कि हम साम्राज्य के भक्त और आत्म-सम्मानीय लोग समझे जावें। हम यह नहीं चाहते कि हमारे साथ मूक पशुओं का सा बर्ताव किया जावे। अगर ग़रीब हिंदुस्थानी अकाल से ग्रस्त होकर मरते हैं तो यहां उनकी पर्वरिश का भार दूसरों पर रहता है। यह स्थिति अच्छी नहीं है। यह बात हमारे देश के लिये बिलकुल शोभास्पद, हितकर नहीं। ईश्वर ने अपनी इच्छा प्रदर्शित की है। उसने प्रकट किया है कि आत्मा का विकाश उसी के प्रयत्नों से होता है। हर एक बात तुम्हारे अपने हाथों में है। कर्मयोग संसार को असार नहीं मानता। वह केवल यही कहता है कि आपके कर्म निष्काम होने चाहिये। उनमें स्वार्थ की बू भी काम की नहीं। यही व्यावहारिक वेदान्त का तत्व है।

व्यावहारिक राजनीति की आड़ में हम से कहा जाता है कि तुम स्वराज्य के योग्य नहीं हो, क्योंकि तुम में ज़्यादातर लोग अशिक्षित और अज्ञान हैं। हमें इस बाधा को दूर करने का यत्न करना चाहिये। हमारे देश के लिये यही बात काफ़ी होगी कि हमारे देश की अशिक्षित जनता को स्वराज्य की

मोटी और साधारण कल्पना हो जावे । जो आदमी अपने घर का कारोबार अच्छी तरह सँभाल सकें, वे अशिक्षित हो सकते हैं, पर पागल नहीं कहे जा सकते । अगर वे अपने देहातों के मामलों को समझ सकते हैं, तो वे भी वैसे ही बुद्धिमान हैं, जैसे शिक्षित मनुष्य हैं और वे भी स्वराज्य के सिद्धान्त को आसानी से समझ सकते हैं । अगर अविद्या (Illiteracy) सिविल लॉ में कोई अवगुण (Disqualification) नहीं मानी गई है, तो क़ुदरत के क़ानून में भी यह अवगुण नहीं है । अशिक्षित भी हमारे भाई हैं, उन्हें भी वे ही अधिकार हैं जो हमें हैं । उनकी भी वही आकांक्षाएँ हैं, जो हमारी हैं । इस वास्ते हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम उन को जगावें । स्थितियों में बड़ा परिवर्तन हो गया है । वे बहुत अनुकूल हो गई हैं । आप वैध आन्दोलन करते रहिये । अपनी पीठ मत फेरिये और अन्तिम फल ईश्वर पर छोड़ दीजिये ।

कैफ़ियत

(यह पत्र लोकमान्य तिलक ने मन्डाले जैल से छूटने के बाद 'केसरी' में प्रकाशित करवाया था ।)

वर्तमान स्थिति को देखकर मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप मेरा निम्नलिखित पत्र प्रकाशित करदें, जिससे सरकार के प्रति मेरे भावों के विषय में जो ग़ैरसमझ हो रही है वह दूर हो जावे । मेरे मकान पर उस दिन जो गणपति उत्सव हुआ था, उस समय भी मैंने अपने उन मित्रों के सामने ये ही विचार प्रकाशित किये थे । पर यह जानकर कि मेरे इन विचारों
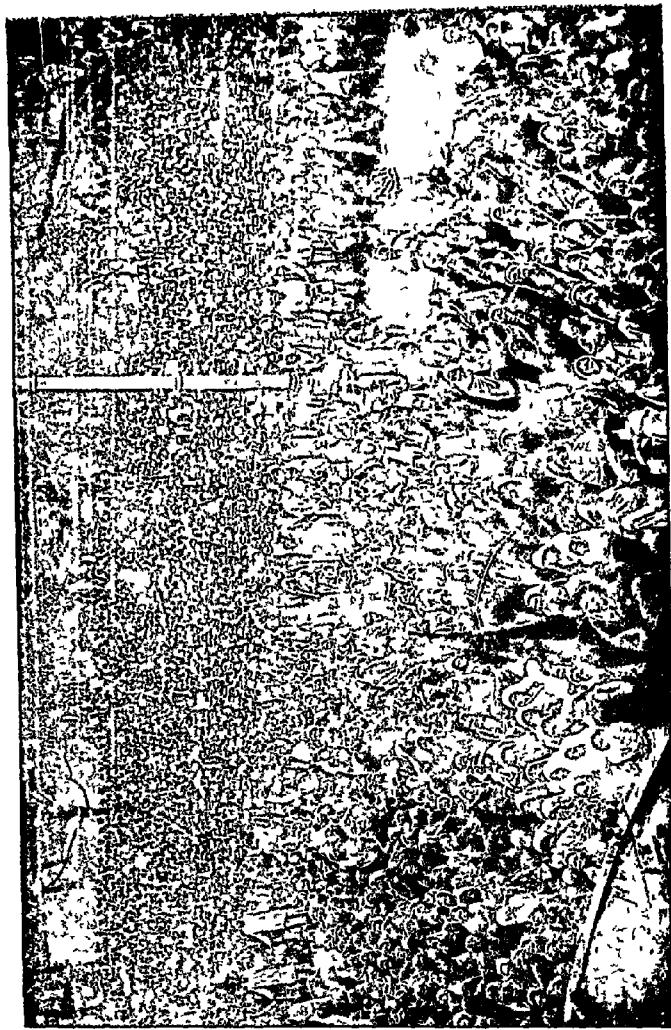
लो० तिलक के शव दर्शन के लिये उमड़ी हुई महिलायें।

का प्रकाशन चहुं ओर हो जावे, यह पत्र मैं आप के पास भेज रहा हूं।

कुछ मास के पूर्व मुझे उन लोगों के सामने व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त हुआ था, जो मेरे सकुशल लौट-जाने के लिये मेरा अभिनन्दन करने आये थे। उस समय मैंने देखा था कि मेरी भी बहुत कुछ वही हालत हुई है, जो*रिपहेन विकल की लम्बी नींद लेने के बाद जंगल से लौटने पर हुई थी। इसके बाद मुझे उन सब घटनाओं की जानकारी प्राप्त हुई, जो मेरे छः वर्ष की ग़ैर मौजूदगी में हुई थी। मै आपको विश्वास दिलाता हू कि, प्रेस एक्ट के हो जाने पर भी, जिसके विषय में कि यहां अधिक बोलना अवश्यक नहीं, हमें अपने उद्देश की सिद्धि के लिये आशा छोड़ने की ज़रूरत नहीं। देश इस उद्देश सिद्धि के लिये शीघ्रता से प्रगति कर रहा है। लार्ड मार्ले और लार्ड मिन्टो के समय जो सुधार किये गये, उनसे मालूम होता है कि सरकार शासन में प्रगति शील परिवर्तन (Progressive Change) की आवश्यकता समझता है और वह अपने कार्य्य में प्रजा के अधिकाधिक सहयोग की कामना रखती है। इन बातों से यह पता चलता है कि शासक और शासितों के बीच विश्वास की वृद्धि होरही है और प्रजा के दुःख दूर करने

---

* अंग्रेजी में रिपव्हेन विकल की कहानी वडी मजेदार है। ये हज़रत अपनी स्त्री से तङ्ग होकर जङ्गल में चले गये थे। वहा एक दिन आपको नींद लग गई यह नींद बास वर्ष मे जाकर खुली। जब ये उठकर अपने गाव की ओर चले तो सब चीजें आपको बदली हुई मालूम हुई। बच्चे जवान हो गये। जवान बुड्ढे होगये। बुड्ढे मर गये। चारों ओर परिवर्तन हो गया। अक्ल हैरान हो गई।

के लिये अधिकारी ध्यान देने लगे हैं। सार्वजनिक दृष्टि से विचार करने पर, मेरे ख़याल में, यह स्पष्ट लाभ मालूम होता है। मुझे आशा है कि इन सुधारों के अच्छे फल प्रकट होंगे और जो बातें दोषावह हैं, वे मिट जावेंगीं। कई लोग इन बातों को आशावाद की समझेंगे और मेरा विश्वास है कि ऐसा ही विश्वास हमें सरकार के सहयोग में अपने देश की भलाई के काम करने में उत्साहित करेगा।

एक बात और है, जो मुझे यहां कहना चाहिये। मुझे मालूम हुआ है कि छः वर्ष की मेरी ग़ैर मौजूदगी में यहां के और इंग्लैण्ड के अंग्रेज़ी समाचार पत्रों में उदाहरणार्थ मि० चिरोल की पुस्तक में-मेरे लेखों और कामों का ऐसा मतलब दिखाया गया है कि उनसे अत्याचारों को जोश मिला और मैंने ब्रिटिश राज्य को उलट देने के अभिप्राय के व्याख्यान दिये। मुझे दुःख है कि ये प्रयत्न तब किये गये जब कि मैं स्वतन्त्र नागरिक के रूप में अपना बचाव न कर सकता था। पर मुझे इस मौक़े पर उन घृणित और बे बुनियाद आरोपों का निषेध व्यक्त करना चाहिये, जो मुझ पर लगाये गये हैं। दूसरे राज-नैतिक कार्य्य कर्ताओं की तरह कई बातों में मेरा भी सरकार के साथ मतभेद है। पर केवल इसी बुनियाद पर यह कहना मूर्खतापूर्ण है कि सरकार के लिये मेरी वृत्तियां तथा कार्य्य दूषित भाव पैदा करने वाले हैं। यह कभी मेरी इच्छा या उद्देश नहीं रहा। यहां मैं सब लोगों के लिये फिर कहता हूं कि आयरिश स्वराज्यवादियों की तरह हमारा उद्देश शासन पद्धति में सुधार करवाना है, सरकार को उलटाना नहीं। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो अत्याचार हुए उनसे केवल मुझे चिढ़ाही नहीं है, पर मैं यह समझता हूं कि उनसे हमारी

राजनैतिक प्रगति में बड़ी बाधा पहुँची है। चाहे इन्हें व्यक्तिगत दृष्टि से देखें या सार्वजनिक दृष्टि से, इस प्रकार के अत्याचार तिरस्करणीय हैं।

लोगों का यह कहना ठीक है कि ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्थान को सुसभ्य शासन प्रणाली जारी कर अमूल्य उपकार तो करही रही है, इसके साथ ही वह भारत की भिन्न भिन्न जातियों का एकीकरण कर रही है, जिससे कि भारत एक संयुक्त राष्ट्र हो जावे। मुझे विश्वास नहीं है कि अगर स्वतन्त्रता प्रेमी ब्रिटिश शासकों को छोड़ कर कोई दूसरे शासक होते तो वे हमें अपने राष्ट्रीय आदर्श विकाश करने में अधिक सहायता देते। प्रत्येक मनुष्य जिसे भारत के लिये दिलचस्पी है, यह बात जानता है। वह जानता है कि ब्रिटिश शासन से हमें क्या क्या फ़ायदे हैं। हाल में जो आफत (crisis) खड़ी हुई है, वह एक छिपी हुई मुबारक है। क्योंकि इसने सार्वत्रिक रूप से हमारे संयुक्त भावों को जागृत किया है और ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी राजभक्ति को सजग किया है।

आप जानते हैं कि इंग्लैण्ड, उस कमज़ोर राष्ट्र की रक्षा के लिये जिसकी सरहद् पर आक्रमण किया गया है, तलवार उठाने में मजबूर हुआ है। इस प्रकार के नाज़ुक समय में प्रत्येक भारतवासी का, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, अमीर हो या ग़रीब, अपनी भर शक्ति से श्रीमान् सम्राट् की सरकार को सहायता करना चाहिये, इसके लिये मेरी राय में यहां पूना में सब पक्ष और जातियों के लोगों की एक सभा कर इस विषय को ख़ूब ज़ोर से व्यक्त करना चाहिये। इसके लिये किसी पहले के उदाहरण की ज़रूरत नहीं। शायद ज़रूरत हो तो मैं यहां उस सभा का उल्लेख करता हूं जो

सन् १८७९—८० में अफ़गान युद्ध के समय की गई थी। वह यह बात सिद्ध करती है कि हमारी राजभक्ति का एवं सरकार को सहायता करने का भाव परम्परागत और अक्षय है, और हम ऐसे मौक़े पर भी अपना कर्त्तव्य और ज़िम्मेदारी राजभक्ति के साथ पहचानते हैं।

लो० तिलक के 'स्वराज्य' पर व्याख्यान

पहला व्याख्यान

(यह व्याख्यान १ मई सन् १९१६ ई० को बेलगांव में दिया गया था)

स्वराज्य से क्या मतलब है? इसके विषय में बहुतों की कल्पना भ्रमात्मक है, कुछ इसे समझते ही नहीं और कुछ समझते हुए भी उसका विपर्यास करते हैं। कई लोगों को इसकी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार इसके अनेक भेद हैं, स्वराज्य किसे कहते हैं, हम उसे क्यों मांगते हैं, हम उसके योग्य हैं या नहीं, और जिनसे हमें स्वराज्य मांगना है उनसे किस ढंग से मांगना चाहिये; हमारे उद्योग की कौनसी दिशा तथा उसमें हमारी कैसी नीति होनी चाहिये—आज मैं केवल इन्ही बातों के सम्बन्ध में आप से चार सामान्य बातें कहूंगा; इसके अतिरिक्त मैं इस समय किसी प्रकार का विशिष्ट विवेचन करने को तैयार नहीं हूं।

जो चार बातें मैं कहने वाला हूं वे मेरे ही उद्योग और मेरे हा प्रयत्न के फल हैं सो बात नहीं है। स्वराज्य की कल्पना

बहुत पुरानी है। यह स्पष्ट है कि यह कल्पना उसी समय उत्पन्न होती है जब हम किसी ऐसे राज्य या शासन में हों जिसे हम 'स्व' अर्थात् अपना न कह सकते हों। जब ऐसी स्थिति प्राप्त होती है तभी उसके लिये उद्योग भी आरम्भ किया जाता है, इस समय आप भी इसी हालत में हैं, आप पर शासन करने वाले आप के धर्म, आपकी जाति, यहां तक कि आपके देश के भी नहीं हैं। अंग्रेज़ सरकार का शासन अच्छा है या बुरा, यह प्रश्न ही निराला है, स्वकीय और परकीय का प्रश्न भी भिन्न है, आरम्भ ही में दोनों को मिला देना ठीक नहीं है। स्वकीय और परकीय का प्रश्न उपस्थित होने पर इसे परकीय ही कहना पड़ेगा। भले या बुरे, इस प्रश्न के उपस्थित होने पर इसे भला कहिये या बुरा, यदि बुरा कहिये तो उसमें कौनसा सुधार किया जाना चाहिये, यह प्रश्न अलग ही है। भला कहने पर यह देखना होगा कि उसमें कौनसी ऐसी अच्छी बातें हैं जो उससे पहले के राज्यों में न थीं, ये भिन्न २ दिशा हैं।

वर्तमान राज्य-व्यवस्था के अनुसार भारत के राज्य कार्य का सञ्चालन थोड़े से लोगों के हाथों से होता है, जिनकी शिक्षा इंग्लैण्ड में हुई है और जिन्होंने वहां के कालेजों में उत्तम प्रकार की शिक्षा पाई है। राजा केवल नाम के लिये है, राजा के विषय में आपके हृदय में जो जो भावनाएं उत्पन्न होती हैं, उसी को व्यक्त स्वरूप देने से वर्तमान् समय के सम्राट् की भावना हो जाती है। यह भावना अव्यक्त है। इस अव्यक्त को व्यक्त स्वरूप देने से राजा या सम्राट् की कल्पना होती है, पर राजा स्वयं कारोबार की देख भाल नहीं करता। स्वराज्य का प्रश्न सम्राट् के संबन्ध में नहीं है और न इस अव्यक्त

भावना ही के सम्बन्ध में है, इसे पहले ही से स्मरण रखना चाहिये। कोई भी देश हो उसमें राजा होना चाहिये। सब प्रकार की व्यवस्था तथा देख भाल करनेवाला भी कोई मनुष्य होना चाहिये तथा उसमें किसी एक प्रकार की शासन-प्रणाली भी प्रचलित रहनी चाहिये।

सदा से राजसत्ता के दो भाग होते आये हैं, एक परामर्श-दायी मंडल और एक कार्यकारी मंडल। स्वराज्य के सम्बन्ध में जो प्रश्न भारत में इस समय उपस्थित है वह ऊपर की अव्यक्त कल्पना के विषय में नहीं हैं; यह प्रश्न उनके विषय में भी नहीं है जिन्हें हम पर राज्य करना है,जिनके नेतृत्व में जिनकी आज्ञा से, जिनके पथ-प्रदर्शन से राज्य का सञ्चालन होता है। यह बात निर्विवाद है कि हमें अंग्रेज़ों की अधीनता में, ब्रिटिश जाति के निरीक्षण में, उसकी सहायता, सहानुभूति और मदद से तथा उसकी उच्च भावनाओं का लाभ उठा-कर ही अपना कल्याण करना होगा।

आप अपना अभ्युदय अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट के अनुग्रह तथा सहायता से तो चाहते हैं, पर यहां दूसरा प्रश्न यह उठता है कि आख़िर आप मांगते क्या हैं? इसका उत्तर भी उसी भेद में है जो मैं आपको बतला चुका हूं। सरकार चाहे अव्यक्त ही हो तथापि जब वह व्यक्त होने लगती है तो उस के हाथों तथा उसके कार्यों से राज्य की व्यवस्था होती है। यह व्यक्त भाव अव्यक्त सरकार से भिन्न है, इसकी भिन्नता वैसी ही है जैसी परब्रह्म की और माया की। अव्यक्त शब्द मैंने वेदान्त से लिया है, निर्गुण तथा निराकार परब्रह्म भिन्न है और माया के व्यवहार परिवर्तनशील हैं। क्षण क्षण में बदलते रहना ही

माया का लक्षण है, अव्यक्त सरकार स्थिर है; पर व्यक्त सरकार क्षण क्षण में परिवर्तित होने वाली है।

इस समय जिस 'स्वराज्य' शब्द का व्यवहार किया जा रहा है वह व्यक्त सरकार से सम्बन्ध रखता है, अव्यक्त सरकार के स्थायी रहते हुए क्षण क्षण में बदलने वाली व्यक्त सरकार में किस प्रकार का परिवर्तन होने से हमारे राष्ट्र का कल्याण होगा, यही प्रश्न स्वराज्य का है, और इस स्वराज्य के प्रश्न के साथ साथ यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि भारतवर्ष में जैसा शासन प्रचलित है वह किस के हाथों में होना चाहिये। अव्यक्त सरकार (अंग्रेज़ सरकार को) बदलने की हमारी इच्छा नहीं है, जो व्यक्त स्वरूप है, जिसके हाथों से अव्यक्त सरकार के कार्य किये जा रहे हैं, उसी के हाथों में शासन प्रबन्ध न रहे, किसी और को सौंपा जाय यही हमारा कथन है। वर्तमान में स्वराज्य का आंदोलन इसी समझ से किया जा रहा है कि इस समय यह राज्य-प्रबन्ध जिनके हाथों में है उनसे लेकर किसी ऐसे हाथों में जाना चाहिए जो लोगों के लिये हितकर हो।

भारत का शासन कौन करता है? क्या सम्राट् (स्वयं) आकर करते है? बड़े बड़े अवसरों पर देवताओं की भांति जिसका जुलूस निकाल कर हम अपनी राज भक्ति प्रदर्शित करते हैं, क्या यह उसका काम है? फिर शासन प्रबन्ध कौन करता है? इसे वही लोग करते हैं जो इस समय नौकर हैं अर्थात् स्टेट सेक्रेटरी, वाइसराय तथा गवर्नर, इनके मातहत कलेक्टर और तहसीलदार और सब के पीछे पुलिस के सिपाही। अमुक पुलिस का सिपाही बदल कर उसकी जगह दूसरा सिपाही भेजिये, यह कहना क्या राजद्रोह है?

अमुक कलेक्टर हमें नापसन्द है, हमें दूसरा कलेक्टर चाहिये, क्या यह कहना राजद्रोह है? इस स्टेट सेक्रेटरी को हटाकर दूसरे को उसका पद दीजिये, यह कहना क्या राजद्रोह है? कोई भी इसे राजद्रोह नहीं कह सकता। पुलिस के सिपाही के लिये जो नियम हैं वही स्टेट सेक्रेटरी के लिये भी हैं। स्टेट सेक्रेटरी जिस राजा का मंत्री है, जिस राजा का नौकर है, हम लोग भी उसी राजा की प्रजा हैं।

यदि आप वर्तमान राज्य व्यवस्था को सर्वथा उचित समझते हो तो मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है! आप कांग्रेस और कान्फ्रेन्सों में जाकर कहते हैं—हमारे पटवारियाना आदि हक छीन लिये गये; जंगल विभाग के सम्बन्ध में हम पर अत्याचार किये गये; आबकारी विभाग की बदौलत शराब का अधिक प्रचार हुआ; जैसी शिक्षा हमें मिलनी चाहिये वैसी नहीं मिलती, इत्यादि, इन सब की जड़ क्या है? आप उचित शिक्षा क्यों नहीं पाते? आबकारी दूकानें जहां आप नहीं चाहते वहां क्यों खोली जाती हैं? जंगल विभाग में रक्षित जंगलों तथा भिन्न प्रकार के जंगलों के संबंध में नियम बनाये जाते हैं, ऐसा क्यों होता है? यह सब प्रश्न ऐसे हैं कि जिन का एक ही उत्तर है। यह अधिकार आपके हाथों में होते, उनकी जगह आप अधिकारी होते अथवा उनका अधिकार लोकमत के सामने उत्तरदायी होता तो ये बातें न होतीं। इस के सिवा इस का दूसरा उत्तर नहीं हो सकता। यह सब इस लिये होता है कि आप सत्ता—रहित हैं, यह सम्पूर्ण व्यवस्था यद्यपि आप ही के कल्याण के लिये की जाती है तथापि आप को उसके निर्णय का अधिकार नहीं दिया गया है।

अतः हमारा मांगना एक छोटे बालक के समान है जो

भूख लगने पर रोता है; पर यह नहीं कह सकता कि उसे भूख लगी है। मां यह समझती है कि वह भूखा है या उसका पेट दर्द करता है। अनेक बार रोग कुछ और ही होता है और उसका उपचार कुछ और ही किया जाता है। इस समय आप की भी वैसी ही स्थिति है, आप पहिले से यह बिलकुल नहीं समझते कि आपको किस बात की ज़रूरत है या आप को किस बात में अड़चन पड़ेगी? जब इन बातों को आप इतना समझने लगेंगे तब आप स्वयं ही इन्हें बतलाने लगेंगे; लेकिन इस समय आपकी स्थिति ऐसी है कि जो कुछ आप कहें उसके अनुसार काम करा लेने की शक्ति आपके हाथ में नहीं है। इसलिये क्या होता है? जो कुछ करना हो, जिस बात की आवश्यकता हो—मान लीजिये कि घर में कुआं खुद-वाना हो तो उसके लिये भी कलेक्टर साहब से प्रार्थना करनी पड़ती है। जंगल में शेर मारना हो तो कलेक्टर साहब से प्रार्थना कीजिये। घास नहीं मिलती, जगल की लकड़ी नहीं मिलती, घास कटाने की आज्ञा नहीं मिलती, तब कले-क्टर साहब के यहां अर्ज़ी दीजिये। अर्थात् बिलकुल बेकारों और असहायों की सी स्थिति हो रही है। यह व्यवस्था हमें नहीं चाहिये, इससे अच्छी व्यवस्था चाहिये और वह अच्छी व्यवस्था स्वराज्य है। वही होमरूल है।

पहिले पहल यह प्रश्न नहीं उठता। लड़का जब छोटा होता है तब उसे कुछ मालूम नहीं होता, बड़े होने पर उसे सब बातें मालूम होने लगती हैं, तब वह यह समझने लगता है कि मेरे घर की व्यवस्था मेरी सम्मति के अनुसार हो तो अच्छा हो। वही बात राष्ट्र की भी है। यह अवस्था ऐसी है कि राज्य-कार्य करनेवाले लोग विलायत से ही कुछ विशेष

नियमों के अनुसार नियुक्त किये जाते हैं और उनकी नीति आप के सम्बन्ध में पहले ही से निश्चित रहती है। अब यह नियम चाहे अच्छे हों या बुरे हों। ये नियम अच्छे हो सकते हैं, खूब सुयंत्रित हो सकते हैं, व्यवस्थित हो सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि खराब ही हैं। लेकिन दूसरों की व्यवस्था चाहे जितनी ही अच्छी क्यों न हो तो भी यह बात नहीं हो सकती कि लोगों को (दूसरों के द्वारा की हुई) वह व्यवस्था सदा पसन्द ही आवे। स्वराज्य का यही तत्व है।

मैं यह नहीं कहता कि अधिकार मिल जायँ तो हमारा चुना हुआ कलेक्टर वर्तमान कलेक्टर की अपेक्षा अधिक अच्छा कार्य करे; संभव है कि न भी करे या बुरा भी करे। इसे मैं मानता हूं, लेकिन इन दोनों में भेद यही है कि हमारा नियुक्त किया हुआ कलेक्टर हमारा ही होता है और वह सदा इस बात का ध्यान रखता है कि हम किस तरह संतुष्ट रह सकते हैं। लेकिन जो पराया होता है वह यह समझता है कि जो बात हमारी समझ में अच्छी जान पड़ती है वह दूसरों की समझ में भी अच्छी ही जान पड़ेगी। लोगों की बात सुनने की क्या ज़रूरत है? मैं इतना पढ़ा लिखा हूं, मुझे इतनी तनख्वाह मिलती है, मुझ में इतनी योग्यता है, मैं जो कुछ करूंगा वह लोगों के लिये अहितकर कैसे होगा। इसका उत्तर यह है कि तुम में इतना घमंड है; इसीलिये तुमसे अहितकर काम होगा। (हंसी) जिस प्रकार किसी के देह में चिकोटी काटी जायं और उसे उसका कोई अनुभव न हो उसी तरह इस का भी कारण है।

इस समय जो जो झगड़े उपस्थित हैं, उन पर यदि सूक्ष्म रीति से विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि इस समय

जो शासन-पद्धति प्रचलित है वह हमें नहीं चाहिए। यह बात नहीं है कि हमें राजा की आवश्यकता नहीं है, अथवा बादशाह की ज़रूरत नहीं है। जिस रीति से यह शासन-पद्धति होती है, उसमें हमें एक ख़ास तरह का फ़रक़ चाहिए। और अगर वह फ़रक़ हो जाय तो अंग्रेज़ी सरकार के लिए उसमें कहीं से धोखा नहीं दिखाई देता। अब बहुत से लोगों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित हुआ है कि इस समय जो शासन-पद्धति प्रचलित है, उस पद्धति में किस प्रकार का अन्तर होना चाहिए। जब हम अपने घर की व्यवस्था करने का अधिकार मांगते हैं, तब हम यह नहीं कहते कि आपको जो कुछ मिलता है वह सब हमें दे दीजिए, और उसमें से आप कुछ खर्च मत कीजिए। हमारा हम खर्च भी करें और हम ही धन बटोरें। ये जो दो बातें हैं उनका संयुक्त उत्तर-दायित्व हमारे ऊपर चाहिए। इस समय यही झगड़ा है। ब्यूरोक्रेसी के जो पराए लोग अधिकारी होकर आते हैं वे कहते हैं कि हमारी मर्ज़ी के अनुसार काम करो और हम कहते हैं कि हमारी मर्ज़ी के अनुसार करो तभी ये सब दुःख दूर होंगे।

अगर लड़का अनजान हो तो बाप मरते समय पंच मुक़र्रर कर जाता है। वह पंच उसकी सारी जायदाद की देख भाल करते हैं। उससे कुछ फ़ायदा भी होता है। यह बात नहीं है कि कुछ भी फायदा न हो। जब लड़का कुछ-बड़ा होता है तब वह समझने लगता है कि इस में मुझे कुछ अड़चन होती है। मुझे व्यवस्था करने का अधिकार प्राप्त करना चाहिए। तब मैं इससे अच्छी व्यवस्था करूंगा, उसे इस बात का विश्वास होता है। यह बात नही है कि वह अच्छी हो

व्यवस्था रख सके, अगर वह फ़जूलखर्ची होगा तो अपने बाप की सारी दौलत फूंक डालेगा; लेकिन वह बातों को समझता है। आगे चलकर इन दोनों में विरोध न खड़ा हो इसलिये यह नियम बना दिया गया है कि जब लड़का २१ बरस का हो जाय तब ट्रस्टी उसकी देखभाल छोड़ दें और सब कुछ लड़के के सुपुर्द कर दें, यह जो बात व्यवस्था की है वही राष्ट्र के लिये भी ठीक उतरती है। जिस समय राष्ट्र के लोग सुशिक्षित हो जायँ और यह कहने लगें कि हमारी व्यवस्था किस प्रकार होनी, चाहिए उस समय उनमें इस बात की इच्छा होना बहुत ही स्वाभाविक है कि हमारे लिये जो काम पराये लोग करते हैं वे काम हमारे हाथ में आ जायँ, लेकिन इतिहास अथवा राजकार्यों में मज़ा यह है कि उसमें २१ बरस वाला नियम लागू नहीं है, यदि प्रथम कभी ऐसे नियम की कल्पना की जा सके जो यह कहें कि सौ बरस तक तुमने इस राष्ट्र को शिक्षा दी अब तुम सब कारबार उसके हाथ में दो तो भी उसका पालन संभव नहीं है। यदि इसका पालन करना हो तो उसे लोगों को ही करा लेना चाहिए। उन्हीं का इस पर अधिकार है। उस समय इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये। पहिले कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था थी, लेकिन जो दुःख होता है, जो त्रुटियां हैं, राजकार्यों में हम लोगों को जो असुविधाएं दिखाई देती हैं, उन सब का मूल इसी में है। और प्रथम इस मूल का पुनरुत्थान करके उसके लिए जो उपाय बनाए गए हैं, उसको होमरूल कहते हैं। उसी का नाम स्वराज्य है। संक्षेप में यह कि अपने सम्बन्ध की व्यवस्था अपने हाथ में रखने की मांग ही स्वराज्य की मांग है।

लोगों के हाथों में अधिकार देना राजकार्य का उत्कृष्ट तत्व है। इसके संबंध में कोई कुछ नहीं कहता, क्योंकि जो लोग यहां अधिकारी हैं उनके देश में यही प्रथा प्रचलित है। वहां जाने पर उन्हें इसी तत्व का प्रतिपालन करना पड़ता है। तब यह कोई नहीं कहता कि इतिहास का यह तत्व बुरा है। इसमें बुराई क्या है? वे यह बात स्पष्ट रूप से कहते हैं कि भारतवासी अभी स्वराज्य के पात्र नहीं हैं (हंसी) और हम लोगों में से कुछ लोग ऐसे हैं जो पंचतंत्र में कहे हुए "त्रयाणांधूर्तानां" की तरह हैं। उनकी कहानी इस तरह पर है। एक बार एक देहाती सिर पर एक भेड़ी लिये आता था। एक धूर्त ने उससे कहा कि तुम्हारे सिर पर बकरी है। दूसरे ने कहा तूम्हारे सिर पर कुत्ता है। तीसरे ने एक तीसरी ही बात कही। इस पर उसने उस भेड़ी को उतार दिया। वे तीनों धूर्त उस भेड़ी को लेकर चल दिये। उसी की तरह हमारी भी स्थिति हो रही है। यह मनुष्य स्वभाव की बात है। इसी तरह के कुछ लोग हम में भी हैं।

हम लोग पात्र क्यों नहीं हैं? इसी लिए तो कि हम में पात्रता नहीं लाई गई है? हम लोगों ने ऐसा काम नहीं किया है? हमारे मां बाप ने भी नहीं किया है? हम लोग क्यों पात्र नहीं हैं? क्या हमारे नाक नहीं है? आंखें नहीं हैं? कान नहीं हैं? बुद्धि नही है? लिखना नहीं आता है? पढ़ना नहीं आता है? घोड़े पर बैठना नहीं आता है? हम क्यों पात्र नहीं हैं? शेकसपियर के एक नाटक में एक यहूदी ने जिस प्रकार पूछा है, उसी प्रकार मैं भी आपसे पूछता हूं कि हम में क्या नहीं है? तुमने काम नहीं किया है। हमें काम मिला ही नहीं तो हम करें कहां से? (तालियां) क्या कभी ऐसा भी हुआ

है कि तुमने काम दिया और हमने नहीं किया ? २१ बरस की उमर का जो आदमी तुम विलायत से लाते हो, क्या उसे पहिले ही से पूरा काम करना आता है। उसे क्या करना आता है ? उसे अनुभव कहां रहता है ? वह यहां आते ही असिस्टेंट कलेक्टर हो जाता है और तहसीलदार चाहे ६० बरस का भी क्यों न हो, पर वह उसका अफ़सर हो जाता है। कहां २१ बरस का कलेक्टर ? (तालियां) ६० बरस का अनुभव कोई चीज़ ही नहीं है ? २१ बरस का आदमी आता है, और तुम पर हुक्म चलाने लगता है। वह ६० बरस के तहसीलदार को प्रायः अपने सामने खड़ा ही रखता है ; बैठने के लिये कुरसी तक नहीं देता। और उस बेचारे को १५०) २००) ४००) लेने होते हैं, इसलिये उसे हाथ जोड़ कर उसके सामने खड़ा रहना पड़ता है। (तालियां) कभी किसी ने इस बात का भी विचार किया है कि फिर उस तहसीलदार को अनुभव कैसे होगा, वह पात्र कैसे होगा और यह गाड़ी कैसे चलेगी ?

अगर यह बात ठीक होती कि हिन्दुस्तान के लोग स्वराज्य के पात्र नहीं हैं, वे अपने राज्य का बन्दोबस्त अच्छी तरह नहीं कर सकते तो पुराने ज़माने में इस देश में हिन्दुओं और मुसलमानों ने कभी राज्य न किया होता। इस देश में पहिले अपने ही राज्य की व्यवस्था करने वाले लोग थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है है कि अंग्रेज़ी सरकार के आने के पहले यहां कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य थी, सब जगह अंधाधुंधी नहीं थी। एक आदमी दूसरे को मार नहीं डालता था। जब ऐसी अवस्था थी तब यह कैसे कहा जाता है कि ये लोग पात्र नहीं हैं ? आजकल शास्त्रों की वृद्धि हुई

है, जानकारी बढ़ी है और अनुभव का एक जगह संग्रह हुआ है। इसलिये पहले की अपेक्षा अब हम को और भी स्वतंत्रता चाहिए, और हम लोगों को अधिक योग्य होना चाहिए। सो तो होता नहीं, उलटे कहा जाता है कि हम लोग योग्य नहीं हैं। यह कहना बड़ी भारी भूल है कि पहले हम में जो कुछ था उसे जाने दो। तुम्हारा यह कहना है कि "तुम्हें हम देना नहीं चाहते" ठीक है। इसके बदले मे यह मत कहो कि तुम योग्य नहीं हो, जिसमें हमें यह तो अच्छी तरह मालूम हो जाय कि तुम हमें देना नहीं चाहते। हम लोगों को स्वराज्य मिलेगा। लेकिन वह हम लोगों को क्यों नहीं मिलता ? पर्याय से कहा जाता है कि हम लोग उसके पात्र नहीं हैं। तुम लोगों को सिखाने के लिये हम लोग यहां आये है। हम यह बात मानते हैं। लेकिन आप कितने दिनों तक सिखलाते रहोगे। (हंसी) एक पीढ़ी, दो पीढ़ी, तीन पीढ़ी। कहीं इसका ठिकाना भी है ? कि सदा हम तुम्हारे ही अधीन रहेंगे। (तालियां) कुछ सीमा बांध दो।

तुम हमें सिखलाने के लिये आए हो। जिस समय हम लोग लड़कों के लिए घर में शिक्षक नियत करते हैं, उस समय उससे पहले पूंछ लेते हैं कि तुम दस बरस में, बीस बरस में, पचीस बरस में, कितने दिनों में लड़के को सिखलाओगे ? अगर हमारे अनुमान से उसने दो चार महीने अधिक बतलाए, छः महीने में लड़के का जितना अध्ययन होजाना चाहिए उतने के लिये यदि उसने सालभर का समय बतलाया, तो हम उससे कह देते हैं कि तुम किसी काम के आदमी नहीं हो, जाओ, हम दूसरा शिक्षक रख लेंगे। (तालियां) इसी प्रकार लोगों पर, उन सब लोगों पर, जिनकी शिक्षा इन अधिकारियों

के हाथ में है, जिन्हें सुधारना इन अधिकारियों का कर्तव्य है, वह कर्तव्य पालन करना तो एक ओर रहा ; प्रयत्न होता है दूसरी ओर। मैसूर में कौनसा काम रुका पड़ा है ? कौन लोग काम करते हैं ? मैसूर के राजा हिन्दू, प्रजा हिन्दू और नीचे के अधिकारी भी हिन्दू ही हैं। जब वे मैसूर जैसा बड़ा राज्य चला लेते हैं तब मैसूर के बाहर दो ज़िलों में कहा जाता है कि इन लोगों से काम नहीं चल सकता।

मैं यह पूछता हूं कि सिविल सर्वेन्टस्‌वाले कारबार चलावें तब बादशाह को क्या और हमारे बेलवी साहब चलावें तब क्या ? (तालियां) क्या इसमें बादशाह का कोई नुक़सान है ? वह राज्य कायम ही है, वह बादशाहत क़ायम ही है। फ़रक़ यही होगा कि पहले उसके पास जो गोरा नौकर था, उसकी जगह अब काला होगा। (तालियां) तब यह विरोध कौन करता है ? जो लोग अधिकारारूढ़ हैं, वही यह विरोध करते हैं। इसमें बादशाह की ओर से विरोध नहीं होता। बादशाह की दृष्टि से इसमें कोई अराजकता या राजनिष्ठा का अभाव नहीं है, राजद्रोह भी नहीं है। राजद्रोह का मतलब है राजा का द्रोह। लेकिन राजा का अर्थ क्या पुलिस सिपाही है ? (हंसी) मैंने पहले ही कह दिया है कि यह भेद पहले से ही करना चाहिए। अगर कल आप यह कहें कि पुलिस के सिपाही को निकाल दो तो क्या इसमें राजद्रोह हो गया ? परन्तु पुलिस के सिपाही तो ऐसा ही समझते हैं। (हंसी) इसी तरह ज़रा ऊपर और बढ़िये तो आपको मालूम हो जायगा कि जो कुछ आप मांगते हैं वह ठीक है, उचित है, न्याय्य है, मनुष्य स्वभाव के अनुसार है। अन्य राष्ट्रों ने भी वही किया है।

मेरी समझ में हम लोग स्वराज्य के पात्र हैं। अब मैं

आपको थोड़े में यह बतलाऊंगा कि हम लोग क्या प्राप्त करना चाहते हैं और हम लोगों को मांगना क्या चाहिए? और तब मैं अपना भाषण समाप्त करूंगा। आप लोग यह जानते हैं कि हिन्दुस्तान का राजकार्य कैसा है, लेकिन उसमें बतलाने की बात यह है कि वह एक विशिष्ट नियम के अनुसार होता है, उसके नियम निर्धारित हैं, चाहे स्टेट सेक्रेटरी के अधिकार हों और चाहे गवर्नर जनरल के अधिकार, उसमें पद्धति के तीन बड़े भाग हैं। विलायत में स्टेट सेक्रेटरी साहब हैं, हिन्दुस्तान में दिल्ली में गवर्नर जनरल हैं, इन के नीचे इलाक़ों में एक एक गवर्नर हैं, इनके नीचे के कर्मचारियों को अभी जाने दीजिए, लेकिन बड़ी व्यवस्था यही तीन प्रकार की है। अब यदि उसमें हर एक के विषय में विचार किया जाय तो स्टेट सेक्रेटरी को कौन नियुक्त करता है? हम नहीं करते, यह जो रचना हुई है वह कम्पनी सरकार के सिद्धान्त पर हुई है। जिस समय इस देश में ईस्ट इन्डिया कम्पनी का राज्य था उस समय सब काम व्यापारी नीति पर होता था। इसी बात की ओर सब से अधिक ध्यान दिया जाता था कि कम्पनी के हिस्सेदारों को सब से अधिक मुनाफ़ा कैसे मिले। कम्पनी के जो डाइरेक्टर होते थे वे आज कल के स्टेट सेक्रेटरी की जगह पर रहते थे। आप कह सकते हैं कि सारा राज्य चलाने के लिए यह एक प्रकार का ठेका दिया हुआ था, डाइरेक्टर गये और उनकी जगह पर स्टेट सेक्रेटरी आए। हिन्दुस्तान में कितना धन खर्च होना चाहिए और कौनसा कर लगना चाहिए, यह कौन तय करने लगा? स्टेट सेक्रेटरी। गवर्नर जनरल के हाथ में यह अधिकार नहीं रक्खे गए हैं। यहां मुख्य अधिकारी ये ही हैं। इनके नीचे गवर्नर

नौकर हैं, और उनके नीचे दूसरे नौकर हैं और सब कारबार उन्हीं स्टेट सेक्रेटरी की सम्मति, विचार और सलाह से होना चाहिए, यही आज कल का सिद्धान्त है। आगे क्या हुआ? शासन-प्रबन्ध महारानी विक्टोरिया के हाथ में चले जाने पर यद्यपि उन्होंने बड़ा भारी घोषणा-पत्र निकाला पर तो भी उस घोषणा पत्र के सिद्धान्त पर शासन नहीं हुआ। राजकीय सिद्धान्त वही व्यापारी कम्पनी के सिद्धान्त पर और राजकीय व्यवस्था भी उसी कम्पनी के सिद्धान्त पर रही और घोषणा-पत्र बीच के बीच ही में व्यर्थ गया।

फिर ये व्यवस्थापक सभायें (कौन्सिलें) निकलीं, धीरे धीरे म्युनिसिपल्टियों में तुम्हारे काम करने वाले घुसे, व्यवस्थापक सभाएं तो हो गईं, पर अन्तिम कुंजी अब भी उन्हीं के हाथ में है, व्यवस्थापक सभाओं में वाद-विवाद कीजिए। वाद-विवाद करने का आप को पूरा अधिकार है, यह धन इस काम में खर्च हो उसके लिए वाद विवाद कीजिए, खर्च होगा या नहीं, यह हम तय करेंगे, आप अपने मुंह और मन से चाहे जितना काम कीजिए, इसमें हमारा कोई हरज नहीं है, रात भर जाग कर अपनी स्पीचें तैयार कीजिए, अन्य समाचार पत्रों के बदले में हम उसे बंबई गज़ट में छाप देंगे, बस इतना ही फ़रक है, इसमें मिला कुछ भी नहीं? मिलने की आशा दिखाई है, पिछले पांच पचास बरसों में स्टेट सेक्रेटरी और गवर्नर जनरल तक इसी तरह टालते आ रहे हैं, जहां तुमने ज़रासी गड़बड़ की तहां हम कल ही पांच की जगह छः मेंबर कर देंगे, लेकिन उन पांच के छः हो जाने से हमारा क्या लाभ? खाली हम में से एकाध और आदमी को वहां व्यर्थ चार दिन गंवाना पड़ेंगे, (तालियां) इसके

सिवा उसमें और कोई लाभ नहीं है, अगर तुम छः के बार में झगड़ो तो हम आठ कर देंगे, लेकिन इस तरह कोई नतीजा नही निकल सकता। यह बात अच्छी तरह हम लोगों की समझ में आ चुकी है।

तुम्हें जो अधिकार हमें देना हो वह हमें पूरी तरह से दो, तुम्हारे अधिकार चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों, हमें यह पद्धति नहीं चाहिए। हमें अंग्रेज़ी सरकार चाहिए, हमें इसी राज्य छत्र के नीचे रहना है, लेकिन स्टेट सक्रेटरी के नाम से जो दामाद (हंसी) खड़ा किया गया है, वह हमें नही चाहिए। और नहीं तो, कम से कम इतना तो अवश्य चाहिए, कि उन के सम्मति देनेवाले मंडल में हमारे चुने हुए लोग रहें, यह पहला सुधार होना चाहिए। इसके सिवा हम ही लोगों के मत से यह भी निश्चित होना चाहिए कि हिन्दुस्तान का खर्च कौन करेगा, धन कितना संग्रह किया जायगा और कर कितना लगाया जायगा, (तालियां) जो कर हम बतलाएं वह उठा दिया जाना जाहिए। वह कहेंगे कि खर्च कैसे चलेगा, तो आगे चल कर देख लेंगे। हम इतना जानते हैं कि पास में जितना धन होता है उतना ही खर्च करना पड़ता है और जितना खर्च होता है उतना ही रुपया वसूल करना पड़ता है, हम इस बात को अच्छी तरह समझते हैं,

होमरूल का दूसरा तत्व यह है कि अधिकार लोगों के हाथ में रहना चाहिए, अच्छे आदमियों के हाथ में अर्थात् लोगों के चुने हुए आदमियों के हाथ में रहना चाहिए। राज्य डूबेगा, राज्य जायगा, ये सब विचार बिलकुल बाहरी हैं। वे हमारी मर्यादा, हमारी दृष्टि में आते ही नहीं और न हम इन बातों को चाहते हैं, और फिर हम यही कहते हैं कि अगर

राष्ट्र को सुखी होना हो—आज जो हज़ारों झगड़े उपस्थित हैं उन्हें यदि दूर करना हो-तो पहले इस राज्य पद्धति को बदलो। मराठी में (हिन्दी में भी) एक कहावत है "घोड़ा अड़ा क्यों, रोटी जली क्यों पान सड़ा क्यों" इन सब का एकही उत्तर है-फेरा न था। पान को और रोटी को यदि उलटते रहते तो नहीं बिगड़ने पाती; इसी तरह घोड़े को अगर फेरा होता तो वह न रुकता। इसका मतलब यह है कि जंगलों के झगड़े, आबकारी के झगड़े, गांव और ज़मीदारों के झगड़े केवल हमारे हाथ में सत्ता न होने के कारण ही होते हैं, यदि इनका थोड़ा सा भाषांतर किया जाय तो यहीं कहा जायगा कि ये सब बातें स्वराज्य न होने के कारण हैं, (तालियां) हम लोगों को स्वराज्य मिले, यही उसका मूल है।

स्वराज्य की मांग ऐसी ही हैं कि जिसके साथ राजद्रोह का कोई संबंध ही नहीं है, बादशाह का भी संबध नहीं है। अपने घर की जो कुछ व्यवस्था हो वह आप करो; इससे यह होगा कि एक तो तुम्हारा मन शांत रहेगा, तुम्हें जो कुछ करना होगा, उसे तुम अपने लिये हितकारक समझ कर ही करोगे; यही नहीं बल्कि खर्च भी आप ही आप कम करोगे। मैं नहीं कह सकता कि किसी देशी रियासत में भी कलेक्टर को २५००) तनख्वाह मिलती है या नहीं। संसार भर में कलेक्टर का काम करने वाले मनुष्य को यदि कहीं सब से अधिक वेतन मिलता है तो वह हिंदुस्तान में ही है। (तालियां) पुराने ज़माने के राज्यों में एक कलेक्टर को २५००) रुपए तनख्वाह देना मानों तीस हज़ार सालाना की जागीर देना था, अपने स्वराज्य में क्या हम ने कभी तीस हज़ार की जागीर दी है? तीस हज़ार रुपए कम नहीं होते, यहां आदमी

मिलते हैं, तब फिर क्यों उन्हें इतनी अधिक तनख़्वाह दी जाती है? हम लोगों की शिक्षा में व्यय करने के लिये धन नहीं मिलता, कहा जाता है कि लोकोपयोगी कामों के लिये हमारे पास धन नहीं है; इसलिए पहले इन्हीं सब बातों का अंत होगा। फिर काम खूब अच्छी तरह चलेगा, पहले बहुत अच्छी तरह न भी चले, रुपये में एक आना कम चलेगा। लेकिन वह काम हम ही लोगों का चलाया हुआ होगा और हम लोगों की अनुमति से ही होगा; इसलिए जो कुछ होगा उसका मूल्य अधिक होगा,

इस प्रकार अच्छी व्यवस्था करने के लिये हमें सम्राट से कहना चाहिए। इस समय जो क़ानून हैं उन्हें पार्लमेन्ट से दुरुस्त कराना चाहिए, अंग्रेज़ लोगों से—अंग्रेज़ी पार्लमेन्ट से—प्रार्थना करनी होगी, यह स्थिति उनके सामने रखनी होगा, इसलिये जो कुछ करना हो अगर तुम २०–२५ वर्ष तक उसके लिये उद्योग करते रहोगे तो उसका फल प्राप्त हुए बिना कभी न रहेगा। आजकल जो लड़ाई छिड़ी हुई है, उस लड़ाई के कारण ऐसा समय आगया है कि ऐसे उपाय किये जायं जिनसे हिन्दुस्तान का गौरव, हिन्दुस्तान का शौर्य, हिन्दुस्तान का धैर्य, और स्थैर्य बढ़ सके। अगर सरकार को यह बात मालूम हो जाय कि ये लोग आप ही इस बात का उद्योग कर रहे हैं तो आशा है कि हमारी मांग और भी जल्दी सफल हो, इसलिये इस विषय को मैंने ख़ास तौर पर आपके सामने रखा है, दूसरी ओर भी इस विचार की चर्चा हो रही है। इस काम के लिये हमने जो यह "सङ्घ" स्थापित किया है यह ऐसा है कि इस उद्योग के संबंध में आज नहीं, तो कुछ दिनों बाद प्रत्येक स्थान पर मुझे अथवा किसी और

को सब लोगों के सामने इस विषय को उपस्थित करना पड़ेगा। आज इस समय मुझे आप से यही कहना है कि इस विषय की बराबर चर्चा करते रहिए। सदा उस पर ध्यान रखिये, समझिये कि उसका उपयोग क्या है और इस बात की अच्छी तरह मीमांसा कर लीजिए कि उसमें राजनिष्ठा कितनी है और अराजकता कितनी है।

मेरा जो कुछ कथन है वह चाहे इसकी अपेक्षा अधिक ही क्यों न हो तो भी मैंने सक्षेप में उसका सारांश आप लोगों को सुना दिया है। अगर आप लोगों में, महाराष्ट्र में, हिन्दुस्तानमें उस विषय पर विचार आरम्भ हुआ तो कभी न कभी इस उद्योग में यश अवश्य ही मिलेगा। बात चाहे परमेश्वर के हाथ हो, पर तो भी वह होगी अवश्य। यह हम मानते हैं कि वह हमारे हाथ में नहीं है। लेकिन संसार में कर्म का परिणाम बिना हुए नहीं रहता। कर्म का फल कभी न कभी मिलता ही है। जितनी जल्दी मैं कहता हूं चाहे उतनी जल्दी फल न मिले, हमारे देखते चाहे वह न मिले, चाहे हमें उस से कोई लाभ न हो, पर उस कर्म का फल मिलना तो अवश्य चाहिए। (तालियां) और फिर कर्म के नियमानुसार जो कर्म किया जाता है उससे दूसरा कर्म उत्पन्न होता है उसी तरह तीसरा उत्पन्न होता है और यह परम्परा बराबर चली जाती है। चाहे देर से हो या जल्दी। हम भी तो यह कब कहते हैं कि हमारी आंखों के सामने ही हमारा मोक्ष हो, हम यह कब कहते हैं कि अमुक मनुष्य के हाथ से ही हो। अभी आपकी परिषद में यह प्रस्ताव पास हुआ है कि माडरेट्स और नैशनेलिस्टस् के पक्ष हमें नहीं चाहिए। अर्थात् दोनों में से किसी को स्वराज्य देना बराबर है, इसे अपना काम समझ कर

इसके लिये उद्योग करो। मुझे विश्वास है कि यदि परमेश्वर की कृपा से इस उद्योग का फल तुम्हारी आंखों के सामने न हुआ तो तुम्हारे आगे की पीढ़ी को बिना मिले न रहेगा।

दूसरा व्याख्यान

(यह व्याख्यान ता० ३०-५-१६ को अहमदनगर में दिया गया)

आज मैं आप लोगों से जिस के विषयमें इस समय चारों ओर चर्चा हो रही है, उसके संबंध में कुछ कहूंगा। वह बात स्वराज्य है। (तालियां) अपने घर को जितनी बातें हैं वह सब आप लोग अपनी सत्ता से करते हैं। यदि मुझे कोई काम करना हो और वह खास मेरा काम हो तो उसके लिये किसी दूसरे से पूछने की मुझे आवश्यकता नहीं होती, किसी की आज्ञा नहीं लेनी पड़ती, अथवा किसी दूसरे को सम्मति लेने की हमें आवश्यकता नहीं होती, लेकिन सार्वजनिक विषयों में यह बात नहीं है। जैसा हमारा कल्याण है वैसा ही और सब लोगों का भी है। लोगों का जीवन निर्वाह किस प्रकार उत्तम रीति से होगा, उनकी स्थिति किस प्रकार अधिक सुखकर होगी इत्यादि बातों पर विचार करने से हमें मालूम होता है कि जिस बात को हम चाहते हैं उसी में हमारे हाथों में सत्ता न होने के कारण बाधा दिखाई पड़ती है। ५० वर्षों से अनेकानेक बुद्धिमान् पुरुषों ने विचार कर इसका एक कारण ढूंढ़ निकाला है और वह, हम लोगों के हाथों में अधिकार का न होना ही है।

सार्वजनिक विषयों में अनेक लोगों के अनेक मत हैं, कोई

कहता है, तुम्हारे हाथ में सत्ता क्यों नहीं ? तुम शराब मत पीओ। बस, मामला ख़तम है। उपदेश सचमुच मीठा है; पर केवल उपदेश के सहारे सब लोग नहीं रोके जा सकते। इसके लिये सत्ता की आवश्यकता है। यह सत्ता जिसके पास नहीं उससे यह काम नहीं हो सकता, यदि केवल उपदेशों ही से काम चल जाता तो हमें राजा की ज़रूरत ही न पड़ती। लोगों की जैसी इच्छा हो उसके अनुसार कार्य कराने के लिये ही राज्य-व्यवस्था का निर्माण हुआ है। राज्य-व्यवस्था आपके हाथों में न होने से आप में से हज़ारों लोग किसी बात को पसन्द करते हों और जिनके हाथों में राज्य-व्यवस्था है उन्हें वह पसन्द न हो तो वैसी बात कभी भी न होने पावेगी।

पहले हम समझते थे कि अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट वास्तव में परकीय है। उसे परकीय कहना राजद्रोह नहीं है, जो वस्तु परकीय हो उसे परकीय कहना राजद्रोह नहीं है किसी प्रकार का अपराध नहीं है। परकीयता से क्या होता है ? परकीय तथा स्वकीय में जो भेद है वह यह है कि परकीय की दृष्टि भिन्न होती है, परकीयों के विचार भी परकीय ही होते हैं और सामान्य बर्ताव उनके इस प्रकार के होते हैं जिससे वे जिनके लिये परकीय हैं उनके कल्याण की विशेष प्रवृत्ति के नहीं होते। जो मनुष्य इस देश के निवासियों की भलाई का कार्य करता है वह परकीय नहीं हो सकता, फिर वह मुसलमान हो या अंग्रेज़ हो इससे कोई मतलब नहीं, परकीयता का सम्बन्ध हिताहित से है। परकीयता निश्चय ही गोरे या काले चमड़े में नहीं रहती। परकीयता धर्म में नहीं है। जिस देश में रहना है, जिसके लोगों में मिलकर अपने बाल बच्चों को रहना है, जिस देश में अपनी भावी सन्तानों को रहना है, उसके सुदिन

लाने उसका कल्याण करने, उसके हित के काम करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को मैं परकीय नहीं समझता।

प्रारम्भ में हम लोगों का विश्वास था कि इसकी ख़बर देने पर वह तुरन्त ही हमारे इच्छानुसार कार्य करने लगेगी। हम समझते थे, सरकार परकीय नहीं है। उसे (असल मामले की) खबर नहीं होती। यदि हम में से १०-५ प्रमुख लोग एकत्र होकर कहें तो वह उस पर ध्यान देगी। वह इतनी उदार बुद्धि, इतनी चतुर है कि उसे इस बात की खबर होते ही वह इस पर ध्यान देगी और इसका प्रतिकार करेगी। पर खेद है, कि यह समझ धीरे २ जाती रही। सरकार के ५० वर्षों के बर्ताव ही इसके कारण हुए। आप कितना ही शोर गुल करें, कितना ही आंदोलन करें, कितने ही कारण दिखावें, उसकी ही (सर कार की) रिपोर्टों के अंक उसके सामने उपस्थित करें, तथापि उसकी आंखों में कुछ ऐसा विकार हो गया है कि उसे स्वयं अपने ही रिपोर्टों के अंक नहीं सूझ पड़ते। वही दलील तथा वही कारण उसे मान्य नहीं होते। हम लोग कोई बात कहें तो वह उसी बात को पकड़ बैठती है जो हमारे कथन के विरुद्ध हो।

सम्भव है कि आपसे कोई यह कहे कि इसमें तो कोई विलक्षणता की बात नहीं है। पहले आपके यहां हिन्दुओं का, मुसलमानों का, पेशवाओं का, या नगर के बादशाहों का राज्य रहा होगा पर अब तो ये सभी राज्य नष्ट हो गये हैं; और उनकी जगह अंगरेज़ों का अधिकार स्थापित हो गया है। इसलिये अपने लाभ का काम करना उनके (अंगरेज़ों के) लिये उचित ही है, फिर आप लोगों को इस पर चिल्लाने का क्या कारण? हम में से बहुतों का ऐसा ही मत है। कुछ लोगों

का यह कहना है कि आप की यह चिल्लाहट केवल सरकार का जी दुखाने तथा उसके मन में एक प्रकार का विकार उत्पन्न करने का कारण होती है। अतएव इस चिल्लाहट को बंद कीजिये। वह जो कुछ दे उसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कीजिये। वह रोटी का चौथाई टुकड़ा दे तो उसे आनंद से स्वीकार कीजिये और उसका अहसान मानिये। मैं इन सब बातों को नापसन्द करता हूं।

मेरा मत यह है कि कोई गवर्नमेन्ट चाहे वह इंग्लैण्ड की हो चाहे कहीं की हो, गवर्नमेन्ट की हैसियत से उसका एक प्रकार का कर्तव्य है। गवर्नमेन्ट का एक प्रकार का धर्म है। उस पर एक प्रकार का दायित्व है। इस दायित्वकी जब वह उपेक्षा करती है तो मैं कहता हूं कि वह गवर्नमेन्ट ही नहीं है। गवर्नमेंट का जो अधिकार है, गवर्नमेन्ट का साधारण लोगों पर जो प्रभुत्व है चाहे वह उसने युद्ध में जीत कर प्राप्त किया हो या लोगों ने ही उसे सौंपा हो, तथापि गवर्नमेंट के कुछ कर्तव्य अवश्य हैं। हमारे और आपके जैसे कुछ कर्तव्य हैं वैसे ही जिसे हम गवर्नमेन्ट कहते हैं उसके भी कुछ कर्तव्य अवश्य हैं। कुछ कार्य उसे अवश्यमेव कर्तव्य हैं। कोई मनुष्य गवर्नमेन्ट की उत्तमता का प्रतिपादन करने लगता है तो वह आप को क्या दिखाता है? हमेशा यही जवाब दिये जाते हैं कि गवर्नन्ट ने सड़कें खुलवाईं, रेलें चलवाईं, तार और डाकखाने स्थापित कराये-क्या उसने ये सुभीते आपके लिये नहीं किये? तब आप क्यों गवर्नमेन्ट के नाम पर चिल्लाया करते हैं? मैं यह नहीं कहता कि ये बातें नहीं की गईं पर जितनी की गई हैं उतनी काफ़ी नहीं हैं। ये बातें की गईं और अच्छी तरह की गईं। पहले के राजाओं ने ये बातें नहीं की थीं; अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट ने इन्हें

किया और उनसे बढ़कर किया—यह उसके लिये शोभा की बात है। परन्तु जो कार्य वह नहीं करती उन्हें हम उसे क्यों न बतावें? जो काम उसने नहीं किया, जिसके करने की स्वयं उसकी इच्छा नहीं दिखाई पडती-अनेक भांति से समझाने पर भी जिस ओर उसका ध्यान नहीं जाता-उस बात को हम क्यों न कहें?

हमारे देश पर ब्रिटिश राष्ट्र की जो सत्ता है उस पर आघात न पहुंचाते हुए, उसे कमज़ोर न बनाते हुए, उसे स्थिर रखकर, आप जो कुछ करना चाहें कर सकते हैं-यह कथन किसी प्रकार राजद्रोह पूर्ण नहीं हो सकता। हमें अंग्रेज़ों के आधिपत्य की आवश्यकता है, पर बीच के भंडारियों की नहीं (तालियां)। धान्य यजमान का है, सामग्री यजमान की है, पर बीच में इन भंडारियों का न मालूम क्यों पेट दुखता है; अतः उन्हें बरखास्त कीजिये और वे अधिकार लोगों को दीजिये जिसमें हम अपने अपने घरों की व्यवस्था यथोचित कर सकें। इसी प्रकार का स्वराज्य हम मांगते हैं।

स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट दूर कर दी जाय, सम्राट् का आधिपत्य राष्ट्र से हटा दिया जाय और उसके स्थान में देशी राज्यों में से किसी एक का आधिपत्य स्थपित किया जाय। स्वराज्य का अर्थ यही है कि हमें देवता के पुजारियों को अलग कर देना है। देवता को रखना है, पर इन पुजारियों की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा दूसरा कहना यह है कि इन जगहों पर हमीं लोगों में से ही नियुक्त किये जायं। कलेक्टर, कमिश्नर आदि मध्यस्थ बिलकुल अनावश्यक हैं। आज कल आप लोगों पर कौन प्रभुता चलाता है? सम्राट् आकर नहीं चलाते क्योंकि वे विलायत में रहते

हैं। हमारी कुछ बातें उनके पास तक पहुंचाई जांय तो वे आपके कल्याण की कुछ व्यवस्था करें, फिर आपका कल्याण क्यों नहीं होता?

स्वराज्य शब्द का अर्थ जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूं यह है कि सम्राट् तथा अंग्रेज़ जाति की सत्ता अक्षुण्ण रहे और शेष सम्पूर्ण व्यवस्था करने का अधिकार पूर्णरूप से लोगों के अधीन कर दिया जाय। यही स्वराज्य की परिभाषा है। जो कुछ हम मांगते हैं उसका यह मतलब नहीं कि अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट के अधिकार कम हो जायं या वह यहां से चली जाय और उसकी जगह जर्मनों का आधिपत्य स्थापित हो। इसके विरुद्ध वर्तमान युद्ध में यह सिद्ध हो चुका है और समस्त संसार ने इसे देख लिया है कि जर्मन गवर्नमेन्ट का यहां आना हमें किसी प्रकार इष्ट नहीं है। अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट के प्रति हमारी कैसी निष्ठा है और उसकी हमें कितनी इच्छा है—इसका प्रमाण हमने अपना रक्त बहाकर दिया है। (तालियां) हम नहीं समझते कि कोई मनुष्य इस बात का इस से अधिक प्रमाण दे सकता है।

अतः आज यह बात निःसंशय सिद्ध है कि हम यहां अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट का ही आधिपत्य चाहते हैं और इसके अनुसार हम प्रयत्न भी कर रहे हैं। जब ऐसी स्थिति है तो ये बीच के लोग जो नियुक्त किये गये हैं क्यों नहीं बरखास्त कर दिये जाते और वे अधिकार हमें क्यों नहीं दिये जाते जो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्यान्य देशवालों को प्राप्त हैं? हम उनसे न बहादुरी में कम हैं न विद्या में कम हैं। हम में कर्तृत्व है। सब कुछ होने पर भी हमें अधिकार क्यों नहीं दिये जाते? एक दो मनुष्यों की नियुक्ति से हमारा समाधान नहीं हो सकता।

इस पद्धति को किसने चलाया? सम्राट् ने इसे नहीं चलाया। महारानी (विक्टोरिया) का घोषणापत्र दूसरी ही तरह का है और वर्तमान शासन--पद्धति बिलकुल ही भिन्न है। इस समय हमारे पास कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे हम अपना कल्याण कर सकें। यदि हमारी इच्छा हो कि हम अमुक विदेशी माल का महसूल बढ़ाकर स्वदेशी माल को उत्तेजन दें तो यह हमारे बस की बात नहीं है। हम सोचें कि देश में अमुक उद्योग-धन्धे की आवश्यकता है, उसे हमें आरम्भ करना चाहिए और उसकी शिक्षा के लिये बाहर से वेतनयुक्त शिक्षक बुलाने की व्यवस्था करनी चाहिये, तो यह बात भी हमारे हाथों में नहीं है। ये कितनी छोटी बातें हैं। लिखना, पढ़ना सीखना सब के लिये आवश्यक है। कोई मनुष्य चाहे मुसलमान हो या किसी धर्म का हो, किसी जाति का हो, पर उसे थोड़ा बहुत लिखना, पढ़ना आना ही चाहिये। इस बात को आज संसार के सब लोगों ने माना है। इस विषय में अब कोई शंका बाकी नहीं है। लिखना, पढ़ना सीखने से मनुष्य का कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। यह किसी को नई बात बताना नहीं है।

फिर हमारे यहां यह बात क्यों नहीं होती? इसीलिए कि द्रव्य का अभाव है। यह कारण किस की ओर से बताया जाता है? अधिकारी वर्ग की ओर से। इनकी तनख्वाह २५००) है, उसे ३०००) करने के लिये रुपया मौजूद है, आज ५० वर्षों से यह बात हमें दिखाई दे चुकी है। सन १९०६ में जब कलकत्ते में कांग्रेस हुई थी उस समय दादाभाई नौरोजी (तालियां) ने यह बात स्पष्ट बतला दी थी कि मेरा ५० वष का अनुभव सब को बतलाता है कि इस समय जो अवस्थ

है और जो एक प्रकार का अन्याय किया जा रहा है उसका प्रतिकार करने का एक ही उपाय है और वह अधिकारों का लोगों के हाथों में आना है। ये अधिकार जब तक आपके हाथों में न आवंगे तब तक आप का भाग्योदय कभी न होगा। सम्राट् चाहे कोई हो उसके विषय में हमारा कुछ कहना नहीं। पर जिन बातों का सम्बन्ध व्यवहार, व्यापार, धर्म और समाज से है उन्हें हमें अवश्य करना है, उन बातों के करने की सत्ता थोड़ी बहुत हमारे हाथों में आये बिना—शर्त यह है कि अन्त में पूरी २ आनी चाहिए—पूर्णरूप से हमारी अधीनता में आये बिना हमें अपने लिये समृद्धि, भाग्योदय, लाभ या उत्कर्ष के दिन देखना असंभव है। औरों के मुंह से पानी नहीं पिया जा सकता; उसे अपने ही मुंह से पीना पड़ेगा।

आपसे कोई नहीं कहता कि ये स्वत्व आप तलवार के बल पर प्राप्त करें! पर आज राष्ट्र की बुद्धि बदली हुई है। भारत इंग्लैंड की कुछ सहायता कर सकता है, भारत सुखी रहे तो इससे इंग्लैण्ड को ही एक प्रकार का वैभव, एक प्रकार की शक्ति और एक प्रकार का गौरव मिलेगा, इस तरह की बुद्धि इंग्लैण्ड में जागृत हुई है। इस बुद्धि का इस समय लाभ न उठाया गया तो फिर ऐसा अवसर आनेका नहीं है।

अधिकारी वर्ग इसे बुरा समझता है, इसमें किसका नुक़सान है? नुक़सान सम्राट् का नहीं, किन्तु अधिकारी वर्ग का है, इसी से उन्हें यह बात बुरी लगती है, और वह इस समय यह उपदेश करते हैं कि तुम लोग स्वराज्य के अयोग्य हो इसलिये हम यहां आये हुए हैं। मानो उनके आने के पहले भारत में कहीं स्वराज्य था ही नहीं और हम सब लोग लुटेरे थे तथा एक दूसरे का गला काटने को तैय्यार

रहते थे, पेशवाई (शासन) में राज्य व्यवस्था का अभाव था, मुसलमानी में भी राज्य व्यवस्था नहीं थी, हम लोग राज्य प्रबन्ध की योग्यता न रखते थे, हमें सड़कें बनवाना न आता था; और लोग सुखी किस प्रकार रह सकते थे यह हम नहीं जानते थे, नाना फड़नवीस मूर्ख थे, मलिक अंबर मूर्ख थे, अकबर और औरंगज़ेब भी मूर्ख थे; अतएव इन्हें हमारे कल्याण के लिये यहां आना पड़ा और आप अभी तक अपक्क बुद्धि बालक ही हैं, (हंसी)

अच्छा हम घडी भर के लिये इसे भी मान लेते हैं कि हम लोग अभी बालक ही हैं, परन्तु हम बालिग़ कब होंगे? क़ानून में २१ वर्ष का होने पर बालिग़ समझा जाता है, इन्होंने १५० वर्षों तक हम पर शासन किया तो भी हम बालिग़ न हो सके तो इन्होंने १५० वर्षों में यहां आकर कौनसा कार्य किया? हिन्दुस्तान के लोग नाबालिग़ थे तो उन्हें सयाने करना किसका कर्तव्य था? यह कर्तव्य इन्हीं का था, वही राज्य कर्ता थे, मेरा तो यह कहना है कि इन्होंने यह कर्तव्य पालन नहीं किया अतएव हम बालक हैं किन्तु ये भी राज्य करने के अयोग्य हीं हैं। (तालियां) जो लोग ५० वर्षों में अपनी प्रजा का सुधार न कर सके वे अपने अधिकार दूसरों को सौंप दें यही अच्छा है। जो लोग हमें कहा करते हैं कि तुम अभी योग्य नहीं हुए तो उनका कहना स्वार्थ साधन के लिये है। यह कथन यदि सत्य हो तो इससे एक तरह पर उनकी बेइज़्ज़ती है—वे अयोग्य सिद्ध होते हैं। इसके सिवा हम इससे और कोई परिणाम नहीं निकाल सकते। 'हम अयोग्य हैं,' इसका क्या अर्थ है? हमें क्या हुआ? हम म्युनिसिपेलिटी का प्रबन्ध कर लेते हैं। कोई

विलायत से परीक्षा पास कर आता है और उसे कलेक्टर का पद सौंपा जाता है तो वह उस पद का काम कर लेता है। गवर्नमेन्ट उसकी सिफ़ारिश करती है, परन्तु लोगों को स्वराज्य के अधिकार देने के समय सब लोगों को—करोड़ों को—साफ़ नालायक़ कह देना और अयोग्यता के सर्टिफिकेट दे डालना स्वयं अपनी ही अयोग्यता का प्रदर्शन करना है (तालियां)।

इस के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के आक्षेप स्वराज्य पर किये जाते हैं, पहली बात मैं कह ही चुका हूं कि ये (अधिकारी) एक बारगी समस्त राष्ट्र को अयोग्य बतलाते हैं। परीक्षा लेने को कहा जाय तो वह भी नहीं ली जाती, वर्तमान में ऐसा टालमटोल से काम निकाला जा रहा है। मुझे यह जानना है कि आप यह टालमटोल न चलने देते हुए जम कर आकांक्षा करने को तैयार हैं या नहीं? यदि आप आकांक्षा करने को तैयार न हुए, यदि आपने इसके लिये आग्रह न किया और आज का मौक़ा मुफ्त में खो दिया तो ऐसा मौक़ा फिर १०० वर्षों तक नहीं आनेवाला है; अतएव आप को तैयार होना ही चाहिये। मैं जानता हूं कि यदि हम तैयार होकर बल पूर्वक कहना आरंभ करें तो यह असंभव नहीं है कि कोई पुलिस सिपाही हमें 'तू' कह कर सम्बोधित किया करे। यदि आप सब धर्मवाले, जातिवाले निश्चय तथा एकता के साथ एकत्र होकर गवर्नमेन्ट से इसी समय इसके लिये माँग करें, आग्रह करें, इसके लिये जिस खर्च की आवश्यकता हो उसे करने को तैयार हों, और यह बात गवर्नमेन्ट पर ही नहीं, परन्तु सारे संसार पर प्रकट कर दें कि यह माँग पूरी किये बिना हम तृप्त न होंगे हमें संतोष न होगा।

यदि इतनी दृढ़ता आप में हो तो मुझे विश्वास है कि परमेश्वर की कृपा से यह माँग शीघ्र ही पूरी होगी।

यह आपके निश्चय का फल होगा, क्या धर्म और क्या राजकार्य्य सभी में निश्चय की आवश्यकता है; परन्तु साहस के बिना मन में ऐसा निश्चय नहीं आता। 'जो हो' कहने से काम नहीं चलेगा, उसके अच्छे या बुरे होने से ही हमारा प्रयोजन है, हम इसी की माँग करेंगे, हम इसके लिये द्रव्य एकत्र करेंगे और जो खर्च या परिश्रम दरकार होगा, करेंगे और जब तक हमारी यह माँग पूरी न कर दी जायगी तब तक यह आन्दोलन बंद न करेंगे। यदि हमारे जीवनकाल में यह काम पूरा न हुआ तो हमारे लड़के बाले भी यही आन्दोलन जारी रखेंगे। जब इस कार्य में इस प्रकार की आसक्ति होगी तभी इसका फल प्राप्त होगा। परमेश्वर से भक्ति के बिना फल नहीं मिलता, राजा से भी नहीं मिलता, इस लोक तथा परलोक में भी नहीं मिलता। यदि आपका ऐसा विश्वास न हुआ तो दृढ़ प्रयत्न करने पर भी उससे किसी फल की प्राप्ति न होगी। विश्वास प्रथम आवश्यक है, हमें जो बात सच जान पड़े उस बात का प्रतिपादन करना चाहिये और उसे लोगों, अधिकारियों बल्कि सम्राट् तक के सामने कहने को तैयार रहना चाहिये। सम्राट् को लोगों के हाथ में अधिकार दे देना चाहिये, और भारतीय और ब्रिटिश गोरी और काली प्रजा में किसी प्रकार का भेद न रखना चाहिये। सम्राट् की जैसी प्रजा वह है वैसी ही हम भी हैं उसे जितने सुख है उतने ही हमें भी मिलने चाहिएं। अनेक बुद्धिमान् विद्वान् और विचारशील मनुष्यों ने जिस वस्तु को इन सब की कुंजी बताया है वह 'स्वराज्य' है, उसका समय आज आ गया है।

तीसरा व्याख्यान।

(लखनऊ की कांग्रेस में ता० २९ दिसम्बर सन् १९१६ को "स्वराज्य" के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए लोकमान्य तिलक ने यह व्याख्यान दिया था)

माननीय सभापति महोदय, भाइयो और बहनो! आपने अभी प्लेटफार्म पर मेरा जो स्वागत किया है, उसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं। पर मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि जो यह समझ लूं कि आपने मेरा निजी तौर से यह स्वागत किया है—यह उन सिद्धान्तों का स्वागत है, जिनके लिये मैं लड़ रहा हूं। जिस प्रस्ताव का मैं समर्थन करने वाला हूं, उस में ये सब सिद्धान्त समाविष्ट हैं। यह प्रस्ताव स्वराज्य का है। यह वह प्रस्ताव है जिस के लिये कांग्रेस आज ३० वर्षों से झगड़ रही है। इसकी पहली ध्वनि ३० वर्ष के पहले हुगली नदी के किनारे पर पूज्यवर दादाभाई नौरोजी के द्वारा सुनाई गई थी (तालियां) इसके बाद इस विषय में कुछ मतभेद उपस्थित हुआ। कुछ लोग कहते थे कि इसका काम तुरन्त उठा लिया जावे और यह ध्वनि हिन्दुस्थान में चारों ओर ध्वनित कर दी जावे। दूसरा दल कहता था कि यह कार्य धीरे धीरे किया जाय और इसकी ध्वनि कुछ नर्म कर दी जाय। दस वर्ष के पहले कांग्रेस में इसी बात के ऊपर भेद हुआ। पर मुझे यह कहते बड़ी प्रसन्नता होती है कि मैं दस वर्ष तक और, इस बात को देखने के लिये जीवित रहा कि आज हम एक प्लेटफार्म पर फिर एक हो गये हैं और कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वराज्य के लिये आवाज़ उठा रहे हैं। हम केवल दोनों दलों को मिले हुए देखने ही के लिये जीवित

नहीं रहे हैं, पर आज देखते हैं कि मत भेद भी रफ़ूचक्कर हो गया है। हम हर तरह से मिल गये हैं। हमारी अपूर्व एकता हुई है। यह सैाभाग्य आज हमें युक्तप्रदेश के लखनऊ नगर में हुआ है (हंसी) आज के दिन को मैं बड़े ही सैाभाग्य का दिन मानता हूं।

सज्जनों! मैं आपके सामने दो एक बातों पर कुछ बोलना चाहता हूं। कुछ लोग कहते हैं कि हम हिन्दुओं ने मुसलमान भाइयों के लिये बहुत कुछ छोड़ दिया है; पर मैं समझता हूं और यह कहते समय मैं कुल भारत की हिन्दू जनता का भाव प्रकाशित कर रहा हूं कि ऐसे विषय में उचित से अधिक देने की कुछ सम्भावना ही नहीं है। मुझे इस बात की तनिक भी चिन्ता न होगी अगर स्वराज्य के सब हक़ मुसलमानों को दे दिये जावें। (सुनों सुनों की ध्वनि) मुझे चिन्ता नहीं होगी अगर ये हक़ राजपूतों को दे दिये जावें। यही क्यों, अगर नीच जातियों को भी ये हक़ दे दिये जावें तो मुझे चिन्ता नहीं। हिन्दू क़ौम के चाहे जिस फ़िर्क़े को हक़ दे दीजिये, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। उस समय यह लड़ाई हमारे आपस की रह जायगी। आज कल की तरह त्रिकोण लड़ाई (triangular fight) न रहेगी। हमें ये हक़ शक्ति शाली नौकरशाही से प्राप्त करना है। हमें ये हक़ उस नौकरशाही से प्राप्त करना है जो हमें ये हक़ नहीं देना चाहती। हमें ये हक़ उस नौकरशाही से प्राप्त करना है जो यह समझती है कि ये हक़ देने से उसकी हुकूमत, उसके अधिकार और हक़ उसके हाथों से निकल जावेंगे। अगर मैं भी नौकरशाही की दशा में होता तो मैं भी ऐसा ही करता। मैं नौकरशाही को उन स्वाभाविक भावों को रखने के लिये दोष नहीं

देता। नौकरशाही के हृद्गत भावों का स्वरूप चाहे जो हो, पर हमें उन भावों के विरुद्ध लड़ना है। ये भाव ऐसे हैं जो हमारे स्वराज्य के विकाश के लिये हित कर नहीं हैं। हमें एक तीसरे दल से लड़ना है और यह एक खुश की बात है कि इसके लिये आज हम सब धर्म, सब जाति और सब राजनैतिक मतों के भारतीय, कन्धे से कन्धा मिला कर इस प्लेटफार्म पर खड़े हैं। यह बड़े ही महत्व की घटना है। दस वर्ष के पहले पूज्य दादाभाई नौरोजी ने यह घोषित किया था कि स्वराज्य हमारा लक्ष्य होना चाहिये। उस समय इसका नाम स्वराज्य पुकारा गया था। इसके बाद इसका नाम आत्म-शासन (Self-Government) या शासन सुधार रखा गया। हम राष्ट्रवादी इसे होमरूल कहने लगे। ये सब एक हैं। एक ही बात के तीन जुदे जुदे नाम हैं। यह भी कहा गया है कि स्वराज्य के लिये भारत में और होमरूल के लिये इंग्लैण्ड में कुछ बुरे भाव फैले हुए हैं। अतएव ये दोनों ही नाम छोड़ कर इसका नाम शासन सुधार रखा जावे। आप चाहे जो नाम रखिये, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। अगर इसका नाम A. B. C. या X. Y. Z. रखें तो भी मुझे इसकी परवाह नहीं। मुझे नाम से कोई मतलब नहीं, काम से है। मैं खयाल करता हूं कि आप शासन सुधार के महत्व को या स्वरूप को पूर्णतया शायद ही समझे होंगे। यह आयरिश होम रूल से विशेष उदार है। और इसी से आप समझ सकते हैं कि इसमें कितनी सम्भावनाएं रही हुई हैं। यह पूरा होमरूल नहीं होगा, पर प्रारम्भ से कुछ अच्छा ही होगा। यह पूरा आत्म-शासन न होगा पर स्थानीय स्वराज्य से अच्छा होगा। यह पूरा स्वराज्य न होगा पर स्वदेशी और बहि-

स्कार से अच्छा होगा। यह तीस वर्ष के कांग्रेस के प्रस्तावों का सार होगा। इसी से हम आगे बढ़ सकेंगे और उत्तर-दायित्व से अपना काम कर सकेंगे। अब हम कांग्रेस के तीस प्रस्तावों पर मग़ज़मारी करने में अपनी शक्ति व्यय करना नहीं चाहते। ये सब प्रस्ताव आत्म-शासन के एक प्रस्ताव के अन्तर्गत हो सकते हैं। अतएव मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप इस प्रस्ताव की सिद्धि के लिये भरशक्ति और उत्साह से प्रयत्न कीजिये। इसके लिये कोई कसर उठा न रखिये। आप इसके लिये अपनी बुद्धि अपनी शक्ति, अपना धन, अपना उत्साह और यहां तक कि अपना सर्वस्व तक अर्पण करने के लिये तैयार हो जाइये। इसे आप सहज काम न समझिये। इस प्लेटफार्म पर केवल प्रस्ताव पास कर देने से कुछ न मिलेगा। हिन्दु और मुसलमानों के, तथा नर्म दल-वालों के केवल मिल जाने से कुछ न होगा। इस एकता से कुछ शक्ति और उत्साह उत्पन्न होना चाहिये और जब तक इस शक्ति और उत्साह का उपयोग न होगा, तब तक हम आगे बढ़ने की आशा नहीं कर सकते। आप के मार्ग में बड़ी बड़ी बाधाएं उपस्थित होंगी। अब आप को इसके परिणय करने में लग जाना चाहिये। मुझे इस बात की विशेष चिन्ता नहीं है कि कांग्रेस के अधिवेशन आगे हों या न हों। एक विचार-कारिणी सभा की हैसियत से वह अपना काम कर चुकी। अब हमें कार्यमूलक पथ की ओर झुकना है। अब बातें करने का समय नहीं है। जब हमारा लक्ष्य स्वराज्य घोषित किया गया, तब यह सवाल उठा कि यह वैध है या अवैध। कलकत्ता हाई कोर्ट ने इसे वैध ठहरा दिया। इसके बाद यह कहा गया कि स्वराज्य के लिये कहते हुए

ऐसे शब्द काम में लाना चाहिये जिससे नौकरशाही पर टीका न हो। अब इस बात का भी हाईकोर्ट से फ़ैसला हो गया है। आप क़ानून की सीमा में रहकर अपने उद्देश को आगे बढ़ाने के लिये—अपनी मांग को न्याययुक्त साबित करने के लिये आप नौकरशाही पर टीका कर सकते हैं। यहां आप के सामने संयुक्त भारत की पास की हुई स्वराज्य स्कीम है। हमारे मार्ग के कांटे अब बहुत कुछ हट गये हैं। यह आपका अपराध होगा, अगर इस बात को प्राप्त न करेंगे जिसका कि स्कीम में ज़िक्र है। आप स्मरण रखिये आपके कन्धों पर भारी ज़िम्मेदारी है। पीछे मत हटिये, काम करते चले जाइये। अब आश्चर्य के दिन गये। अब आप ईसा की तरह रोटी के कुछ टुकड़ों से हज़ारों लोगों की तृप्ति नहीं कर सकते। स्वर्ग के कौतुहल से आप अपने उद्देश की सिद्धि नहीं कर सकते। आपको अपने बल पर सब कुछ करना होगा। अब यह काम करने के दिन हैं, लगातार काम करने के दिन हैं। मुझे आशा है ईश्वर आपकी सहायता करेगा और आप वह शक्ति, वह उत्साह और वे साधन प्राप्त करेंगे, जो आपको अपने उद्देश सिद्धि पर पहुंचा सकेंगे। मुझे उम्मीद है कि सन् १९१७ के अन्त तक इस युद्ध का अन्त हो जायगा और सन् १९१८ में हम सब लोग भारत में किसी जगह मिलेंगे और आत्म-शासन का झण्डा उठाने में समर्थ हो सकेंगे।

चौथा व्याख्यान।

(यह व्याख्यान लो० तिलक ने ता० ३० दिसम्बर सन् १९१६ को होमरूल कॉन्फरेंस लखनऊ में दिया था।)

मिसेज़ बेसेन्ट और मित्रवरो ! मैं यहां व्याख्यान देने के लिये नहीं आया, और न मैंने यह सोचा था कि मुझे व्याख्यान देने के लिये कहा जायगा। पर यह विषय इतना आकर्षक है कि इस विषय पर दो शब्द कहे बिना मुझ से नहीं रहा जाता। कांग्रेस के इतिहास में लखनऊ का अधिवेशन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिवेशन होगा। कांग्रेस के सभापति महोदय ने कहा है कि यह राष्ट्रीय कांग्रेस है। यहां दो बातें हुई हैं हिन्दू और मुसलमान मिल गये हैं। कुछ हिन्दुओं में ये भाव फैले हुए हैं कि मुसलमानों को उचित से अधिक दिया गया है। मेरे विचार से यह ख़याल सुसङ्गत नहीं है। हिन्दू के नाते मुसलमानों के लिये इतना त्याग करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। जब कोई कठिन अभियोग होता है तब मुवक्किल अपने वकील के पास जाता है और मुक़द्दमा जीत लेने पर उसे अपनी आधी जायदाद देने तक का इक़रार कर देता है। वही बात यह है। हम अपनी इस असहाय दशा से बिना मुसलमानों की सहायता के नहीं उठ सकते। अतएव अपने इष्ट पदार्थ को पाने के लिये अगर मुसलमानों को कुछ ज़्यादा भी दे दिया गया तो कोई हर्ज नही। जितना आप उन्हें ज़्यादा दोगे, उतनी ही उनकी ज़िम्मेदारी बढ़ेगी। उन पर आपके साथ काम करने की दूनी ज़िम्मेदारी गिरेगी और वे ऐसे उत्साह और उमङ्ग से काम करेंगे जैसा पहले उन्होंने कभी नहीं किया था। हाल की जो लड़ाई है वह त्रिकोण लड़ाई

है। आपको शक्तिशाली नौकरशाही के हाथों से आत्म-शासन प्राप्त करना है। नौकरशाही ने प्रयत्न शुरू कर दिये हैं जिससे सब शक्ति उसके हाथ में अटल बनी रहे। यह बात स्वाभाविक है अगर आप उस दशा में होते तो आप भी वैसा ही करते। सत्ता आधा क़ानून (nine points of law) है। नौकरशाही सत्ताधारी है वह अपनी सत्ता को जान बूझ कर क्यों छोड़ेगी ? हर साल हक़ के प्रस्ताव पास कर देने से हक़ नहीं मिलते। इन प्रस्तावों को कार्य रूप में लाने में कठिनाइयां हैं पर ये कठिनाइयां हमारे विश्वास और क्रियाशीलता को बढ़ाती हैं। नौकरशाही ने भी कुछ अच्छा काम किया है। उसने यहां जो जंगल थे, उन्हें काटकर साफ़ कर दिये। इसके बाद उसमें बोआई होनी चाहिये थी। पर वे इस साफ़ की हुई ज़मीन में कुछ बोना नहीं चाहती। हम खेती के लिये उसका उपयोग करना चाहते हैं। हिन्दुस्थान नौकरशाही के मातहती में एक हुआ है। अब यह कर्त्तव्य पथ पर आना चाहता है। दूसरा मुद्दा यह है कि हम स्वाधीनता चाहते हैं। हम अपने बच्चों को शिक्षा देते हैं और इस बात को आशा करते हैं कि आगे जाकर ये हमारे स्थानों को ग्रहण करें। यही बात हमें अंग्रेजों पर घटित करना है। उन्होंने हमें एक किया है—हमें शिक्षित किया है और उन्हें हम से इस बात की ज़रूर आशा करनी चाहिये कि जिन पदों के योग्य हम (भारतवासी) हैं, उन्हें हम ग्रहण करें। नौकरशाही ने जो अड़चनें उपस्थित की हैं, उन से इतिहास और बुद्धि ख़िलाफ़ है। हमारी अन्त में अवश्य विजय होगी। सब से बड़ी बात जो हमारे मार्ग में आती है, वह यह है कि हम इसके लिये तैयार नहीं हैं। पीछे पैर रखने से काम नहीं चलेगा। अब आप यह कहने के लिये

तैयार हो जाइये कि आप होमरूलर हैं। निश्चय से कहिये कि हम इसे प्राप्त करेंगे। मैं विश्वास पूर्वक कहता हूं कि जब आपका इतना दृढ़ निश्चय हो जायगा, तब आप को स्वराज्य अवश्य मिल जायगा। इस मांग में किसी प्रकार का राजद्रोह नहीं है। क्या आप इसके लिये काम करने को तैयार हैं? स्वराज्य का विषय बड़ा व्यापक है, कांग्रेस ने इस विषय पर बड़ा ज़ोरदार प्रस्ताव पास किया है और अब लोगों को इस विषय को शिक्षा देने का काम आप के हाथ है। होमरूल कांग्रेस के सब प्रस्तावों का एकीकरण है। होमरूल ही हमारे सब दुःखों का इलाज है। आप अपने हक़ पर डटे रहिये। भारत आपका खुद का घर है। क्या वह नहीं है? (चारों ओर से 'हां, हां' की आवाज़) तब आप खुद उसका प्रबन्ध क्यों नहीं करते? हमारे घरू काम हमारे हाथ में होना चाहिये। हम इंग्लैंड से जुदाई नहीं चाहते। हमारे वेदान्त में एक कहावत है जिसका मतलब यह है कि अगर मनुष्य प्रयत्न करे तो वह ईश्वर भी हो सकता है। अगर यह बात सच है ते क्या आप सत्ताधारी नहीं हो सकते। यह बहुत छोटी बात है। आप मनुष्य जाति के उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास कीजिये। आप विकाश के नियमों पर श्रद्धा रखिये। मैं विश्वास करता हूं कि इस आत्म-विश्वास के कारण आप एक या दो वर्ष में अपने इष्ट पदार्थ को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

पाँचवाँ व्याख्यान।

(यवतमाल ता. ६-१-१७ को दिये हुए व्याख्यान का सारांश)

इस समय हमारी क्या हालत है और अब हमें क्या करना चाहिये यही बात मैं आपको बतलाना चाहता हूं।

पहले राजनैतिक सुधार के विषय में बड़ा ही गहरा मत भेद था। परन्तु जब कलकत्ते में दादा भाई नौरोजी ने अपने व्याख्यान में स्वराज्य आन्दोलन को समझाया और स्वराज्य का प्रस्ताव स्वीकृत कराया तभी से "स्वराज्य हमारा लक्ष्य है" यह निश्चित हो गया। स्वराज्य का सरल मतलब, "अपने घर का कारोबार स्वयं ही संभालना" है। अपने घर का कारोबार कभी किसी गुमाश्ते या दलाल को सौंप दिया जाता है। गुमाश्ता एक नौकर है। लेकिन जब मनुष्य बालिग हो जाता है, तब वह अपने घर का काम काज स्वयं देखना चाहता है, यह बिलकुल स्वाभाविक बात है। जो लोग पागल हों या नादान हों, उन्हीं लोगों को अपना कारोबार देखने का हक़ नहीं दिया जाता, लेकिन यह पागलपन या नादानी मान लेने ही से काम नहीं चलता; उसके लिये प्रतिपक्षि को कानून के अनुसार अदालत में सबूत देकर साबित करना पड़ता है। मैं अपने घर का प्रबन्ध किसी नौकर को सौंपदूं तो नौकर पर मेरी हुकूमत होनी चाहिये। इसी विचार को यदि आप फैलावेंगे तो ज्ञात होगा कि यह गांव, यह तालुका, यह ज़िला, यह देश मेरा ही घर है। हिन्दू, मुसलमान, मारवाडी, गुजराती, मदरासी मराठे आदि लोगों के दिलों में यह विचार पैदा हुआ और इसीलिये एक होकर हम लोगों ने 'स्वराज्य' मांगा है।

हमारे यहां यह स्वराज्य तत्व प्राचीन काल से चला आता है। हमारा प्राचीन क़ानून मनुस्मृति है। यह मनुस्मृति किसी राजा ने नहीं बनाई, परन्तु उस समय में महात्मा, साधु आदि उच्च पुरुषों के सलाह से ही कानून बनते थे और बदलते थे। स्वराज्य, वैराग्य आदि शब्द वेदों में हैं और उनकी कल्पना कुछ भिन्न होने पर भी अति प्राचीन है। हिन्दुस्थान में कई राजा और बादशाह हुए, परन्तु उन्होंने हमारी ग्राम-संस्थाओं को कभी नहीं तोड़ा वरन् उन्हें बढ़ाने ही की चेष्टा की। मनुस्मृति में यह नियम है कि व्यवसाय संबंधी झगड़ों का निपटारा गांव ही किया करे। दुष्यन्त ने शकुन्तला को फटकार दिया पर फैसला पंचों ने किया। कानून ने राजा को "व्यवहारान् नृपः पश्येत् विद्वद्भिः ब्राह्मणैः सह" अर्थात् राजा विद्वान लोगों की सलाह से न्याय करे—यह स्पष्ट आज्ञा दी है। जो भारतवर्ष इस प्रकार का आदि से स्वराज्य भोगता चला आया है, उसे यह कहना कि "तुम लोग अभी कुछ नहीं जानते" यह कितना अपमान-जनक है। स्वराज्य तत्व अति प्राचीन है। यह प्रमाणों से सिद्ध किया जा चुका है। राजा कोई हो, इस बात को कोई नहीं देखता था; परन्तु वह हमारे अधिकारों में दखल तो नहीं देता है, इस पर सब का ध्यान रहता था।

अंग्रेज़ सरकार ने इस प्राचीन पद्धति को तोड़ दिया। हम यह नहीं कहते कि हमें अंग्रेज़ों का राज्य नहीं चाहिये; परन्तु हमारा यह कहना है कि हमें अपने हक़ दे दो। हमारी सरकार ने कुछ म्युनिसिपेलिटी के अधिकार दिये हैं। हमारा कहना है कि इसी को और विस्तृत कीजिये। जब हम साफ़ कह रहे हैं कि वर्तमान सम्राट् के राज्य में हम कुछ दख़ल

नहीं देना चाहते, केवल हम अपने हक् मांगते हैं, तो इसमें राजद्रोह कहां रहा? सौ वर्ष पहले हम स्वराज्य के लायक़ थे। बीच में हमने अपने अधिकारों का अमल नहीं किया, इस से नालायक़ नहीं हुए। दुर्भाग्य से, फूट से हमें अपने अधिकारों को कुछ समय के लिये छोड़ देना पड़ा। अब हम लोग पाठशाला में पढ़ने वाले विद्यार्थी नहीं रहे, अब गृहस्थी का काम करने लगे हैं। इसी लिये हम अपना अधिकार मांगते हैं। इसमें राजद्रोह नहीं है, इसे अदालत ने ही साबित कर दिया है। इसमें सरकार से डरने की कोई बात नहीं है। गत ३० वर्षों से हम सरकार से ज़रा ज़रा सी बातें ही "नमक का टेक्स कम करो," 'पेड़ काटने की आज्ञा दो' मांगते चले आरहे हैं। इन बातों को अगर सरकार स्वीकर कर लेती तो आज यह नोबत ही न आती। अपना भोजन आप बना लेने का सब को अधिकार है। हमारे भोजन में "नमक ही ज़्यादा पड़ गया,—वह कडुआ हो गया" यही अब तक नौकर को बतलाते रहे; परन्तु हमारी इच्छा के अनुसार भोजन तैयार ही नहीं होता, इसी लिये हम भोजन बनाने का ही हक़ मांग रहे हैं।

स्वराज्य से यह तात्पर्य्य है कि व्यवस्थापिका सभा में लोक पक्ष के सभासदों का प्राधान्य हो और कार्य्यकारिणी सभा पर व्यवस्थापिका सभा का पूरा अधिकार हो। इस बात को आप ध्यान में रखिये कि चोटी हमारे हाथ में होनी चाहिये। इस चोटी में सिर के शेष बाल नहीं आते। कम से कम चार अंगुल चोटी हमारे हाथ में होनी चाहिये और यही स्वराज्य मांगने का अर्थ है। कांग्रेस में पास हुआ प्रस्ताव हमें युद्ध के अन्त होते ही मिलना चाहिये। ब्रिटिश

राज्य के अन्य उपनिवेश विलायत के शासन-कार्य में इससे अधिक अधिकार मांग रहे हैं। उनकी तुलना में हमारी यह मांग बहुत ही छोटी है। अब केवल प्रस्ताव पास कर देने से ही काम नहीं चलेगा; परन्तु अब हमें उद्योग करना चाहिये।

कोई कोई कहते हैं कि हम पहले पहल ग़लती करगे; पर ग़लती करना तो मनुष्य मात्र के लिये स्वाभाविक है। बड़े आदमियों से क्या भूल नहीं होती? हमें भूल करने का और उसे सुधारने का दोनों ही अधिकार चाहिये। लड़का बिना गिरे चलना नहीं सीख सकता। तुम उस लायक होगे, तब तुम्हें अधिकार देंगे, यह बातें कहना क़रीब, क़रीब "नहीं देंगे" इसी के बराबर है। योग्यता का कोई थर्मामीटर नहीं होता, और न उसका नाप लिया जा सकता है। योग्यता की कोई शर्त हो तो हम लोग उसे पूरा करने की कोशिश भी करेंगे, पर व्यर्थ ही अयोग्य बतलाने से क्या मतलब है?

हमारा लक्ष्य निश्चित हो गया और मार्ग भी वैध प्रमाणित हो गया। यहां तक तो सब विघ्न दूर हो गये, अब उद्योग करने का समय है। विघ्न चारों तरफ़ से घेरे हुए हैं और पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने तक घेरे ही रहेंगे। मैं कहता हूं कि विघ्न भी क्यों न आवें? तत्वज्ञों का कहना है कि इस संसार में दुःख की मात्रा ही अधिक है। दुःख का अनुभव हुए बिना सुख का आनन्द ही नहीं आता" मन में ऐसी बात जम जाना चाहिये कि जो कुछ हमने मांगा है यदि वह न मिला तो हम लोग मूर्ख गिने जावेंगे। अब आप का परम कर्तव्य है कि आप स्वराज्य संघ या कांग्रेस जो कोई उद्योग करे उसमें आप यथा शक्ति सहायता दें। अब आप यह धैर्य्य के साथ निर्भीकता से कहिये कि मैं स्वराज्य वादी हूं मैं अधि-

कारों के लिये पात्र हूं, और इसी लिये मैं अपने अधिकार मांगता हूं। मन को दृढ़ बनाइये और ऐसा संकल्प कीजिये कि मेरे उद्योग में यदि विघ्न आये तो अपना सर्वस्व देकर उन्हें दूर करूंगा। इसमें किसी से द्वेष नहीं है और न किसी से वैर है। सरकार से भी हमारा कोई मनमुटाव नहीं है। कोई तुम्हें रोके तो साफ़ कह दो कि 'यह मेरा अधिकार है, यह मेरा धर्म है'। अपने हक़ की रक्षा करना ही ईश्वर की पूजा है। यदि आपने ऐसा नहीं किया तो आप ईश्वर की आज्ञा को टालने के पाप के भागी होंगे। अब आप यदि दृढ़ विश्वास, निश्चय और धैर्य्य के साथ उद्योग में लग जायँगे तो आप अवश्य ही यशस्वी होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'

यह गीता का एक रहस्य है। ज़रूरत पड़ने पर मरना भी होगा। हमारा मरना अवैध नहीं होगा, यह आप ध्यान में रखिये। आपत्काल में भी अपना धर्म न छोड़ना ही जीने जागने का लक्षण है, यह तत्व जिसने समझ लिया, बस उसी ने हिन्दू धर्म के स्वरूप को पहचान लिया। धर्म केवल मन्दिरों में जाकर पूजा करना नहीं है। एक चित्त होकर स्वराज्य के लिये प्रयत्न करना ही वर्तमान काल का कर्तव्य है। आंखें खोल कर चारों तरफ देखिये तो आप को मालूम होगा कि ईश्वर आप की सहायता के लिये तैयार है।

युद्ध ने हमारी राजभक्ति को सुबूत कर दिया है। हमारे बहादुर सिपाहियों ने सम्राट् के लिये अपने प्राण दिये हैं। शासकों के दिलों में भी सुधार करने की सदिच्छा पैदा हुई ऐसे अनुकूल समय में भी यदि आप सोते रहेंगे तो बड़ी

भारी मूर्खता होगी। नौकर कोई हो-भारतवासी हों या अंग्रेज़ हों—हुकूमत हमारी होनी चाहिये। बाजार में जाकर पैसा फेंक देने से हमें हक़ नहीं मिलेंगे। उत्साह और धैर्य्य जाग्रत होना चाहिये। बड़ी बड़ी आफतें आवेंगी, पर याद रखिये कि परमात्मा आप के साथ है। सूर्य्य चंद्र को भी राहुने नहीं छोड़ा। पर ग्रहण छूटते ही वे फिर प्रकाशमान होते है। वेःअपना कर्तव्य नहीं भूलते। फिर मैं आप से कहता हूं कि उत्साह निश्चय और धैर्य्य से उद्योग में लग जाइये। परमात्मा आपके साथ है, आपको अवश्य यश मिलेगा।

छठवां व्याख्यान।

स्वराज्य, वर्णधर्म और संध्यावन्धन

(यह व्याख्यान ता० १ जनवरी सन् १७ को कानपुर में दिया गया था)

यद्यपि मैं भी उन लोगों में से हूँ जो कहते हैं कि भारत की भावी राष्ट्रभाषा हिन्दी ही होनी चाहिये ; परन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दी न बोल सकने के कारण अंग्रेज़ी में ही अपने भाव प्रकट करता हूं।

आप सब लोग अब यह अच्छी तरह से समझ गये हैं कि होमरूल के सिवा अब हमारी कोई रक्षा नहीं कर सकता। इस देश की नैतिक, सांपत्तिक मानसिक आदि सब प्रकार की उन्नति इसी स्वाधीनता पर निर्भर करती है। यदि आप अपनी हालत पर विचार करेंगे, तो आप अपने को हर बात में असमर्थ पावेंगे। भारत के उद्योग धन्धों की, शिक्षा की या अन्य उपयोगी विषयों की उन्नति का जब आप

विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि आपके रास्ते में कितने कांटे बिछे हुए हैं अर्थात् आपके पास वह ताक़त नहीं है जिससे आप जो चाहें कर सकें। इसी शक्ति को प्राप्त करने के लिये हम सब लोगों को तैय्यार हो जाना चाहिये।

होमरूल के विरुद्ध जो आक्षेप उठाये जाते हैं, उनका जवाब कांग्रेस में और कांग्रेस के बाहर दिया जा चुका है। यहां पर मैं केवल दो एक आक्षेपों की ख़बर लूंगा—हमारे विरोधी लोग कहते हैं कि भारतवर्ष में होमरूल के पक्ष में सर्वसाधारण नहीं है। इसका खंडन आप लोगों की उपस्थिति से ही हो जाता है। मैं समझता हूं कि आप लोग यहां पर मेरा स्वागत करने के लिये नहीं आये हैं; परन्तु होमरूल (स्वराज्य) के उद्योग का स्वागत करने के लिये आये हैं।

दूसरा आक्षेप यह है कि हम हिन्दुओं ने कभी स्वराज्य का स्वरूप ही नहीं देखा। इससे बढ़कर ग़लत और झूंठी बात हो ही नहीं सकती। प्राचीन समय में उत्तरी भारतवर्ष ने स्वराज्य भोगा है। मनुस्मृति के राजनीति अध्याय में चातु-र्वर्ण्य की सामाजिक संगठन का उल्लेख है। बहुत से लोग जात पांत को चातुर्वर्ण्य कहते हैं। इन जातियों का क्या कर्तव्य है उन्हें कोई नहीं देखता। मनु और भगवद्गीता के समय में यह बात नहीं थी। भगवद्गीता ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि यह वर्ण भेद जन्म से नहीं वरन् गुण और कर्म से है। क्षत्रिय लोग पहले ज़माने में राज्य की रक्षा करते थे और परचक्र तथा अन्तर्विद्रोह से प्रजा को बचाते थे। इस काल में उनका पता ही नहीं है। उनका कार्य्य अब अंगरेज़ लोग कर रहे हैं। व्यापार को लीजिये। आप लोगों का ख़याल है कि कानपुर एक व्यापारी मंडी है। मज़दूर बहुत से हैं पर

देश का धन विदेश में बहा जा रहा है। कच्चा माल बाहर भेजा जाता है और पक्का बन कर बाहर से आता है, जिसने भारतवर्ष के प्राचीन कला कौशल का नाश कर दिया है। वैश्य जाति को देखिये—उसे भी अंगरेज़ी सौदागरों ने अपने वश में कर लिया है। ब्राह्मणों की हालत देखिये। मैं भी ब्राह्मण हूं। हम समाज के शिरोधार्य्य थे, विद्या में प्रवीण थे, शरीर में जो मस्तिष्क का स्थान होता है, वही समाज में हमारा स्थान था; परन्तु आज जो हालत है वह आप देखते ही हैं। मेरे विचार से चातुर्वर्ण्य ने समाज के जीवन कार्य्य के लिये चार विभाग बना दिये हैं और अब हम हर एक विभाग में बराबर कुछ न कुछ हारते ही जा रहे हैं। मेरी इच्छा है आप इस भेद को समझें और समाज में जो आपका स्थान है उसे प्राप्त करने की भरसक कोशिश करें। हम लोगों को स्वयं-सैनिक बनने का अधिकार नहीं, बड़े बड़े जिम्मे-दारी का काम करने का हमें मोक़ा ही नहीं दिया जाता। आदमी मौजूद हैं पर उनके कर्त्तव्य जाते रहे और बस यही रह गया कि तुम क्षत्रिय हो, हम ब्राह्मण हैं और वह शूद्र है। सब ने अपनी मर्यादा छोड़ दी। मैं चाहता हूं कि आप सब लोग इस बात को समझें कि आप में क्षत्रिय या ब्राह्मण का रक्त होने ही से क्या हुआ, आप में वे गुण नहीं हैं, वे कर्म नहीं हैं जो आप में होना चाहिये थे। 'स्वराज्य' का यह भी मतलब है कि चातुर्वर्ण्य के इन कार्य विभाग में जो स्वाधीनता प्राप्त थी, उसे ब्रिटिश राज्य की छत्रछाया में प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय।

परन्तु ऐसा प्रबन्ध दो तरह से होता है। घर में नौकर भी होते हैं और लड़के भी। हम लोग लड़कों की जगह लेना

चाहते हैं, न कि नौकरों की। हम चाहते हैं कि साम्राज्य का मृत भाग न बन कर—साम्राज्य के लिये बोझा न होकर, हम एक जीता जागता भाग बनें, जिससे हम अपने सामाजिक जीवन में अपने सब शक्तियों का,-गुणों का, विकाश कर सकें। इसी विचार से यह 'स्वराज्य' का आन्दोलन शुरू किया गया है, जिससे आप अपने घर के मालिक बन कर रहें, नौकर नहीं। इस अधिकार को प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य के लिये ज़रूरी है और यही "स्वराज्य" प्राप्त करने का लक्ष्य है। क्या कभी आपने इस बात पर भी विचार किया है कि आप अपने घर के नौकर हैं या मालिक? और भारतवर्ष यदि आप का घर है तो क्या सबब है कि आप अपने घर की भीतरी बातों के पूरे मालिक न बनें।

किसी अंगरेज़ का कोई हक़ छीन लीजिये तो वह आकाश पाताल एक कर देगा और जब तक उसे अपना हक़ नहीं मिलेगा, कभी चुपचाप नहीं बैठेगा। आप लोग भी क्यों चुप चाप रहें। आप लोग भी अपने धर्म के नाम पर अपनी वर्ण व्यवस्था के नाम पर, अपने वेदान्त के नाम पर, अपनी इज़्ज़त को समझ कर अपना जन्म सिद्ध अधिकार—अपने घर का बन्दोबस्त अपने हाथ में लेने के लिये पूरा उद्योग क्यों न करें? यदि आप ही यह कोशिश न करेंगे तो और कौन करेगा? मोह के वश में न हो जाइये। आप उसके लिये योग्य हैं, सिर्फ़ आपने अभी उसका अनुभव नहीं किया है। आप अपनी कोशिश से उसे पा सकते हैं। यही आत्म विश्वास मैं आप लोगों में उत्पन्न हुआ देखना चाहता हूं। एक बार आप अच्छी तरह समझ लें कि जिस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों के लोग अपने घर के आप मालिक हैं उसी

प्रकार आप भी हैं। एक बार आप यह धारण कर लीजिये तो कोई ताक़त ऐसी नहीं है जो आप और आप के उद्देश के बीच खड़ी होकर दोनों को अलग कर सके परन्तु यह सब आप की कोशिश पर निर्भर है। यह एक ऐसी बात है जिसकी तरफ़ अब आप लोगों को ध्यान देना चाहिये। उदासीनता को अब दूर कीजिये। आप लोग संसार की किसी जाति के लोगों से कम नही हैं। हम लोग निःसन्देह जापानियों से कहीं अच्छे हैं और इस पर भी जिस बात को जापान प्राप्त कर लेता है उसे प्राप्त करना आप असम्भव समझते हैं और उसकी कोशिश में आप उदासीन हो जाते हैं। आपका यह दोष नही है कि आप में योग्यता नहीं है या आपके पास साधन नहीं है; पर कमी केवल यह है कि आप में इच्छा ही नहीं है। आपको अपनी इच्छाशक्ति पर अभ्यास करना चाहिये। इच्छा ही सब कुछ है। इच्छाशक्ति से आप जो चाहें प्राप्त कर सकते है। दृढ़ इच्छ कीजिये यदि आप इस बात को समझ लेंगे तो आप अपने जन्म सिद्ध अधिकार को अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे। यदि आप कहें कि यह इच्छाशक्ति उन शक्तियों का मुक़ाबला न कर सकेगी जो हमारे विरुद्ध सुसज्जित की गई हैं, तो मैं आप से कहता हूं कि आपने इच्छा के बल का विचार ही नही किया है। आप अपने जीवन का एक क्षण भी इस अभ्यास में नहीं लगाते। ब्राह्मण नित्य प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या-वन्दन करते हैं। पर यह सन्ध्यावन्दन क्या है? इच्छाशक्ति का अभ्यास ही इसका उद्देश है।

अब संध्या-वन्दन में यह और जोड़ दीजिये कि मैं अपना जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। हमेशा

सुबह और शाम यह प्रार्थना कीजिये । दिन में आप कोई भी काम करते हों, इस बात को मत भूलिये । प्रार्थना की ऐसी शक्ति है कि संकटों के सब पहाड़ उसके सामने कट जाते हैं । बिना मतलब की प्रार्थना से कुछ फ़ायदा नहीं होता । ईश्वर अपने लिये प्रार्थना नहीं चाहता । इस बात को खूब समझ लीजिये । बिना किसी प्राप्तव्य की आशा के, प्रार्थना करने से कोई लाभ नहीं है । क्या आप यह समझते हैं कि आप अपनी प्रार्थना के बल से कर्म की गति को नहीं बदल सकते ? नित्य सुबह शाम स्वराज्य के लिये प्रार्थना कीजिये और मैं कहता हूं कि यदि आपने ऐसा किया तो एक या दो वर्ष में आपको अवश्य स्वराज्य प्राप्त हो जायगा ।

सातवां व्याख्यान ।

(यह व्याख्यान ता० १२ जनवरी १९१७ को लो० तिलक ने मि० नाना साहब की अध्यक्षता में अकोला में दिया था ।)

कोई आठ वर्ष का अर्सा हुआ कि मैंने आपके सामने व्याख्यान दिया था । मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि व्याख्यान के आरम्भ में मैंने आपके सूरत के कांग्रेस-विरोध (Congress split) पर बोलते हुए कहा था कि इस विरोध का कारण आदर्शों की भिन्नता (Divergence in ideals) नहीं है, पर कार्य करने की पद्धति की भिन्नता है । पूज्यवर दादाभाई नौरोजी ने राष्ट्रीय सभा के प्रेसिडेन्ट की हैसियत से राष्ट्र के सामने स्वराज्य का जो आदर्श रखा था, उस सामान्य आदर्श पर पहुँचने के मार्गों के विषय में मतभेद हुआ था । आदर्श सब का एक है, और दिन बदिन वह मतभेद भी मिटता जा रहा

है, जो कार्य करने की पद्धति के लिये हुआ था। अब हम सब मिल गये हैं और एक प्लेटफार्म पर कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े रह सकते हैं। गत कांग्रेस के समय यह शुभ संयोग आया था। उस अवसर पर मेरी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई थी। होमरूल का आदर्श कई कसौटियों पर चढ़ा और अब यह साबित हुआ है कि वह न्याययुक्त है, व्यावहारिक है और राजभक्तिपूर्ण है। अब यह बात साफ़ तौर से साबित होगई है कि एक का लाभ दूसरे का लाभ है और भारत के स्वराज्य में ब्रिटिश साम्राज्य की संरक्षता और दृढ़ता रही हुई है। अब स्वराज्य का आदर्श न्यायालय से भी न्याय-युक्त सिद्ध हुआ है। अब हमें दलीलों से यह साबित कर देना चाहिये कि हिन्दुस्तान को स्वराज्य की तुरन्त आवश्यकता है। यह तुरन्त आवश्यकता इस लिये है कि भारत की वर्तमान राज्य-पद्धति सदोष है और बिना स्वराज्य के वह नहीं सुधर सकती। हम स्वराज्य के हक़ पाने के लिये योग्य हैं। हमें अपने लिये स्वराज्य के हक़-न्याय सङ्गत सिद्ध करने में तथा वर्तमान राज्य पद्धति के दोष दिखलाने में कभी कभी कड़ी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है और इस से हमें कोपभाजन होना पड़ता है। हमारे विरोधी कहते हैं कि "तुम स्वराज्य मांगो पर नौकरशाही पर टीका मत करो क्योंकि इस से असन्तोष उत्पन्न होता है"। पर यह बात असम्भव है। यह बात ठीक वैसी ही है जैसा यह कहना है कि बिना चाबे फल खा जाओ। इस प्रकार का कहना, मानो आप को दूसरे ढङ्ग से फल खाने से मना करना है। होमरूल की मांग तब तक कैसे न्याय-सङ्गत हो सकती है जब तक कि यह न दिखला दिया जावे कि सरकार की आधुनिक शासन-पद्धति में दोष है, और बिना

होमरूल के वह सुधर नहीं सकती? और यह दोष बिना लाजवाब दलीलों के कैसे बताये जा सकते हैं। बस यही बात नौकरशाही को खारी लगती है। पर सौभाग्य से अब बम्बई हाई कोर्ट ने यह सवाल हमारे लिये हल कर दिया है। उसने यह साफ़ साफ़ कह दिया है कि सरकार की दृश्य कार्य-पद्धति पर टीका करना राज विद्रोह नहीं है। इस से आप जान सकते हैं कि होमरूल का आदर्श न्याययुक्त है। सरकार के कार्य पद्धति की टीका करना क़ानून के ख़िलाफ नहीं, पर अभी यह सवाल रहा ही हुआ है कि—

होमरूल क्या है?

होमरूल के इतिहास की यह तीसरी अवस्था है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि अन्त में कांग्रेस ने इस प्रश्न का संतोषकारक उत्तर दिया है। हिन्दू, मुसलमान, नर्मपक्ष और राष्ट्रीय पक्ष सब ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि होमरूल के माने प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य है, होमरूल के माने वह सरकार है जिस पर लोगों का ताबा हो।

इसका उद्देश्य क्या है?

इसके उद्देश्य भारत और इंगलैण्ड का सम्बन्ध तोड़ना नहीं है, इसका उद्देश्य यह नहीं है कि हम सम्राट् की शाही शक्ति को न मानें। यह दोनों के सम्बन्ध को दृढ़ करता है, हमें अपने विशुद्ध स्वार्थ के लिये भी इंग्लैण्ड की रक्षा चाहिये। आपको यह न भूलना चाहिये कि वह इंगलैण्ड का सम्बन्ध ही है तथा इंग्लैण्ड की दी हुई शिक्षा ही है, जिसने आपके हृदयों को महत्वाकांक्षाओं से भर दिया है।

आत्म-शासन (Self-Government), जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन है, जिसमें लोकमत की क़दर की जाती है और जिसमें थोड़े से नौकरों के फ़ायदे के लिये लोक मत की बेक़द्री नहीं की जाती। वॉइसराय के होने में तथा उनके अंग्रेज़ होने में हमें कोई हर्ज नहीं, बशर्ते कि वे लोगों के प्रतिनिधियों के कहने के अनुसार कार्य करें। हमारा पैसा हमारे लिये और हमारी मंजूरी से ख़र्च होना चाहिये, सरकारी नौकर प्रजा के नौकर होकर रहें न कि अभी जसे मालिक होकर। इस सवाल की अभी कोई ज़रूरत नहीं है कि कौंसिल में कितने मेम्बर बैठेंगे? अभी सवाल इस बात का है कि कौन्सिल के मेम्बरों में से लोगों के प्रतिनिधि अधिकांश रूप से रहेंगे या नहीं और वे सरकार की नीति को निश्चित् कर सकेंगे या नहीं?

आपके सामने बहुत लम्बा और थकावट पैदा करनेवाला रास्ता है। आपको धैर्य्य और दृढ़ता के साथ उसे पार करना चाहिये। ऊँचे पदार्थों को पाना मुश्किल काम है। जो चीज़ सहज में मिल जाती है, वह महान् नहीं। गीता में श्रीकृष्णजी ने कहा है कि 'सफलता दिलवाने वाली पाँच चीज़ों में एक दैव भी है'। दैव यह एक मौक़ा है जो ईश्वर आप को देता है चाहें तो आप उससे लाभ उठालें। दैव एक ऐसी चीज़ है, जिस पर मानवी प्रयत्न का ताबा नहीं चलता। यह हमें तब प्राप्त होता है, जब हमारे सौभाग्य के दिन होते हैं, और यह हमारा दोष होगा अगर ऐसे समय में हम इससे फ़ायदा न उठावें। अभी दैव आपके अनुकूल है। अभी आपको अपने दावे सामने लाना चाहिये। यह समय है। अगर आप इस वक्त, आगे बढ़ने में असफल हुए तो दुनियां आपके बहुत

आगे बढ़ जायगी और आप बहुत पीछे रह जावेंगे। आप वैसे ही ठेठ रह जावेंगे जैसा सड़क की बाजू पर उगनेवाला घास रहता है या मॉइल स्टोन रहता है।

अवसर से फ़ायदा उठाइये।

संसार में हर एक राष्ट्र इस अवसर का फ़ायदा उठाना चाहता है। उपनिवेश ज़ोरों से अपने हक़ों का दावा कर रहे हैं। वे अपनी स्कीमें तैयार कर रहे हैं और इंगलैंड पर उनका दबाव डाल रहे हैं। महायुद्ध के बाद एक बड़ा सुधार, बड़ा पुनर्सङ्गठन होने वाला है और उपनिवेश साम्राज्य की भावी व्यवस्था में न्यायोचित हिस्सा पाने के लिये अपने पैर आगे बढ़ा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि उन्होंने युद्ध में सहायता की है और इसलिये साम्राज्य के पुनर्सङ्गठन में इसका प्रतिफल उन्हें मिलना चाहिये। क्या हमने उपनिवेशों के बराबर साम्राज्य की सहायता न की? अगर उपनिवेशों को अपने इस प्रयत्न में सफलता हो गई तो हम उनकी आधीनता में लाये जावेंगे और वे हमारी स्वाधीनता को कुचल डालेंगे। अगर आप इस नाज़ुक मौक़े पर पीछे रहेंगें तो आप जैसा कमनसीब कोई न होगा। आपके सामने 'स्वराज्य' का आदर्श है। उसके लिये काम करने के वास्ते आपके पास क़ानूनी रास्ते (Legal Methods) हैं। आप यह भी जानते हैं कि 'स्वराज्य' का आदर्श क्या है? ईश्वर आप को यह अपूर्व अवसर देकर अपनी दिव्य विभूति से आपकी सहायता कर रहा है। अब यह आपके हाथ है कि आप सिर पर हाथ देकर बैठे रहते हैं या इस आदर्श पर पहुँचने के लिये तन मन से प्रयत्न करते हैं। इस सुनहले अवसर को खोकर आप अपना ही बुरा न कर लेंगे, पर अपने

भावी सन्तानों के हित पर भी कुठाराघात करने का अपराध करेंगे । आपके नाम से आपकी भावी सन्तान शर्मायगी और आगे आने वाली कई पुश्तें आपको कोसा करेंगी । धैर्य्य रख कर काम करते चले जाइये । लोहे को गरम हालत ही में कूटना अच्छा होता है । आपको विजय का गौरव प्राप्त होगा ।

आठवां व्याख्यान ।

सभापति महोदय, बहनों और भाइयो! आपने मेरा जैसा हार्दिक स्वागत किया तथा मुझे अभिनन्दनपत्र प्रदान किया, इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं । पर मैं आपसे साफ़ कह देना चाहता हूं कि मैं यहां सम्मान प्राप्त करने के लिये नहीं आया हूं । मैंने कभी इसकी आशा भी नहीं की । मैं यहां कुछ काम करने के लिये आया हूं और मैं आपसे स्वराज्य के सम्बन्ध में काम करने के लिये अनुरोध करने आया हूं । 'स्वराज्य' का अर्थ समझने के लिये प्रतिभा शक्ति की विशेष आवश्यकता नहीं है । यह मामूली संस्कृत शब्द है । इसका अर्थ "अपने घर का इन्तज़ाम करने के अधिकार प्राप्त करना," केवल यही है इसे ही होमरूल अर्थात् घर का शासन कहते हैं । यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है कि आप अपने घर का शासन करें । इसके लिये कोई दूसरा आदमी दावा नहीं कर सकता, अगर दावा कर सकता है तो तब ही तक जब तक कि आप नाबालिग़ हैं या पागल (Lunatic) हैं । मालिक के नाबालिग़ होने से 'कोर्ट ओफ वार्ड्स्' तुरन्त अपना अधिकार कर लेती है । इस कोर्ट के एजन्ट को मालिक की नाबालिग़ी में जो अधिकार दिये जाते हैं, मालिक के बालिग़ होने से वे अधिकार मालिक को दे दिये जाते हैं ।

अगर कोर्ट का एजेन्ट ऐसा नहीं करता है तो उसे इसके लिये उचित् कारण बतलाने पड़ते हैं कि मालिक अभी बालिग़ नहीं हुआ। हम सरकार से कहते हैं कि हम अब नाबालिग़ नहीं हैं, न हम पागल (Lunatics) ही हैं। अब हम अपना कारोबार देखने योग्य हैं। हमें अपने घर पर शासन करने का अधिकार है। हम अपने घर की नीति निश्चित् करना चाहते हैं। होमरूल की माँग नयी नहीं है। कांग्रेस और देश की छोटी बड़ी सब संस्थाएं होमरूल मांग रही हैं। यह कल्पना हमारे लिये बिलकुल नयी नहीं है। हमारे भारत-वर्ष में प्राचीन काल में ग्राम पंचायतें थी और राजराजेश्वर को सलाह देने के लिये पंडितों तथा वृद्धों के मण्डल थे और भी इसी प्रकार की कई संस्थाएँ थीं। क़ानून के मामले में राजा को अन्तिम अधिकार प्राप्त न था। उसे भी श्रुतिस्मृति में पारंगत और नीतिमान पुरुषों से इस मामले में सलाह लेनी पड़ती थी। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। पण्डितों और बुद्धिमान सज्जनों की सहायता से राजा लोग क़ानून के अधिकार को काम में लाते थे। शास्त्रों में 'स्वराज्य' 'विराज्य' शब्द मिलते हैं। आज कल स्वराज्य और होमरूल का अर्थ नियमित है। आज का स्वराज्य साम्राज्य के अन्तर्गत है, स्वतन्त्र नहीं। इस शब्द के लिये हमारे विरोधियों ने कई झूँठी सच्ची बातें प्रकाशित की हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि कई स्वराज्य वादियों पर मुकद्दमे चले। अब लखनऊ की कांग्रेस ने स्वराज्य के अर्थ को खूब अच्छी तरह समझ लिया है। अब संशय और झूँठी सच्ची बातें बनाने के लिये कोई जगह ही नहीं रही है। कांग्रेस के प्रस्ताव में जो स्वराज्य अथित किया गया है, अब आप उसके लिये खुशी से बोल

सकते हैं या आन्दोलन कर सकते हैं। इसमें कोई राजविद्रोह नहीं है। हाईकोर्ट ने इसमें कोई राजविद्रोह नहीं देखा। अब हमारा रास्ता साफ़ है। रास्ते की कठिनाइयाँ हटा दी गई हैं। हममें से प्रत्येक जन, चाहे वह हिन्दू हो, या मुसलमान, माडरेट हो या नेशनेलिस्ट, इसके लिये अपनी शक्तिभर ज़ोर से आवाज़ उठा सकता है। हमारे विरोधी कहते हैं कि हम इसके लिये योग्य नहीं हैं। पर यह बात सच नहीं है। जो आदमी बालिग़ है, वह अपने घर का कारोबार चलाने को योग्य है। शुरू शुरू में हम ग़लती कर सकते हैं, पर संसार में ऐसा कोन पूर्ण प्राणी है, जिसके हाथ से ग़लतियां नहीं होतीं। बड़े बड़े आदमी ग़लती करते हैं। हम ग़लती करने का अधिकार भी चाहते हैं हम ग़लती करेंगे और हम ही उसे सुधारेंगे। बड़े बड़े अवतार तक ग़लती करते हैं। सरकार हमारी योग्यता का-हमारी लायक़ी का-कोई पैमाना (standard) क़ायम नहीं करती। अगर वह कोई पैमाना क़ायम करदे तो हम उसके लिये प्रयत्न करें और यह दिखलावें कि हम लायक हैं या नहीं। जो लोग हम से यह कहते हैं कि तुम पहले योग्य हो जाओ, फिर तुम्हें स्वराज्य मिल जायगा, वे हमें स्वराज्य देना नहीं चाहते। इन लोगों की यह तर्क ठीक वैसी ही है जैसा यह कहना कि पहले तैरना सीखो और फिर पानी में पैर रखो। लखनऊ के कांग्रेस के प्रस्तावों में यह भी एक प्रस्ताव है कि 'स्वराज्य' शीघ्र मिलना चाहिये। हमारे विरोधी कहते हैं कि इस समय सरकार को मत सताओ। वे हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि यह स्वराज्य मांगने का समय नहीं है। इस पर मेरा जवाब यह है कि अपनी मांग (Demand) को ठीक तरह से सामने रखने

का यही उपयुक्त अवसर है उपनिवेश भी यही कर रहे हैं, फिर हम क्यों न अपने अधिकार मांगे? साम्राज्य सरकार की नीति बदलने वाली है। शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने वाले हैं। फिर हम क्यों न जागें और अपने स्वार्थों की रक्षा करें। यह काम दूसरा कौन करेगा? हमें इस समय सोना नहीं चाहिये। हमें अपने उद्देश की सिद्धि के लिये काम करते रहना चाहिये।

जान पड़ता है कि ईश्वर हमें सहायता कर रहा है; क्योंकि यह स्थिति हमारे प्रयत्नों का फल नहीं है। वक्त हमारे लिये अनुकूल है। जब ईश्वर हमारी सहायता पर है, तब हम क्यों न प्रयत्न करें! याद रखिये अगर हमने यह अवसर खो दिया तो ऐसा अवसर हमें एक सदी तक और नहीं मिलेगा। उपनिवेश वासियों ने यह बात समझली है और वे इस वक्त साम्राज्य के मामलों में अपने सहयोग के लिये आवाज़ उठा रहे हैं। इस तुलना में हमारी माँग कम है। हम केवल आत्म-शासन के हक़ चाहते हैं। सन् १९०६ में दादा भाई नौरोजी ने कांग्रेस के प्लेटफार्म पर प्रगट किया था कि स्वराज्य हमारा अन्तिम ध्येय है। अभी हम इसी जन्मसिद्ध अधिकार को मांग रहे हैं। लखनऊ में सब मतों के लोगों ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में इसे मांगा है। यह इस कार्य के लिये सब से अच्छा अवसर है। हमें लगातार काम करते हुए चला जाना चाहिये। आपको मार्ग की कठिनाइयों से बिलकुल घबराना या हतोत्साह न होना चाहिये। ये कठिनाइयां आवेंगी और हमें उन्हें पार करना होगा।

हमारे वेदान्त में कहा है कि इस संसार में सुख बहुत कम है। यह दुःखों का समुद्र है। यह संसार ऐसा ही है।

इसके लिये कोई इलाज नहीं। मैं अपने मार्ग से आने वाले भय को देख रहा हूं। बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड सिन्डेन्हेम ने "नाइन्टींथ सेंचुरी" में एक लेख लिख कर सरकार से कहा है कि वह यह प्रकट कर दे कि वह अब भारतवासियों को कोई विशेष सुधार नहीं देना चाहती, जितने दिये गये हैं, उतने ही काफ़ी हैं। लॉर्ड सिन्डेन्हेम भारतवासियों का मुँह बन्द करना चाहता है। यह एक दया करने योग्य बात है कि लॉर्ड सिन्डेन्हेम को मनुष्य प्रकृति का इतना अज्ञान है। कई गोरे पत्र भी यही रोना रो रहे हैं। शायद यह सरकार की भावी नीति का दिग्दर्शन हो।

कुछ भी हो, एक बात निश्चित् है। वह यह है कि हमारे सामने कार्य सहल नहीं है। हमें इसके लिये प्रचंड स्वार्थ-त्याग करना पड़ेगा। हमें इसके लिये मरने तक की भी आवश्यकता होगी। पर मरने के दो रास्ते हैं। एक वैध और दूसरा अवैध हमारी लड़ाई वैध है इस वास्ते आवश्यकता पड़ने पर हमारी मौत भी वैध होनी चाहिये। हम इसके लिये कभी बेक़ानूनी और अत्याचारी रास्तों को नहीं पकड़ेंगे। हम कभी अत्याचार (violence) नहीं करेंगे। हम क़ानून की सीमा में रहकर काम करेंगे। हमें सरकार से धैर्य और निर्भयता से कह देना चाहिये कि हम स्वराज्य चाहते हैं। सरकार को यह बात जतला देना चाहिये कि सारा राष्ट्र स्वराज्य मांग रहा है। इस में पैर पीछे हटाने की ज़रूरत नहीं। स्वराज्य हमारा हक़ है मैं यहां तक कहूंगा कि यह हमारा धर्म है। आप हमसे वैसेही होमरूल को जुदा नहीं कर सकते, जैसा अग्नि से उष्णता को नहीं जुदा कर सकते। इन दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है। आप अपने विचारों को साफ़ कर ली-

जिये। अपने प्रयत्नों को बिलकुल वैध कर लीजिये। मुझे पूरा विश्वास है, आपको ज़रूर सफलता होगी। आप को निराश न होना पड़ेगा। हिम्मत बहादुर हूजिये ईश्वर आपके साथ है। याद रखिये ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं।

नवां व्याख्यान।

(यह व्याख्यान लो० तिलक ने नासिक कॉन्फरेन्स में सन् १३-५-१७ में दिया था।)

सभापति महाशय और सज्जनो ? अभी बेरिस्टर जयकर ने अपने भाषण में कहा था कि " पहले नवयुवक और पीछे वृद्ध " पर मुझे उनके ये विचार बिलकुल मान्य नहीं है। मैं यद्यपि शरीर से बुड्ढा हूं, पर उत्साह में बिलकुल नवयुवक हूं। अपनी विचार शक्ति की बाढ़ को रुकी हुई मान लेना, मानो यह प्रकट कर देना है कि मुझे इस प्रस्ताव पर बोलने का अधिकार ही नहीं है। जो कुछ आज मैं बोलने वाला हूं, वह सदा सर्वदा ही ताजा बना रहेगा। शरीर बुड्ढा हो सकता है—वह छीज सकता है—नाश हो सकता है, पर आत्मा अमर है। इसी तरह होमरूल की चहल पहल में कभी कभी कमी मालूम हो सकती है, पर इस चहल पहल के पीछे जो स्वाधीनता की आत्मा रही हुई है वह नित्य है, अविनाशी है और हमें स्वाधीनता दिलाने वाली है। आत्मा परमात्मा है और मन तब तक शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि वह ईश्वर में न मिल जावे। एक शरीर के जीर्ण हो जाने पर आत्मा दूसरा शरीर धारण करती है। यह बात

गीता में कही गई है। यह तत्वज्ञान बहुत पुराना है। स्वाधीनता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। जब तक ये भाव मुझ में जागृत हैं, तब तक मैं बुड्ढा नहीं हूं। आत्मा को न तो शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है न पानी भिगो सकता है, न हवा सुखा सकती है। मैं आगे चल कर यह भी कहूंगा कि

"नैनं दहति सी० आई० डी"

अर्थात् न इसे सी० आई० डी० जला सकता है। मैं पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट को जो कि मेरे सामने बैठे हुए हैं और कलेक्टर साहब को, जिन्हें निमन्त्रण दिया गया था और सरकार के लेखक को जो कि अस्तीने चढ़ा कर रिपोर्ट ले रहे हैं, यही तत्व समझाना चाहता हूं। यह तत्व कभी नाश नहीं हो सकता। हम होमरूल मांगते हैं और हमें वह मिलना ही चाहिये। जिस शास्त्र का अन्त स्वराज्य में होता है, वही राजकीय नीतिशास्त्र है और जिसका अन्त गुलामी में होता है वह राजनीति नहीं है। आप में आत्मा है और मैं उसे जगाना चाहता हूं। राजनीति देश का वेदान्त है। मैं उस पड़दे को फाड़ डालना चाहता हूं जो मूर्ख और स्वार्थी लोगों ने बीच में लगा रखा है। राजनीति विज्ञान के दो हिस्से हैं। पहला दैवी है और दूसरा राक्षसी। दूसरे हिस्से में राष्ट्र को गुलामी प्राप्त होती है। बेरिस्टर जयकर ने कहा कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सदा के लिये गुलामी में नहीं रख सकता। मैं उनसे एक क़दम आगे बढ़कर कहता हूं कि किसी राष्ट्र को यह हक़ नहीं है कि वह दूसरे राष्ट्र को गुलामी में रखे। किसी राष्ट्र को गुलामी में रखना ईश्वर की दृष्टि में पाप है। कुछ लोगों में यह साहस होता है कि वे उस बात को साफ़

तौर से ज़ाहिर कर देते हैं, जो उनके लिये नुक़सान कारक होती है और कुछ लोगों में यह साहस नहीं होता। इस तत्व को सिखाना ही राजकीय और धार्मिक शिक्षा का उद्देश है। राजकीय और धार्मिक शिक्षा जुदी नहीं हैं। ये दोनों एक ही हैं। परकीय शासन के कारण ये जुदी जुदी मालूम होती हैं। राजनीति विज्ञान में सब प्रकार के तत्व ज्ञान का समावेश हो जाता है। आप लोग स्वराज्य को भूल गये हैं। मैं आपको याद दिलाने के लिये आया हूं।

स्वराज्य का अर्थ कौन नहीं जानता? स्वराज्य को कौन नहीं चाहते? क्या आपको यह बात पसन्द होगी कि मैं आपके घर में घुस जाऊँ और रसोई घर पर अधिकार करलूं। अपने घर की व्यवस्था करने का हक़ मुझे ही होना चाहिये। पागलों और बच्चों ही को अपने घर की व्यवस्था करने का हक़ नहीं रहता है। क्या आप अपने हक़ नहीं चाहते? आप पागल नहीं हैं, आप बच्चे नहीं हैं, आप अपने कारोबार को—अपने हक़ों को—अच्छी तरह समझते हैं। आप स्वराज्य को भी समझते हैं। हमें कहा जाता है कि हम होम-रूल के लिये लायक नहीं हैं। सौ वर्ष हो चुके और ब्रिटिश शासन ने हमें लायक नहीं बनाया। अब हम खुद प्रयत्न करेंगे और योग्य बनेंगे। केवल झूठी वजह, धमकी, भय और लालच दिखला कर हमारी मांग का विरोध करने वाले चतुर और राजनीतिज्ञ लोग अंग्रेज़ों की राजनीति में धब्बा लगा रहे हैं। इंग्लैंड ने वर्तमान युद्ध क्यों प्रारम्भ किया? इंग्लैण्ड बेल्जियम की स्वतन्त्रता के लिये लड़ा न! जो इंग्लैण्ड बेल्जियम जैसे छोटे राज्य की रक्षा के लिये हिन्दुस्थान की सहायता से प्रयत्न कर रहा है, वह हमें कैसे कह सकता

है कि तुम होमरूल के लायक नहीं हो। जो लोग हममें दोष निकालते हैं, वे लोभी और स्वार्थी हैं। ये वो लोग हैं जो प्रत्यक्ष दयासागर परमात्मा में भी दोष निकाल सकते हैं। हमें किसी की पर्वाह न कर अपने राष्ट्र की आत्मा को बचाने के लिये कठिन परिश्रम करना चाहिये। अपने जन्मसिद्ध अधिकार की रक्षा करने ही में हमारे देश की भलाई रही हुई है। कांग्रेस ने होमरूल का प्रस्ताव पास कर दिया है। प्रान्तीय कांन्फरेन्स कांग्रेस की बच्ची है और उसे कांग्रेस को अपनी रक्षक स्वीकार करनी चाहिये। कांग्रेस रूपी पिता की आज्ञा पालन करने के लिये हमें श्रीरामचन्द्रजी का अनुकरण करना चाहिये। हमें चाहे जितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ें, बनवास भुगतना पड़े, मृत्यु तक का दुःख सहना पड़े पर हम इस प्रस्ताव को कार्य के रूप में परिणत कराने की कोशिस करेंगे। केवल तालियां बजा कर ही आप इस प्रस्ताव को पास मत कर डालिये, पर प्रतिज्ञा कीजिये कि हम इसके लिये काम करेंगे। हम होमरूल प्राप्त करने के लिये क़ानून की सीमा में रह कर प्रयत्न करने में कोई क़सर उठा न रखेंगे। ईश्वर की कृपा से इंग्लैण्ड का हमारे लिये अब कुछ मन बदला है। हमें भरोसा है कि हमारे प्रयत्न कभी असफल न होंगे। इंग्लैण्ड एक वक्त सोचता था कि वह अकेला सारे साम्राज्य की रक्षा कर सकेगा। अब उसको यह अभिमान नही रहा है। अब इंग्लैण्ड को यह मालूम होने लगा है कि उसे साम्राज्य के राज्य सङ्गठन में परिवर्तन करना चाहिये। लॉयड जार्ज ने खुले तौर से यह स्वीकार किया है कि इंग्लैण्ड हिन्दुस्थान की सहायता बिना चल नहीं सकता। राष्ट्र के लिये हज़ार वर्षों से जो विचार चले आ रहे थे, वे बिल-

कुल बदल गये हैं। अंग्रेज़ों को अब इस बात का अच्छी तरह पता चल गया है कि केवल उनकी बुद्धि ही काफ़ी नहीं है। फ्रान्स के रणक्षेत्र पर हिन्दुस्थानी सिपाहियों ने ब्रिटिश सिपाहियों की जानें बचाई हैं और उन्होंने अपनी बहादुरी के खूब जौहर दिखलाये हैं। जो एक वक्त हमें गुलाम समझते थे, अब वे हमें अपने भाई समझने लगे हैं। ईश्वर ने ये सब परिवर्तन किये हैं। हमें अंग्रेज़ों को दिखला देना चाहिये कि हम ३० करोड़ भारतवासी साम्राज्य के लिये जानें तक देने के लिये तैयार हैं और जब तक हम साथ हैं साम्राज्य की ओर कोई भी बुरी निगाह से नहीं देख सकता।

दसवां व्याख्यान।

(यह व्याख्यान लो० तिलक ने बा० मोतीलाल घोष के सभापतित्व में ता ७-१०-१७ को प्रयाग में दिया था)

हर एक आदमी जानता है कि होमरूल का क्या अर्थ है? होमरूल का अर्थ और कुछ नहीं, केवल यही है कि अपने घर का कारोबार अपने हाथ में रहे। बस यही होमरूल की सब से सरल व्याख्या है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि हम होमरूल क्यों चाहते हैं? यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस वक्त कुछ अन्य आदमी हमारे घर का कारोबार चला रहे हैं, तो अब हम चाहते हैं कि वह कारोबार हम अपने आप चलावें। इस बात के हम हक़दार हैं। अगर हम हक़दार नहीं हैं, यह बात दूसरे पक्ष को सिद्ध करना चाहिये। होमरूल शब्द नया नहीं है। होमरूल का अर्थ निश्चित् है और यद्यपि और लोगों का इसमें लाभ है कि वे

इसका ग़लत अर्थ करें, पर इसका ग़लत अर्थ हो नहीं सकता। हम लोग अपने राज्यकर्त्ताओं में परिवर्तन करना नहीं चाहते। इन्तज़ामकारों में करना चाहते हैं। मैं इन्तज़ामकारों (administraters) और राज्यकर्त्ताओं में (rulers) फ़र्क मानता हूं। अभी तक हम पर यह सिद्धान्त लादा जा रहा है कि यहां के इन्तज़ामकार, जो कि गवर्नमेन्ट ओफ़ इन्डिया के कानून के अनुसार चुने या नियुक्त किये जाते हैं वे ही यहां के राज्यकर्त्ता हैं। मेरा मत इससे विलकुल जुदा है। मेरे ख़याल में शासक राज्यकर्त्ताओं से जुदे हैं। शब्द के वास्तविक अर्थ में इन्तज़ामकार-शासक—राज्यकर्ता नहीं हैं। वे राजा के प्रतिनिधि हो सकते हैं, ख़ुद राजा नहीं हो सकते। हिन्दुस्थानी भी राजा के प्रतिनिधि हैं क्योंकि वे भी राजा की वैसी ही प्रजा हैं, जैसे कि ये इन्तज़ामकार हैं। प्रतिनिधि की हेसियत से इन दोनों का दर्जा समान है फिर इन अफ़सरों के दर्जे में ऐसी कौन सी वात है, जिस से वे कहते हैं कि वे ही सच्चे राज्य-कर्त्ता (rulers) हैं। इन लोगों को कुछ अधिकार पार्लमेन्ट के एक क़ानून द्वारा दिये गये हैं। उन्होंने ज़बरदस्ती उन्हें प्राप्त नहीं किया था। यदि पार्लमेन्ट एक दूसरा क़ानून पास कर दे और वह पहला क़ानून बदला जाकर वे अधिकार हिन्दुस्थानियों को दिये जावें, तो हिन्दुस्थानी वैसे हा हो जावें जैसे कि ये अधिकारी इस समय हैं यहीं होमरूल है और कुछ नहीं। होमरूल देने में सम्राट् में परिवर्तन नहीं होगा, इंग्लैण्ड और हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में कुछ भी फेर बदल न होगा, साम्राज्य और हिन्दुस्थान के नाते में इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा। तब इस में शिकायत करने की क्या वात है? केवल इतनी ही बात है कि कुछ लोग पद

गवाँ बैठेंगे तथा कुछ लोगों के व्यापार को हानि पहुँचेगी। हां, जिस मनुष्य के हाथ से दूसरे मनुष्य के हाथ में अधिकार जायगा, वह नाराज़ होगा और जिसे अधिकार प्राप्त होगा उसे लाभ होगा। यह स्वाभाविक बात है। मुझे विश्वास नहीं कि इन बातों से कोई भी अंग्रेज़ अपना कर्त्तव्य करने से विमुख होगा।

दस या पन्द्रह वर्ष के पहले स्वराज्य पर बात करना भी राजविद्रोह समझा जाता था। लोग और यहां तक कि मैं भी स्वराज्य पर बात चीत करने से डरता था। पर अब यह बात न्यायाधीशों ने मंजूर करली है कि हिन्दुस्थान जैसे पराधीन देश के लोगों के लिये होमरूल का मांगना न्याय विरुद्ध नहीं है। यह लोगों की न्यायोचित आकांक्षा है। दस वर्ष के झगड़े के बाद होमरूल के लिये यह दुराग्रह (prejudice) हटा। अब हम अपनी इस न्यायोचित आकांक्षा को खुली तौर से प्रगट कर सकते हैं। वाइसराय, ब्रिटिश प्रधान मन्त्री, ब्रिटिश राष्ट्र यहां तक कि नौकरशाही भी इस विषय में हम से सहमत हो गई है। अब बाक़ी क्या रहा है? इन सबों ने कहा है कि यह बहुत अच्छी आकांक्षा है, पर इस के लिये अभी समय चाहिये। वे कहते हैं कि इसकी सिद्धि के लिये अभी सादियों की ज़रूरत है। अपनी बात की पुष्टि में वे उपनिवेशों की नज़ीर देते हैं। जिन्होंने पचास या साठ वर्षों में स्वराज्य प्राप्त किया है, पर हिन्दुस्थान तो सौ बर्षों से शासन होता आ रहा है, मगर उसे अभी तक स्वराज्य नहीं मिला। शायद नौकरशाही ने इस के लिये कोई समय मुक़र्रर कर दिया हो। नौकरशाही कहती है कि स्वराज्य अभी दूर है। वह दृष्टि में नहीं है। मैं कहूँगा कि यह बिलकुल ख़ुदगर्ज़ ख़याल

है। वह कौन सी बाधा है जो युद्ध के बाद, जब कि सारे साम्राज्य का पुनर्सङ्गठन होगा, हमें स्वराज्य प्राप्त करने से रोकती है? इस वक्त हिन्दुस्थान और कुछ नहीं वह साम्राज्य के गले में बँधा हुआ पत्थर सा है। हम जानते हैं कि गत् सौ वर्षों से किन तत्वों पर नौकरशाही शासन कर रही है। हमारे राष्ट्र में पहले आत्म-शासन था। हम भारतवासी सेना सङ्गठन करना जानते थे, न्याय करना तथा क़ायदे क़ानून बनाना जानते थे। अब नौकरशाही कहती है कि हम इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे। इसकी ज़िम्मेदारी किस पर है। हिन्दुस्थानियों पर नहीं। जब ये लोग यहां आये तब इन की पहली चिन्ता यहां की अशान्ति दूर करनी थी मैं इस के लिये इनकी शोभा करता हूं। पर यह उन्होंने कैसे किया? उन्होंने भारतवासियों को निःशस्त्र कर दिया। दूसरी बात यह कि सब बड़े बड़े पद अपने लिये रक्षित कर लिये। फिर वैज्ञानिक उन्नति रोकी और इस तरह यहां के उद्योग धन्धे नष्ट हो गये। इस पर भी वे कहते हैं कि हमने शान्ति स्थापित की। यह बात सच है कि उन्होंने शान्ति स्थापित की, पर केवल इसी बात में तो उनके कर्त्तव्य की इति श्री नहीं हो जाती। यह आगे की तरक्की के लिये प्रारम्भ की स्थिति मात्र थी। उन्होंने शान्ति स्थापित की, उन्होंने हमारे लिये रेलवे निकाली, तार खोले और इसके लिये उनकी शोभा करनी चाहिये पर उसने ऐसा कोई काम नहीं किया जिस में हमारी राष्ट्रीय भावना का विकाश हो। उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे हम अपने पैरों पर खड़े रहने में समर्थ हो जावें। इसका नतीजा क्या निकला? जब साम्राज्य के नाम पर लोगों को शस्त्र उठाने के लिये आह्वान दिया गया तब

बहुत ही कम लोग इस स्वयं सेवा के लिये तैयार हुए। वह कौन सा कारण है जिसने इन्हें साम्राज्य को अपनी औक़ात के मुताबिक़ मदद करने में असमर्थ किया। इसका कारण नौकरशाही की शासन पद्धति है। नौकरशाही ने इस देश को इस ढङ्ग से शासित किया कि जब तक इस देश की शासन पद्धति में सुधार न किया जावे, तब तक साम्राज्य को इस देश से विशेष शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इसी विचार से प्रेरित होकर कितने ही अंग्रेज़ मुत्सद्दी अब कहने लगे हैं कि महायुद्ध के बाद भारत की शासन—पद्धति में सुधार किया जाना चाहिये।

मि० दादा भाई नौरोजी के वक्त से लगा कर अब तक हिन्दुस्थानी यह चिल्लाहट मचा रहे हैं कि हम शासन की शक्ति से विहीन किये गये हैं, और वह शक्ति अब हमें वापिस मिलनी चाहिये। अब ब्रिटिश प्रजातन्त्र सरकार ने यह साफ़ तौर से देख लिया है कि भारतवासियों की इस चिल्लाहट में—इस आवाज़ के पीछे शक्ति रही हुई है और वह अब हमारी शिकायत सुनने के लिये राज़ी है। प्रश्न इतना ही है कि किसका कहना माना जायगा? नौकरशाही का या हिन्दुस्थानियों का। एक जज हैं जिन्होंने सूचना दी है कि वे हिन्दुस्थान आ रहे हैं।और हिन्दुस्थानियों का जो कुछ कहना है, वे उसे सुनेंगे। इस लिये हम लोगों को अपने प्रांत पत्तियों से ज़्यादा ज़ोर से मांग करनी चाहिये। यही इस वक्त हमारा कर्त्तव्य है। हमें उन को विश्वास करा देना चाहिये कि हम लोगों के ख़िलाफ़ जितनी दलीलें दी जाती हैं, वे सब पक्षपात पूर्ण हैं। सब से बड़ा काम जो इस समय हमारे सामने है, वह यह है कि लोगों को यह समझावें कि होमरूल क्या

है? आप लोगों को होमरूल प्राप्त करने के लिये भर सक कोशिश करनी चाहिये। आप लोगों को जागना चाहिये। अगर आप भरसक प्रयत्न करेंगे तो एक या दो वर्ष के भीतर समग्र नहीं तो थोड़ा बहुत स्वराज्य का हिस्सा हमें मिल ही जायगा। हम भी एक दम से होमरूल नहीं चाहते। हम इस का वास्तविक रूप में आरम्भ चाहते हैं। मि० मॉंटेग्यू जब यहां आवेंगे तब वे आपकी आकांक्षा के विषय में आप के नेताओं से बात चीत करेंगे, और मेरा विश्वास है आप अपने नेताओं की पूरी सहायता करेंगे। अगर ऐसा हुआ तो मि० मॉंटेग्यू ब्रिटिश जनता के पास आप का संदेशा ले जावेंगे और अपने स्थान के अधिकार से उसकी पुष्टि करेंगे।

ग्यारवां व्याख्यान।

(यह व्याख्यान लोकमान्य तिलक ने प्रयाग के होमरूल लीग भवन में ता० ८ अक्टूबर १६१७ को माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में दिया था।)

हमारे होमरूल के खिलाफ़ एक दलील यह रखी जाती है कि अगर हमें होमरूल मिल जाय तो हम अंग्रेज़ों को भारत से निकाल देंगे। पर यह दलील बिलकुल झूठ है। हिन्दुस्थानी अंग्रेज़ों को चाहते हैं, उनकी संस्थाओं को चाहते हैं, तथा उनकी स्वाधीनता तथा साम्राज्य को चाहते हैं। हिन्दुस्थानियों का कहना केवल यही है कि हिन्दुस्थान के भीतरी कारोबार पर हमारा अधिकार रहे। यह अधिकार अंग्रेज़ों को इंग्लैंड में है—उपनिवेशों में है और इस अधिकार के लिये वे चाहे जो करने के लिये तैयार रहते हैं। पर कुछ लोग

हिन्दुस्थानियों को ये अधिकार देने के लिये इनकार करते हैं। वे कौन लोग हैं, जिन्होंने हिन्दुस्थानियों के लिये यह अफ़वाह उड़ाई है कि वे अंग्रेज़ों को निकालना चाहते हैं और यह अफ़वाह किस लिये उड़ाई गई है? इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। शायद इस देश के लोग इसे समझते हैं, पर उनका यह कर्त्तव्य है कि वे ब्रिटिश जनता को भी यह बात समझा दें। वे लोग, जिनके हाथ में इस वक्त शक्ति है, ख़याल करते हैं कि हिन्दुस्थानी लोग अपना शासन आप करने के लिये अपात्र हैं। पर वे हिन्दुस्थानियों से यह नहीं कहते कि उन में स्वराज्य की पात्रता कब तक आ जायगी। वे इसके लिये समय की कोई मर्यादा नहीं बाँधते। एक वक्त यह भी कहा जाता था कि एशियाई राष्ट्र ही स्वराज्य के लिये योग्य नहीं है। पर अब यह बात नहीं कही जाती। अब तो वे कहते हैं कि हिन्दुस्थानी स्वराज्य के योग्य नहीं हैं। अगर हिन्दुस्तानी लोग इस का सबब पूछते हैं तो उन्हें जवाब मिलता है कि पहले कभी उन्होंने स्वराज्य नहीं भोगा था। इस के अलावा नौकरशाही कहती है कि हिन्दुस्थानी अधिकांश अशिक्षित हैं। उन में जाति पांति के बहुत भेद हैं। वे आपस में बहुत लड़ते झगड़ते रहते हैं। इन सब बातों में समतोलता रखने के लिये अंग्रेज़ इन्तज़ामकारों ही की ज़रूरत है। हिन्दुस्थानियों की योग्यता के विषय में मैं कल के व्याख्यान में विवेचन कर चुका हूं। इस लिये आज इस पर विशेष कहने की ज़रूरत नहीं। अयोग्यता क्या है? क्या वे यह कहना चाहते हैं कि ब्रिटिश के आने के पहले हिन्दुस्थान में शान्ति का शासन नहीं था? अकबर के विषय में आप क्या कहेंगे? क्या वह ख़राब शासक था? कोई भी अंग्रेज़ यह

बात नहीं कह सकता। हिन्दू शासन की ओर देखिये। अशोक गुप्त और राजपूतों के साम्राज्य की ओर निहारिये। कोई इतिहास यह नहीं कह सकता कि ये सब साम्राज्य बिना किसी शासन-पद्धति ही के अपने राज्यों का इन्तज़ाम करते थे। हिन्दुस्थान में जर्मन तथा इटालियन साम्राज्य के मुकाबले के साम्राज्य थे। और वे शान्तिपूर्वक शासित किये जाते थे। जब हिन्दू, बौद्ध और मुसलमानी शासनों में शान्ति का राज्य था, तब यह कौन सा कारण है जो हमें अपने अधिकार के लिये नालायक बनाता है। हम में कोई मानसिक या शारीरिक अवगुण नहीं हैं जो हमें किसी साम्राज्य के शासन कार्य में हिस्सा लेने के लिये अयोग्य करते हैं। हम ने भूतकाल में भी अपनी योग्यता का परिचय दिया है और अवसर मिलने पर अब भी देने को तैयार हैं। हम पर अयोग्यता का आरोप वही लगाते हैं जो इस वक्त अधिकार के ठेकेदार बने हुए हैं। हर एक जगह, जहां पर लोग अपने ही हाथ में एक चीज़ को रखना चाहते हैं, यही विधान किया जाता है। ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भी यही विधान किया था। आप लोग, जिनके पूर्वजों ने बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित किये थे, तथा उन पर शासन किया था, इस विधान को नहीं मान सकते। हम पर अयोग्यता का आरोप वे ही रखते हैं, जिनका इस में कुछ स्वार्थ है। हिन्दुस्तानियों को अपनी योग्यता बतलाने के लिये बड़े बड़े पद नहीं दिये जाते। उन्हें केवल मातहत के पद ही दिये जाते हैं। क्योंकि मातहत विभागों में (Subordinate departments) हिन्दुस्थानियों को रखे सिवा काम ही नहीं चल सकता। हम लोग कांग्रेस की स्थापना से अब तक यह प्रयत्न करते आ रहे हैं कि बड़े बड़े जगहों की ठेकेदारी जो अभी

दूसरों के हाथ में है, वह न रहे । इस में हमें कुछ सफलता भी हुई है । अब कुछ ऐसी जगह जो पहले सिविल सर्विस के लिये रक्षित रखी हुई थीं, हिन्दुस्थानियों को मिलने लगी है । ज्युडीशियल विभाग में हाईकोर्ट के जज आदि की जगहें भी हिन्दुस्थानियों को मिलने लगी हैं । क्या इसका कोई विपरीत परिणाम हुआ है ? मैंने सरकार का ऐसा एक भी प्रस्ताव नहीं देखा जिस में यह कहा गया हो कि हिन्दुस्थानियों ने अपने अवसरों का दुरुपयोग किया है और वे अपनी योग्यता न बतला सके । इस के विपरीत ये प्रस्ताव देखे हैं कि कार्य-कारिणी कौंसिल में जो हिन्दुस्थानी मेम्बर रखे गये हैं, उन्होंने अपना काम बहुत ही अच्छी तरह से किया है । देशी राज्यों को देखिये वहां तमाम बड़े बड़े पदों पर हिन्दुस्थानी हैं । इन राज्यों के लिये ब्रिटिश रिपोर्ट्‌स क्या कहती है । इन रिपोर्टों में कहा जाता है कि इन राज्यों का शासन अच्छी तरह चल रहा है । ऐसी दशा में हिन्दुस्थानियों को बड़ी बड़ी जगहों से विहीन रखना और उन्हें यह कहना कि तुम अपना शासन करने के लिये योग्य नहीं हो, केवल जले पर निमक छिड़कना है । इस प्रकार के हीले हवाले से (jugglery) से काम नहीं चल सकता । ब्रिटिश प्रजातन्त्र भी इसे बरदाश्त नहीं कर सकती । यदि हम लोग इस वक्त अपने आशयों को ब्रिटिश जनता के सामने उपस्थित करें, तो वह अवश्य सुनेगी । अभी वह ऐसी स्थिति में है कि वह हमारी अवश्य सुनेगी । नीति और अनुभव हम लोगों के पक्ष में है, परन्तु केवल न्याय और सत्य ही संसार में सफलता नहीं देते । न्याय और सत्य के साथ साथ निरन्तर आन्दोलन की आवश्यकता है । इसके साथ साथ हमारा यह निश्चय हो जाना चाहिये कि हम अपने सत्य

उद्देश पर ज़रूर पहुंचेगें और अन्त में सत्य ही की विजय होगी। जो बात हम प्राप्त करना चाहते हैं, वह सत्य है। इस सत्य पर पहुंचने के लिये हमारा यह होमरूल का आन्दोलन है। स्वराज्य के विरुद्ध जो दूसरी दलील दी जाती है वह यह है कि अगर तुम्हें होमरूल दे दिया जाय तो अंग्रेज़ों के कुछ स्वार्थों पर पानी फिर जायगा। पर मि० जिन्ना ने कल आपको बतलाया है कि अंग्रेज़ों का स्वार्थ भारत से ही नहीं तमाम संसार से है। और क़ानूनी शब्दों में हम ऐसा भी कह सकते हैं कि इन अंग्रेज़ी स्वार्थों की उत्पत्ति हम हिन्दुस्थानियों की मर्ज़ी लिये बिना ही हुई है। जब उनके स्वार्थों की उत्पत्ति हुई, तब हम से कभी भी नहीं पूछा गया। और क़ानूनन तो यह कहना चाहिये कि वे आन्दोलन करने से रोके ही नहीं गये। हम समझते हैं कि अंग्रेज़ी स्वार्थ की रक्षा वहीं तक होनी चाहिये जहां तक कि न्याय और क़ानून का सम्बन्ध है। देश का जो क़ानून है वह ऐसा ही रहे। देश में जो दफ़्तर हैं वे भी इसी तरह बने रहेंगे। बेशक कुछ तबदीली होगी, लेकिन यह तबदीली उसी हद तक होगी जहां तक कि हमारा अधिकार है। हम क़ानून चाहते हैं। हम क़ानून के बिना कुछ नहीं कर सकते। अतः यह कहना कि अगर हिन्दुस्थानियों को स्वराज्य दे दिया जाय तो बिलकुल गोलमाल हो जायगा, यह महज़ नादानी है। हम क़ानून चाहते हैं, हम सब महकमें चाहते हैं, यहां तक कि खुफ़िया विभाग भी बना रहे। हम इतना ही अच्छा शासन चाहते हैं जितना कि आजकल है। हम कुशासन में फ़िसल जाना नहीं चाहते। हम तो यह चाहते हैं कि ये जो क़ानून और क़ायदे और तमाम महकमें हैं उनका अधिकार हमें हो। अभी कल ही मैंने 'पायो-

नियर' में आरा के दङ्गे का हाल पढ़ा। उस दङ्गे के दमन करने के जो ढङ्ग बताये गये थे, वे ये थे, कि हम गवर्नमेन्ट से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने कर्त्तव्य की ओर दृष्टि डाले अर्थात् लोगों पर सुशासन करे। यह कहने का क्या हमारा यह तात्पर्य है कि हम होमरूल के नीचे रह कर इस प्रकार के उपद्रव देखने के लिये तैयार हैं? कदापि नहीं। हम शान्ति चाहते हैं। हम ऐसी शासन-पद्धति का सङ्गठन किया चाहते हैं जो ऐसे उपद्रवों को टाल सकने और बन्द कर सकने में समर्थ हो सके, और वह भी जनता की सलाह लेकर, उसकी बिना सलाह के नहीं। नौकरी-चाकरी के सम्बन्ध में अगर अंग्रेज़ लोग नौकरी करना चाहेंगे तो हम लोग उन्हें नौकर रख लेंगे परन्तु उसी दशा में, अगर वे योग्य होंगे। और जो कुछ उन्हें वेतन दिया जायगा यदि उसे वे स्वीकार करेंगे। हम यह नहीं चाहते कि अंग्रेज़ कोई भारत से चला जाय। मैं यह भी जानता हूं कि रेलों में अंग्रेज़ों की पूंजी लगी हुई है लेकिन हमारी यह इच्छा नहीं कि हम रेलों को उखड़वा डालें और उन्हें लादकर इंग्लैंड वापिस भेज दें। हम रेलों का रहना लाज़िमी समझते हैं और मेरा विश्वास है कि अगर रेलवे विभाग में भारतीयों की अधिक संख्या रखी जाय तो उनका उत्तम प्रबन्ध हो जाय। होमरूल के नीचे रहकर उनमें परिवर्तन हो जायगा, परिवर्तन ख़राब न होगा वरन् वे और अधिक उपयोगी हो जाँयगी और किफ़ायत से चलाई जा सकेंगी। हम लोगों की यह मांग पूर्णतया गम्भीर और वैध है। सिर्फ़ यही देखने को बाक़ी है कि ब्रिटिश लोक सत्ता इसे मन्जूर करती है या नहीं। इस समय परमाश्यक बात यह है कि हमारे सम्बन्ध में एक अच्छा स्पष्ट वचन दे दिया जाय

जिससे ब्रिटिश जनता, जो साम्राज्य-सङ्गठन में परिवर्तन करना चाहती है पहले की अपेक्षा हमारे बारे में अधिक ग़ौर से विचार कर सकें। यह कुछ लोगों का स्वार्थ है जिसके कारण वे हमारी स्थिति को झूठे रूप में उपस्थित करते हैं। और लोगों को वरग़लाना और भ्रम में डालना चाहते हैं। ऐसा नहीं होने देना चाहिये। इस बारे में मैं कहूंगा कि स्वराज्य-सभाओं ने कांग्रेस कमेटियों की अपेक्षा अधिक कार्य किया है। कहा जाता है कि कांग्रेस के होते हुए भी स्वराज्य सभाओं की तरफ़दारी लेना कांग्रेस का विरोध करना है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना है कि बात ऐसी नहीं है। स्वराज्य सभा के ध्येय और मांगें वे ही हैं जो कि कांग्रेस की हैं। स्वराज्य-सभाओं की तरफ से यह बात स्पष्टतः प्रकट की जा चुकी है। हम लोग कांग्रेस की मांग से आगे नहीं बढ़ गये हैं। हां, मैं यह अवश्य कह सकता हूं कि गत वर्ष कांग्रेस द्वारा पास किये गये प्रस्ताव को ऊपर लाने के लिये स्वराज्य सभा ने एक औज़ार का काम दिया है। इस प्रकार कांग्रेस और स्वराज्य सभा के उद्देशों और मांगों में कोई अन्तर नहीं है। इसके बाद यह पूछा जाता है कि स्वराज्य सभाओं की स्थापना की ज़रूरत ही क्या थी? स्वराज्य सभाओं द्वारा किया गया काम अपने आप इसे कहे देता है। ये स्वराज्य सभाएँ लोगों को ज्ञान कराने और यह समझाने के लिये कि उनका अन्तिम लक्ष्य क्या है, स्थापित की गई हैं। अगर यह काम कांग्रेस द्वारा किया गया है तो मैं इसी क्षण स्वराज्य-सभा की मेम्बरी से इस्तीफ़ा देने के लिये तैयार हूं। कुछ लोग औरों की अपेक्षा अधिक उत्साह से काम करना चाहते थे। मैं समझता हूं कि हर एक को ऐसा कर सकने का हक़ है। वे किसी भी नाम से

छोटी छोटी सभाएँ खोल सकते थे। उद्देश सबों का एक ही है। मैंने यह चाहा कि वे सभाएँ, संस्थाएं या व्यक्तिगत रूप से स्वेच्छानुसार उस काम को कर सकें और नाम चाहे जितने और जैसे रखें। अगर उद्देश और ध्येय एक ही है तो नाम से कुछ हानि नहीं हो सकती। काम होना चाहिये, और प्रान्तों में अपने अपने प्रान्तों ही की भाषाओं द्वारा। लोगों में ज्ञान प्रचार का काम सिर्फ़ इसी तरह से किया जा सकता है एक ऐसा समय था जब 'होमरूल' शब्द आयलैंएड के से तरीक़ों के इख़्तियार किये जाने का सन्देह दिलाता था और वहां के उपद्रव की भी उपमायें इसके साथ जोड़ी जाती थीं। हम इस में कोई ऐसी बात नहीं पाते, क्योंकि उसका उन घटानाओं से कोई पूर्व-सम्बन्ध ही नहीं है। हम किसी ख़ास विशेषता को किसी ख़ास शब्द के साथ नहीं जोड़ सकते। शब्दों की गढ़न्त उन बातों के लिये क़ी गई है न कि उन बातों की गढ़न्त शब्दों के लिये। यह सब सिर्फ़ ज्ञान-प्रचार के काम के लिये किया गया था और हम जानते हैं कि ज्योंही ज्ञान-प्रचार का काम आरम्भ किया जायगा अधिकारियों में असन्तोष फैल जायगा, क्योंकि उस समय उन्हें यही दिखलाई पड़ेगा कि हम अपनी मांगों का दबाव उन पर डाल रहे हैं। हमें इस असन्तोष और अप्रसन्नता की परवाह नहीं करनी चाहिये। एक ऐसा समय था जब यह समझा जाता था कि हमें इस तरह पर काम करना चाहिये कि जिस से देश के शासकों की सहानुभूति भी साथ साथ प्राप्त होती जाय। वास्तव में सहानुभूति को प्राप्त करने की हम लोगों की इच्छा थी। परन्तु जब यह दिखलाई पड़ा कि इस ज्ञान-प्रचार के काम करने के साथ साथ विना अपने को दबाये उस सहानु-

भूति की प्राप्ति दुष्प्राप्य है तो फिर हमें उसकी परवाह भी नहीं। हम सब इस बात पर सहमत हैं कि हमें अपने अन्तिम लक्ष्य के स्वरूप में स्वराज्य मिल जाना चाहिये हमें इसी के लिये कोशिश करना चाहिये। अब प्रश्न यह उठता है कि इस की प्राप्ति के उपाय किस प्रकार किये जायँ? कुछ धीरे धीरे चलना चाहते थे और कुछ तेज़ी से। मैं नहीं समझता कि यह भी कोई झगड़े में झगड़ा है, जिस के कारण विरोधियों को हमारे बीच में मत-भेद दर्शाने का मौक़ा मिल सके। हमें कार्य-प्रणाली की तो बात ही नहीं करनी चाहिये। हर एक मनुष्य स्वयं अपने अपने उपायों द्वारा काम कर सकता है, बशर्ते कि वे नियम-बद्ध हों। हम सिर्फ़ यही चाहते हैं कि सब लोग कानून और नियमों के भीतर रहें, इन दोनों के बीच में मैं एक अन्तर मानता हूं। जब तक क़ानून बनाने की शक्ति हमारे हाथों में नहीं है और क़ानून कहलानेवाले क़ानून न्यायानुमोदित नहीं साबित होते, तब तक वे गुज़रे ज़माने के क़ानून समझे जांयगे। हम उनका पालन नहीं कर सकते। निष्क्रिय प्रतिरोध किसी बात का अन्त कर देने वाला है परन्तु वह स्वयं सफलता का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। निष्क्रिय प्रतिरोध का अर्थ यह है कि हम उसके द्वारा किसी क़ानून के मानने और न मानने के हानि लाभ की परख कर सकें। अगर इस परख में यह दिखलाई पड़े कि उसे (क़ानून के) न मानने में ही किसी ख़ास स्थिति के लिहाज़ से अधिक फ़ायदा है तो न्याय-बुद्धि सदा उसके करने के पक्ष की पुष्टि करेगी। यह एक बड़े उलझन का प्रश्न है और इतनी बड़ी सभा के बीच में इस का तस्फ़ीहा नहीं हो सकता। हम लोगों को इस प्रश्न को अपने नेताओं के विचारार्थ ही छोड़ देना चाहिये। पर हम लोगों को यह अवश्य समझ

लेना चाहिये कि निष्क्रिय प्रतिरोध के अर्थ क्या हैं? इस के माने उस दृढ़ विचार के हैं जिस के अनुसार किसी भी त्याग को करके अपने ध्येय की पूर्त्ति के लिये काम किया जा सकता है। अगर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति करनी ही है, और इस दशामें, हम कृत्रिम डरावने और अनुचित क़ानूनों के द्वारा धमकाये जाते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम इसका लड़ाई छोड़दें। स्वराज्य-सभाएँ यही बात सब पर प्रकट करना चाहती थीं। अगर हम निष्क्रिय प्रतिरोध का शब्द-प्रयोग नहीं करना चाहते तो हम इसे 'त्याग' के नाम से भी पुकार सकते हैं परन्तु दोनों के माने वेही होंगे जो अभी कहे जा चुके हैं। मैं अराजकता या क़ानून विरोधी शिक्षा नहीं दे रहा हूं वरन् मैं अपनी ध्येय-प्राप्ति के एक निश्चत् मार्ग की शिक्षा देता हूं। निष्क्रिय प्रतिरोध शान्त और नियम संगत है। क़ानून और नियम दोनों एक ही चीज़ नहीं हैं, यह बात इतिहासों से सिद्ध है। जब तक कोई सरकरी आज्ञा न्याय और नीति द्वारा अनुचित नहीं, और सार्वजनिक सम्मति द्वारा उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के नियमानुसार स्वीकृत एवं उपर्युक्त बातों से सहमत नहीं, तब तक वह क़ानूनी तो कही जा सकती है परन्तु नियम-बद्ध नहीं। यही अन्तर है जिसे मैं चाहता हूं कि आप सब बड़ी बारीकी के साथ जान लें। हम लोगों को 'क़ानूनी' और 'नियम-बद्ध' शब्दों को गड़बड़ा न देना चाहिये। इसीलिये मैं चाहता हूं कि आप सब लोग नियम-बद्धता की कड़ाई को मान लें और यह भी जान लें कि प्रत्येक क़ानून अपने पारिभाषिक शब्दार्थों में नियम-बद्ध नहीं हो सकता। हम लोगों को जनता में ज्ञान फैलाना चाहिये और इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि सच्चा राजनैतिक ध्येय उनके सामने

पेश किया जाय और उनकी न्याय-बुद्धि इस प्रकार जमाई जाय कि वे अपने उद्देशों की पूर्ति के लिये डावांडोल हुए बिना शान्ति और दृढ़ता के साथ काम करते जांय। हम सब के स्वराज्य-सभाओं में सम्मिलित होकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये और अगर हम ऐसा नहीं करते तो यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। हम लोगों को जागना चाहिये और उत्साह के साथ काम करना चहिये। अन्यथा हमारी आगामी सन्तान के लिये भी यह शुभ न होगा। हमें अपने ईश्वर, देश और भावी सन्तान के प्रति करने योग्य कर्तव्यों को करना चाहिये। एकता हमें दृढ़ता से पकड़नी चाहिये। अगर हम लोग इस प्रकार काम करते जांयगे तो कुछ ही वर्षों में हम सफल हो जायंगे। (हर्ष ध्वनि)

बारहवां व्याख्यान

ज़बरदस्ती भर्ती

(यह व्याख्यान लो० तिलक ने पूने में ता० २२ जून १६१८ को दिया था और इसी के सम्बन्ध में बम्बई सरकार ने आप का भाषण स्वातंत्र्य छीना था। इसका सारांश २८ वीं जून के "केसरी में" छपा था)।

ज़बर्दस्ती भरती के विषय का शिवाजी के उत्सव से अति निकट सम्बन्ध है। जब बादशाह औरंगज़ेब ने अपनी बड़ी भारी सेना के साथ महाराष्ट्र पर धावा किया था उस समय महाराष्ट्र की रक्षा का काम ऐसे सैनिकों के हाथ में नहीं था जो कि किराये के टट्टू हों या अपनी इच्छा के विरुद्ध

भरती किये गये हों। बीजापुर और गोलकुंडा के राजाओं और बादशाह औरङ्गज़ेब के पास ऐसे ही किराये के टट्टुओं की भारी सेना थी। पर शिवाजी के देश भक्ति से उत्साहित वीरों ने बहादुरी से उस भारी सेना का सामना किया। मरहठा वीरों की सेना में पचीस साठ हज़ार आदमी थे और इन सैनिकों ने देश भक्ति से उत्साहित होकर मातृभूमि की रक्षा करने के लिये अपनी इच्छा से सेना में नाम लिखाया था, और अपने ख़ुद के घोड़े ले गये थे। धानाजी और सन्ताजी ने राजाराम को जिंजी भेजने के बाद उसी सेना के बल पर मरहठा राज्य की रक्षा की। इस के बाद पेशवाओं ने अपने शासन काल में इस तरह की नागरिक सेना खड़ी करने की पद्धति छोड़ दी और वे भाड़े के टट्टुओं की तरह सैनिकों को वेतन देकर रखने लगे और यही पेशवाओं के पतन का एक कारण हुआ। अन्तिम बाजीराव के वक़्त के मरहठा लोग यह समझते थे कि बाजीराव ने अपना राज्य समर्पण करके सारे महाराष्ट्र को अंग्रेज़ों के हाथ सुपुर्द कर दिया। अगर उस वक़्त शिवाजी की तरह नागरिक सेना होती तो हर एक मनुष्य महाराष्ट्र की रक्षा इस लिये करता, क्योंकि बाजीराव को अपना राज्य दूसरों को सुपुर्द करने का कोई अधिकार नहीं था। ब्रिटिश गवर्नमेंटने पेशवाओं के पतन के बाद सरजामी सरदारों को पैंशन दे दी और सरकार ने भाड़े के टट्टुओं की सी फौज रखना शुरू किया। जैसा कि मि० खाडिल करने अपने व्याख्यान में बताया है कि सरकार ने फ़ौज में जंगली जातियों और सीमा प्रान्त के लोगों को भर्ती किया है सरकार की नीति यह है कि वह इसी तरह की सेना तथा विलायत से लाये हुए कप्तानों और कर्नलों से हिन्दुस्थान की रक्षा करना

चाहती है। वह सिपाही में सिर्फ़ यही गुण चाहता है कि बिना आनाकानी के हमेशा अफ़सरों का हुक्म पालन करे और नमक हलाल हो। यद्यपि यह बात सही है कि इस तरह की किराये की सेना बहुत ही कम काम देती है तो भी सरकार इसी तरह की सेना अब तक तैय्यार करती रही है क्योंकि उसे इस बात का डर है कि नागरिक सेना खड़ी करने से कहीं शक्ति न छिन जाय। सरकार कहती है कि हमें रुपया दो, सिपाही दो पर फ़ौज के उंचे पदों पर नियुक्त होने की इच्छा मत करो। सरकार शिक्षित लोगों को फ़ौज में भर्ती नहीं करना चाहती। परन्तु भगवान मनु कह गये हैं कि, "जो काम असंख्य मूर्ख नहीं कर सकते वह काम थोड़े ही बुद्धिमानों से पूरा हो सकता है"। सरकार हम से रंगरूटों को भर्ती में सहायता देने को तो कहती है पर वह प्रजा के साथ कोई रिआयत करने को तैय्यार नहीं है। सरकार हिन्दुस्थानियों को युरोपियनों के समान सैनिक पद नहीं देना चाहती। जब कि हालत ऐसी है तो यदि हम, लोगों से फ़ौज में भर्ती होने के लिये अपील करें तो कौन ऐसा है जो कि सरकार की स्वेच्छाचारिता को पुष्ट करने से लिये सेना में भर्ती होगा? यद्यपि यहां की सरकार को इस बात का— कि भाड़े के सैनिकों से देश की रक्षा होना नामुमकिन है— भरोसा कराना असम्भव है; पर विलायत के लोगों को इस की सचाई का विश्वास कराया जा सकता है और वे हमारे अनुकूल निर्णय करेंगे। यदि सैनिक अधिकारी वर्ग का प्राधान्य मिट जाय और लोगों के दिलों में यह बात जम जाय कि हम अपनी मातृभूमि के लिये लड़ रहे हैं तो हिन्दुस्थान में एक करोड़ सैनिकों की सेना खड़ी की जा

सकती है। हम कई दिनों से इस प्रकार की सेना खड़ी करने के लिये कहते आ रहे हैं, पर दुर्भाग्यवश अभी तक सरकार ने इस तरफ़ ध्यान नहीं दिया है।

विलायत के व्याख्यान

भारत क्या चाहता है?

(यह व्याख्यान लोकमान्य ने लंडन के केक्सटन हाल में दिया था। हज़ारों लोगों की भीड़ थी। विलायती पत्रों में इस की बड़ी प्रशंसा हुई थी)

लार्ड कर्ज़न ने यह सिद्ध किया है कि औसतन भारतवासी की वार्षिक आय २ पौंड यानी ३०) रुपये है। बहुत से सरकारी अधिकारियों का भी यही कहना है कि भारत के २१ करोड़ मनुष्यों में से ४ करोड़ मनुष्य रोज़ आधा पेट भोजन करते हैं। कपास, सूत, चाय, काफ़ी आदि व्यवसायों के बढ़ाने की ओर सरकार का पूर्ण ध्यान है; परन्तु नष्ट होनेवाले देशी उद्योग-धन्धों की रक्षा का कोई भी उपाय नहीं किया जाता। अबाध (निःशुल्क) वाणिज्य के नाम पर बम्बई के कपड़े के व्यापार के मार्ग में कठिनाइयां उपस्थित करने में भी सरकार ने कसर नहीं की है। गत एक शताब्दी से भारत पर ब्रिटिश शासन के होते हुए भी शिक्षितों की संख्या सैकड़े ७ से अधिक नही है; परन्तु जापान सिर्फ़ ३०-३५ वर्ष की चेष्टा ही से देश भर में शिक्षा-प्रचार करने में समर्थ हुआ है। कुछ वर्षों के पहिले देश में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा-पद्धति जारी करने के सम्बन्ध में भारतीय व्यवस्थापक कौंसिल में एक सदस्य
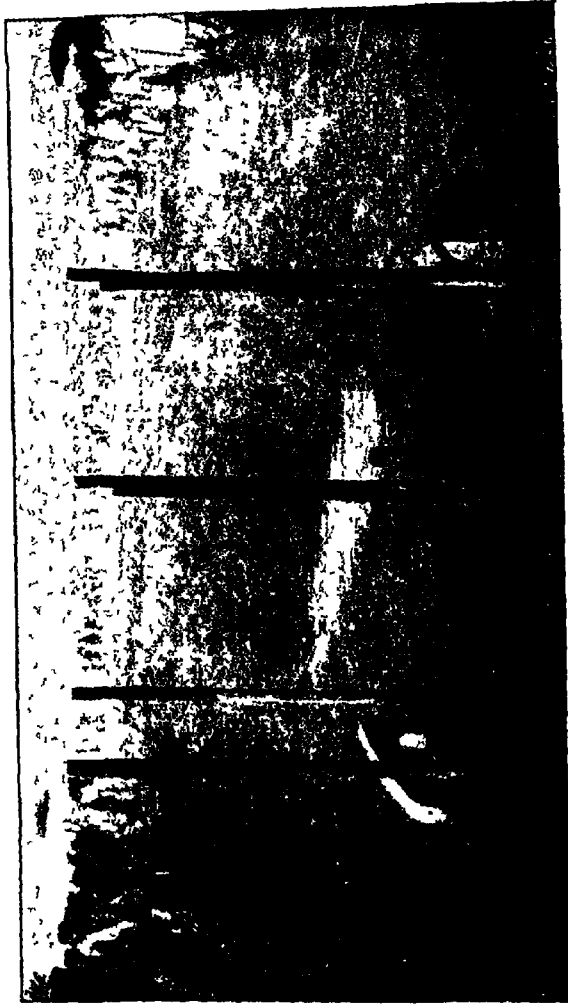
शान्ति-शय्या —समुद्र-तट पर लोकमान्य की चिता का अवशेष ।

ने—एक ब्राह्मण ने—एक बिल पेश किया था, परन्तु धनाभाव का कारण बताकर सरकारी बहुमत के ज़ोर पर यह बिल रद्द कर दिया गया। भारत के प्रति वार्षिक बजेट से सब को यह दिखाई देगा कि

पुलिस और फ़ौजी

विभाग सरकार के सब से अधिक प्रिय पात्र हैं। आबकारी विभाग भी सरकार का अत्यन्त प्रिय विभाग है। पाश्चात्य राष्ट्र मद्यपान त्यागने की चेष्टा कर रहे हैं किन्तु मद्यपान से निवृत्त भारत ब्रिटिश शासन में मद्यपान में आसक्त होना चाहता है। हिन्दू और इसलाम धर्म में मद्यपान का अत्यन्त निषेध किया गया है और अधिकांश लोग मद्यपान के विरुद्ध हैं परन्तु नौकरशाही यह उपदेश देने को तैयार है कि सम्राट् की भारतीय प्रजा को मद्यपान करने की पूर्ण स्वाधीनता है और उसके घर के नज़दीक दुकान रखाकर उसे अपना यह अधिकार कार्य में परिणत करने का हक़ है। यदि आबकारी की आय से भारत की साम्पत्तिक स्थिति का अन्दाज़ा लगाना हो तो यह कहने में हर्ज नहीं कि भारत सम्पत्ति के ढेरों से परिपूर्ण है और इसका श्रेय नौकरशाही को है। संसार की एक पंचमांश आबादी के देश की इस समय ऐसी ही अवस्था है। इसलिये यदि देशभर में असन्तोष फैला हो तो कोई आश्चर्य नहीं। क्या काल्पनिक दुःखों का चित्रपट खींचकर देश के आंदोलन-कारियों को जनता में उत्तेजना फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं है? ऐसी अवस्था के होते हुए भी महायुद्ध के अवसर पर जब उनकी राजभक्ति की परीक्षा का समय था, उस समय भारतवासियों ने कैसा बर्ताव किया? अपने सब मत भेदों

को भूल कर भारतवासियों ने सेना में १२॥ लाख सिपाही दिये। अन्य देशों में कभी न मिलनेवाली युद्ध-सामग्री भारत ने युद्ध के अवसर पर दी। दरिद्र होने पर भी युद्ध के खर्च के लिये भारत ने डेढ सौ करोड़ रुपये दिये हैं। यदि आरम्भ ही से भारत पर विश्वास रक्खा जाता और उसका व्यापार नष्ट न होने दिया जाता तो युद्ध के अवसर पर भारत

१ करोड़ सेना देता।

परन्तु वर्तमान परिस्थिति में भी गेलीपोली के रणक्षेत्र पर भारतीय सैनिक ही थे, सुएज़ की नहर की रक्षा भी उन्होंने ही की और जर्मन पूर्व अफ्रिका के जीतने में भी उन्होंने ही प्रधान भाग लिया। भारतवासियों की धारणा थी कि जर्मन सैनिक-शक्ति को नष्ट कर संसार में लोकसत्ता का प्रसार करने के लिये ही वे लड़ रहे हैं परन्तु आज उन्हें क्या अनुभव मिल रहा है? क्षणिक सन्धि पर हस्ताक्षर होते ही भारत की नौकरशाही ने गुप्त और एक तर्फ़ा प्रमाणों के आधार पर भारतीय कौंसिल में ऐसे बिल पेश किये, जिनकी कल्पना रूस की ज़ारशाही या जर्मनी और ऑस्ट्रिया की साम्राज्य शाहियों के मस्तक में भी नहीं आती। नरम और गरम, हिन्दू और मुसलमान, अमीर और गरीब, किसान और वकील आदि सब लोगों ने देश भर में प्रतिवाद सभाएं कर पहिले ही दायित्व शून्य नौकरशाही के हाथ में ऐसे अमर्यादित अधिकार दिये जाने का निषेध किया। कौंसिल के २८ भारतीय सदस्यों ने बिल की प्रत्येक पेशी के समय तीव्र विरोध किया, परन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ। बिल की अन्तिम पेशी के समय, बिल पास करने की प्रणाली से विरक्त होकर तिरस्कार से आठ सदस्य अनुपस्थित रहे और पक्ष में ३५ सरकारी और

विपक्ष में २० गैर सरकारी वोटों के बिल पास करने का यह हास्यास्पद प्रहसन समाप्त कर लिया गया। जिस दिन बिल पास हुआ उस दिन लोग अशौच की भांति रहे, प्रायः सभी शहरों और ग्रामों में दूकानें बन्द रख कर सब कारोबार स्थगित रक्खा गया।

महात्मा गांधी

ने सत्याग्रह की घोषणा की और सब स्थानों में जुलूस निकाले गये। इस आन्दोलन से हिन्दू-मुसलमानों का भ्रातृ भाव दृढ़ हुआ और सिक्ख लोग भी इसमें शरीक हुए। निहत्थे लोगों की इस भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सेना ने बन्दूकों से काम लिया और लाठी और ईंट-पत्थरों से काम लेने वाले लोगों पर वायुयानों से

बम बरसाकर

नौकरशाही ने अपने तामसी--बल का परिचय दिया। रौलट बिल सम्बन्धी इस शोचनीय घटना से इस समय भारत की कैसी दशा होगी इसकी कल्पना आप स्वयं कर सकते हैं। इस बिल ने भारतीय कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यों की दुर्बलता और मार्ले-मिण्टो सुधार-योजना की अनुपयोगिता को स्पष्ट कर दिया है। मार्ले साहब ने स्पष्ट रूप से कहा था कि हमारी कल्पना में भी नहीं आता कि भारत को उत्तरदायित्व पूर्ण शासन के अधिकार दिये जायंगे। कौंसिल में गैरसर्कारी सदस्यों की संख्या बढ़ाने का मार्ले साहब का यही उद्देश्य था, कि शासकों को उनके विचार मालूम हो और वे उन से शिक्षा ग्रहण करें।

परन्तु सरकारी सदस्यों के बहुमत से इस बिल को पास कर नौकरशाही ने मार्ले साहब के इस उद्देश्य पर हरताल फेर दिया है। नौकरशाही अपने कार्यों का समर्थन यह कह कर कर रही है कि भारत में बलवा हुआ है और भारतीय ब्रिटिश शासन खतरे में है। दूसरे शब्दों में ब्रिटिश जनता के प्रतिनिधि रूप में भारत का शासन करने वाले सभ्य संसार के सामने यह स्वीकार कर रहे हैं कि वे भारत का शासन

लाठी के ज़ोर के सिवा

करने में असमर्थ हैं। जर्मनी का "जिसकी लाठी उसकी भैंस" सिद्धान्त वाला दल मृत-प्राय हो गया है, परन्तु वह दल भारत में आज न्यायानुमोदित होना चाहता है। अब हम इस पर विचार करते हैं कि भारत की वर्तमान राजनैतिक अवस्था का सुधार करने में सुधार-योजना कहां तक समर्थ होगी। योजना रचयिताओं का पहिला सिद्धान्त यह है कि भारत की केन्द्रस्थ (भारतीय) सरकार के निरंकुश अधिकार बिलकुल कम न किये जायं। व्यवस्थापक कौंसिल में यद्यपि गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत रक्खा गया है तथापि वर्तमान कौंसिल के समान सरकारी बहुमत वाली कौंसिल आफ स्टेट का संगठन उसके ऊपर होने के कारण व्यवस्थापक कौंसिलों का मूल्य डिबेटिंग सोसाइटियों से अधिक नहीं। किसी भी बिल के कानूनी स्वरूप प्राप्त होने में इस कौंसिल की सम्मति आवश्यक होगी। शान्ति, व्यवस्था और स्वराज्य के नाम पर यदि वाइसराय कोई बिल पास कराना चाहें तो कौंसिल आफ स्टेट व्यवस्थापक कौंसिल द्वारा रद्द किये गये किसी भी बिल को पास कर ले सकती है।

यदि रौलट बिल के समान कोई बिल पास करना हो तो उसकी पूरी व्यवस्था इस योजना में रक्खी गई है। इस में आय व्यय और शासन-संचालन के विभागों पर लोक-मत का कोई अधिकार नहीं रक्खा गया है। यह कहना कि इन अधिकारों के सिवा हम तुम्हें स्वराज्य देते हैं

स्वराज्य का मज़ाक

करने के बराबर है। भारत—सरकार के हाथ में इसका पूर्ण अधिकार रक्खा गया है कि अपने अधीनस्थ विभागों में से किन २ विभागों का अधिकार किस समय प्रान्तिक सरकारों के हवाले किया जाय। अदालत में आये हुए वादी-प्रतिवादी में से किसी एक का बयान सुन कर उसी को विचार पति का अधिकार देने के बराबर ही यह व्यवस्था है।

प्रान्तिक शासन में भी पूरे उत्तरदायित्वपूर्ण स्वराज्य के अधिकार न देकर द्विसतात्मक अव्यवहार्य राज्य पद्धति स्थापित करने का संकल्प इस योजना मे किया गया है। ऐसे शासन-पद्धति से विभागों के अधिक खर्च के लिए जनता से रुपया वसूल करने का दोष सिर्फ मिनिस्टरों के माथे ही पर आने वाला है। यह शासन-पद्धति इसीलिये प्रचलित की जाने वाली है कि भारत को क्रम क्रम से स्वराज्य के अधिकार प्राप्त हों। सन् १८८१ ई० में मैसूर राज्य का शासनाधिकार भारतवासियों को दिया गया। उस समय लार्ड साल्सबरी या लार्ड इडेस्लं के माथे में विभागों का इस तरह का बँटवारा करने की कल्पना उत्पन्न नहीं हुई। इसी से मैसूर को आभ्यन्तरीण शासन का पूर्ण अधिकार दिया गया, परन्तु उससे मैसूर पर कोई विपत्ति नहीं आपड़ी। उस समय की कांन्सरवेटिव सरकार ने मैसूर जैसी शासन व्यव स्था

समग्र भारत में प्रचलित करने के लिए एक मसविदा भी पेश किया था परन्तु उसके हाथ से शासनाधिकार निकल जाने से यह योजना रद्दी में पड़ गई। उस समय की हालत के संबंध में मि० हाइफमैन ने कहा है कि तत्कालीन शासक और पेन्शनर एंग्लो-इण्डियन अत्यन्त प्रभावशाली थे और इंग्लैण्ड के मध्यम वर्ग के मनुष्य साम्राज्यशाही के मद से पागल हो गये थे। भारत को स्वराज्य के पूर्ण अधिकार देने की यह कल्पना ४० वर्ष की पुरानी है! महायुद्ध आरंभ होने के पहिले सन् १९११ में

लार्ड हार्डिञ्ज

ने अपने खरीते में पूर्ण प्रान्तिक स्वराज्य देने की सिफ़ारिश की थी।

मान्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड स्कीम का सविस्तर वर्णन कर उस पर टीका टिप्पणी करने की मेरी इच्छा नहीं है। आपको जो पुस्तिकाएं दी गई हैं, उनमें मान्टेगू चेम्सफ़ोर्ड और कांग्रेस-लीग योजना की तुलना की गई है। हमारी मांग पर जो आक्षेप किये जाते हैं उन्हीं के संबन्ध में मैं अब कुछ कहूंगा।

हम लोगों पर सब से बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि भारत का राजनैतिक आन्दोलन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध है। परन्तु यह बिलकुल निराधार है। इस तरह का आक्षेप करना निंद्य है और मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप ऐसे शब्दों पर तनिक भी विश्वास न करें। ब्रिटिश राज्य-पद्धति के इतिहास और ब्रिटिश जनता के स्वभाव के अध्ययन से भाषण-स्वातन्त्र्य, मुद्रण-स्वातन्त्र्य, उत्तरदायित्व पूर्ण

स्वराज्य आदि के प्रश्न भारतवासियों के सामने आये हैं और उन्हीं से हमें यह शिक्षा मिली है कि वैध आन्दोलन किस तरह करना चाहिये। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ही ने अपने व्याख्यानों द्वारा हमें यह बताया है कि हमारा

ध्येय क्या होना चाहिये

स्वर्गीय मि० ह्यूम, सर हेनरी काटन, सर डब्ल्यू० वेडरबर्न आदि सहृदय और दूरदर्शी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ आरंभ ही से हमारा पक्ष लेकर लड़ रहे थे और मि० बेसेन्ट और मि० हार्नीमैन (जिन्हें भारत सरकार ने देश निर्वासन का दंड दिया है और जो इंग्लैण्ड के मार्ग में हैं) जैसे महानुभाव आज भी हम लोगों की ओर से लड़ रहे हैं। उपनिवेशों के समान स्वराज्य मांगने के आन्दोलन को ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। यह आन्दोलन सिर्फ़

नौकरशाही की सत्ता

के विरुद्ध है मेरा विश्वास है कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति बेईमान न होकर भीतरी शासन में यदि हम स्वाधीनता मांगें तो आप हम लोगों को दोष न देंगे। इसके सिवा हम लोग उपनिवेशों के समान पूरे अधिकार भी नहीं मांगते। हम यह भी नहीं कहते कि सेना, नौ-सेना, पर राष्ट्रीय व्यवहार और देशी राजाओं से संबन्ध रखने वाले विभाग हमारे सुपुर्द किये जायँ। हम लोगों की मांग इतनी ही है कि भीतरी शासन का उत्तरदायित्व जनता को दिया जाय और वह भी २० अगस्त १६१७ वाली घोषणा के अनुसार ही है।

एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि विभाजित समाज पर स्वराज्य की ज़िम्मेदारी छोड़ना असम्भव है, परन्तु ऐसा

कहने वालों के ध्यान में यह नहीं आता कि यह जातिभेद बुरा हो या भला-३ हजार वर्षों से भारत में वर्तमान है और ऐसा होने पर भी अशोक, चन्द्रगुप्त, हर्ष, समुद्रगुप्त, आंध्र चालुक्य आदि साम्राज्यों की भारत में खूब उन्नति हुई। इन जातियों में यदि कोई बाहरी मनुष्य दस्तन्दाज़ी न करे तो जाति भेद के कारण स्वराज्य संचालन में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। सर जान रीस ने कहा है कि "दक्षिण भारत में जातिभेद का विचार अत्यन्त तीव्र है और ट्रावणकोर में तो बहुतेरी जातियों का समावेश है, इसपर भी बलवे के समय अथवा वर्तमान में दक्षिण भारत के अधिवासियों में असंतोष नहीं फैला है और यह कहना तो बिलकुल लचर है कि उच्च जातियां नीची जातियों पर जुल्म करती हैं। भारतीय नौकरशाही के समर्थक के मुहं से ये वाक्य निकले हैं, इससे आप समझ सकते हैं कि जातिभेद की दलील कितनी कमजोर है।

हमारे विरोधियों के अस्त्रों में सब से प्रधान अस्त्र-हिन्दू मुसलमानों की फूट का था, परन्तु दोनों दलों के नेताओं ने एकत्र होकर एकमत से स्वराज्य की योजना तैयार की और अब तो यह ऐक्य बढता ही जा रहा है, जिसको देखकर नौकर-शाही का यह अस्त्र मन्द हो गया है और उसका हृदय थर-थराने लगा है।

सैनिक-शासन से प्रजा-तन्त्रों की रक्षा होने के निमित्त विगत महा युद्ध में लाखों हिन्दुस्तानियों ने अपना जीवन समर्पण किया है। महायुद्ध के इस महापर्व समय सैकड़ों वर्ष से पराधीनता के पङ्क में पड़े हुए छोटे २ राष्ट्र स्वाधीन होकर सामने आये हैं। उन्हें क्रम २ से स्वराज्य के अधिकार प्राप्त कर अपनी योग्यता प्रतिपादित नहीं करनी पड़ी है। फ़िनलैण्ड

और पोलैण्ड के अधिवासी जुगोस्लाव, हिजाज के अरब अर्द्धसभ्य अर्मेनियन लोग भी स्वराज्य के योग्य हैं, ऐसा कहा जा रहा है। क्या आप समझते हैं कि भारतवासी इनसे कम योग्यता रखते हैं? क्या इसे हिन्दुस्थानी सुशिक्षित मान लेंगे? यदि ऐसा नहीं है तो आप लोगों का विचार सिर्फ शत्रु देशों के लिए ही

स्वभाग्य-निर्णय

का अधिकार लागू करने का तो नहीं है? न्याय और समान व्यवहार के लिये आप लोगों की कीर्ति बहुत दिन से है। मध्य और पूर्व यूरोप की पिछड़ी हुई जातियों को यह अधिकार देने का आप लोगों ने विचार किया है, फिर अपने साम्राज्य के एक राष्ट्र को यह अधिकार देने में क्या आप पीछे हटेंगे? क्या आप यह नहीं समझते कि एशिया खण्ड के दायित्व को निबाहने के लिये स्वायत्त और वैभवशाली भारत का आपको अधिक उपयोग होगा? क्या आपकी यह धारणा है कि संसार की एक पंचमांश जनता को निरंकुश शासन में रखकर संसार में

शान्ति का साम्राज्य

मज़बूत नींवपर स्थापित किया जा सकता है? क्या आप समझते हैं कि आयर्लैण्ड से सैकड़ों गुने बड़े देश को दूसरा आयर्लैण्ड बनाकर उसके आन्दोलन का सामना करने को आप समर्थ होंगे? यदि आप ऐसा नहीं समझते तो आपके एजन्टों द्वारा चलाई गई नौकरशाही की पद्धति बन्द करिये। भारत की दो प्रधान जातियों के प्रतिनिधियों द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार उन्हें अधिकार दीजिये। यदि कुछ

लोग कहें कि सुधार रूपी रोटी के कितने ही छोटे टुकड़े क्यों न दिये जायं वे संतुष्ट होंगे तो उनकी बातों में न फंसिये और ऐसी धारणा न होने दीजिये कि टुकड़े देकर ही हम

स्वराज्य की समस्या

हल करेंगे यह विश्वास रखिये कि बहुमत जो मांगेगा वही मांग नरम दल वाले भी करेंगे। बहुत से लोग इस डर से स्पष्ट बातें कहने का साहस नहीं करते कि अधिकारी नाराज होंगे और वे जितना देना चाहते हैं वह भी न देंगे। ऐसे लोग प्रायः सभी देशों में कम बेश होते ही हैं। जर्मन शासन के समय बेल्जियम में ऐसा कहने वाले कुछ फ्लेमिश लोग इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ही।

मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड योजना ठहर ठहर कर आगे बढ़ने वाली है। इस में जिस मार्ले-मिन्टो योजना पर कड़ी टीका की गई है, उसी की भांति कुछ दिन में यह भी असन्तोषजनक प्रमाणित होगी। संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि मान्टेगू चेम्सफ़ोर्ड योजना में यह दिखाया गया है कि भारत सरकार कितने अधिक अधिकार दे सकती है और कांग्रेस लीग की योजना से यह समझ सकते हैं कि

भारत की मांग

है क्या। ऐसी अवस्था में यह निर्णय करना ब्रिटिश वोटरों का कर्तव्य है कि नौकरशाही और जनता की मांग में से अधिक महत्व किसको देना चाहिये। आजकल की नौकरशाही आपकी एजण्ट है और आप उसे जैसी आज्ञा देंगे, उसका पालन उसे करना ही पड़ेगा। भारत में नौकरशाही को

बदल कर लोकशाही की स्थापना करने का महत्कार्य आप लोगों को करना है।

आप लोग अपनी जिम्मेदारी को समझकर उसे पूर्ण करने के लिये तैयार होंगे या नहीं? लार्ड डरहाम ने कैनाडा और सर हेनरी कैम्बेल बैनरमन ने दक्षिण आफ्रिका की समस्या जिन विचारों से हल कर डाली थी, उन्हीं विचारों से आपको भारत की समस्या हल करने के लिए धैर्य के साथ आगे बढ़ना पड़ेगा। क्या आप यह नहीं चाहते कि कैनाडा और दक्षिण आफ्रिका की तरह भारत भी साम्राज्य का एक सन्तुष्ट हिस्सेदार बना रहे? आप इस नीति का अनुसरण करेंगे कि 'विश्वास से विश्वास बढ़ता है' अथवा आशंका युक्त रह कर भारत की रक्षा का प्रबन्ध करने की फ़िक्र ही में लगे रहेंगे? महायुद्ध के समय आप लोगों ने

स्वाधीनता और न्याय

के जिन पवित्र सिद्धान्तों की घोषणा की है, उनका प्रयोग आप अपने साम्राज्य के अङ्गों के प्रति कैसा करते हैं, इस पर समस्त सुसभ्य संसार टकटकी लगाये बैठा है। इस विजय के समय ईश्वर आप को ऐसे मार्ग का अवलंबन करने की बुद्धि दे जिसमें आपके देश की शक्ति और सम्पत्ति बढ़े और भारत में

संतोष और शांति

स्थापित होकर वह भी संपत्तिशाली हो। आज समस्त संसार में नवयुग का आरंभ हुआ है और नये राष्ट्रों के संगठन की ओर समस्त संसार का लक्ष्य है। ऐसे अवसर पर उत्तर दायित्व शून्य नौकरशाही के विरुद्ध आन्दोलन करने में उदित

होने वाले भारतीय नवयुवकों की बौद्धिक शक्ति का उपयोग न होने देना चाहिये । आपको यह अवसर देना चाहिये कि भारत में सामाजिक उन्नति के जो प्रश्न उठ खड़े हुए हैं उनको हल करने की ओर उन्हें ध्यान देने का मौका मिले । आप लोग ऐसी चेष्टा करने का संकल्प करिये कि ब्रिटेन और भारत अखंड भ्रातृप्रेम से रहें और परस्पर अपने उच्चतम गुणों से लाभ उठावें । भारत की जो मांग है वह यही है । जब संसार के बड़े २ राजनीति-विशारद यह प्रमाणित करने वाले नवीन युग के आरंभ करने के प्रयत्न में लीन हैं कि निरंकुश शक्ति पर सत्य ही की विजय होती है, उस समय यह कौन कहेगा कि हमारी मांग वैध और हमारी योग्यता के अनुसार उपयुक्त नहीं है ?

हिन्दुस्थान और स्वयं निर्णय ।

(लण्डन की होमरूल लीग द्वारा प्रकाशित पत्र)

युद्ध की समाप्ति होकर पुनः शान्ति का राज्य प्रारम्भ हुआ है । युद्धकाल में जो हानि हुई, शान्ति के समय उद्योग द्वारा उसकी पूर्ति होनी चाहिए । संसार-चक्र में प्रारम्भ से ही यह नियम चला आ रहा है कि युद्ध करने वाले नाश किया करते हैं और उसकी पूर्ति शान्ति चाहने वाले किया करते है । किन्तु इस महायुद्ध में जो जन हानि और नाश हुआ है, उसका स्वरूप इतना भयङ्कर है कि अब मनुष्य मात्र को यह प्रबल इच्छा हो गई है कि भविष्य काल में कभी युद्ध न हो और हम दीर्घ काल तक शान्ति का सुख भोग सकें । हानि की पूर्ति के लिये कर आदि बातों का विचार शान्ति-परिषद् में अवश्य ही होगा,

किन्तु शान्ति-परिषद् का यह भी आवश्यक कर्तव्य है कि वह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इस प्रथा की जगह संसार भर में न्याय का साम्राज्य स्थापन कर के दीर्घकालिक शान्ति स्थापन करने की जो मनुष्य मात्र की इच्छा दौड़ रही है, उस का भी समाधान करे। शान्ति-परिषद् को इतना उच्च और पवित्र काम कभी भी सौंपा न गया था। इस काम में प्रेसिडेन्ट विलसन के कथनानुसार स्वार्थत्याग की अत्यन्त आवश्कता है। वे कहते हैं, "चाहे किसी के भा स्वार्थ की हानि क्यों न होती हो, किन्तु शान्ति-परिषद् के लोगों को निष्पक्षपात होकर न्याय देना चाहिए।" इस उच्च तत्वकी सिद्धि के लिए हिन्दुस्थान, इजिप्ट और आयर्लैंएड आदि सब देशों के प्रनिनिधियों की नियुक्ति सरकार द्वारा न हो कर प्रजा द्वारा होती तो बहुत ठीक हुआ होता। इस परिषद् के वादविवाद और प्रस्तावों का परिणाम समस्त मानव जाति पर होगा, अतएव यदि उसमें से हिन्दुस्थान को दूर किया गया, तो समस्त संसार के $\frac{1}{4}$ हिस्से मनुष्यों को छोड़ा गया समझा जायगा। इस प्रकार के योग्य प्रतिनिधि के अभाव में, परिषद् के सन्मुख आनेवाले अनेक उलझे हुए प्रश्नों को सुलझाने में हिन्दुस्थान के प्रश्न की ओर दुर्लक्ष्य होनेकी अथवा उसका महत्व न्यून समझा जानेकी सम्भावना है। अतएव हम हिन्दुस्थान का प्रश्न ब्रिटिश मुत्सद्दियों के तथा ब्रिटिश जनता के सन्मुख और तद्द्वारा शान्ति-परिषद् के सन्मुख रखने का साहस करते हैं; और हमें आशा है कि शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रजा सत्ता आदि विषयों के जो विश्व-व्यापी प्रश्न इस परिषद् में किये जायँगे, उसमें इसका अल्प परिमाण में तो भी उपयोग हो सकेगा।

युद्ध के कारण

संसार में शान्ति रखने के लिए तथा स्वयं निर्णय तत्व के अनुसार संसार के भिन्न भिन्न राष्ट्रों की उन्नति करने के लिए जो 'राष्ट्र संघ' नामकी राजकीय संस्था स्थिर रूप से स्थापित की गई है, वह एक शुभ चिह्नों की द्योतक है। किन्तु हमारा ख़याल है कि जिन कारणों से राष्ट्रों में युद्ध की ज्वाला भभक उठती है, वे आदि कारण जब तक निकाल कर दूर न किये जायँगे, तब तक राष्ट्र सङ्घ को अपने उच्च ध्येय में सफलता मिलना कठिन है। यूरोप का राजनैतिक इतिहास देखने से पता लगता है कि जिन ध्येयों में एक प्रकार की भयानक ओजस्विता भरी हुई है तथा जिनकी ओर ध्यान न देने से संसार की शान्ति में भयङ्कर विघ्न उपस्थित होने की सम्भावना है, ऐसे ध्येयों के कारण ही युद्धों का उद्भव हुआ। यह शक्ति चार प्रकार की है। (१) साम्राज्यता; अर्थात् अन्य देशों को जीतकर साम्राज्य बनाने की इच्छा; (२) राष्ट्रीयता; अर्थात् परकीय लोगों का आधिपत्य दूर करके एकही राज्यछत्र के नीचे रहने की इच्छा; (३) लोकशाही या एकतन्त्री या नौकरशाही की राज्य प्रणाली को तोड़कर प्रजा द्वारा प्रजा के हित के लिए चलाई गई प्रजासत्ता स्थापन करना; और (४) शान्ति स्थापना के या सुधार के मीठे नाम की तह में संसार के अन्य देशों को अपनी दासता में रखने के लिए यूरोप के मुख्य मुख्य राष्ट्रों में जागृत होनेवाला राजकीय और व्यापारिक द्वेष-भाव। हमारा ख़ायल है कि राष्ट्रों के बीच में जो व्यवहार होता है, उसमें इन चार बातों का ख़ासकर अवश्य ही सम्बन्ध रहता है। यदि राष्ट्रसंघ को

संसार में स्थिर शान्ति करने का महत्वपूर्ण कार्य्य करना हो तो उसे पहले इन चार कारणों को दूर करना परमावश्यक है। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ जो सम्बन्ध है, वह पहले न्याय के तत्त्वों पर स्थित किया जाय, और जिन बातों से शान्ति का पोषण और लड़ाई झगड़ों को दूर किया जा सके, ऐसी बातों को व्यावहारिक रूप देना चाहिए। यदि ऐसा न होगा तो एक दिन राष्ट्रसंघ लोगों पर, तथा विशेष कर जो राष्ट्र आज कल स्वतन्त्र नहीं हैं उसके लोगों पर, अत्याचार करने का एक ज़बरदस्त साधन बन जायगा। हमें दृढ़ विश्वास है कि शान्ति-स्थापना का महत्त्वपूर्ण कार्य केवल एक स्वयं-निर्णय तत्त्व के द्वारा ही हो सकेगा, और हमारा अनुरोध है कि जिस हिन्दुस्थान देश ने मित्रों को विजय-प्राप्ति के लिए धन-बल और युद्ध-सामग्री की भरपूर मदद दी, उस हिन्दुस्थान देश को यह स्वयं-निर्णय का तत्त्व लागू करना चाहिए। हमारे कहने का यह तात्पर्य्य नहीं कि हम साम्राज्य से फूट कर बाहर निकल जायँ या उसका सम्बन्ध बिलकुल तोड़ दें, किन्तु हमारी केवल यही इच्छा है कि अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों की तरह हम को भी बराबरी के नाते से मालकी हिस्सा मिलना चाहिए। प्रेसिडेन्ट बिलसन के १४ नियमों को ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार किया है। इन नियमों के अनुसार आस्ट्रो हंगेरिया और तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत आनेवाले भिन्न २ देशों को जिस प्रकार 'स्वतन्त्रता और बिना रोकटोक के साथ अपनी पूर्ण उन्नति करने का मौका दिया गया है,' उसी प्रकार हिन्दुस्थान को भी ब्रिटिश राज्यसत्ता की छत्रच्छाया के नीचे मिले, यही हमारी आग्रहपूर्वक माँग है। हमारी

माँग की इमारत स्वयँ-निर्णय, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय इज़्ज़त और स्वाभिमान आदि के उच्च ध्येय और हक़ों पर रची गई है। युद्ध के समय में हिन्दुस्थान के लोगों में इन अमर तत्वों ने एक नवजीवन फूँक दिया। यदि संसार में शान्ति का राज्य स्थापन करने का उच्च ध्येय साध्य करना है तो प्रथम हिन्दुस्थान की आन्तरिक महत्त्वाकाँक्षाओं की पूर्ति होना चाहिए और हिन्दुस्थान के विषय में अन्य राष्ट्रों के मन में जो महत्त्वाकाँक्षाएँ हों, उन्हें समूल नाश करने का प्रबन्ध होना चाहिए। जब तक यह नहीं होता, तब तक संसार में प्रजासत्ता सुखपूर्वक स्थापन नहीं हो सकती।

हिन्दुस्थान और यूरोप।

यह बात निर्विवाद है कि अनेक वर्षों से हिन्दुस्थान देश यूरोप के बलवान् राष्ट्रों के गुरुत्वाकर्षण के केन्द्र में जा बैठा है—हर एक राष्ट्र उसे अपनी ओर आकर्षण करना चाहता है। इंग्लैण्ड के मुकुट में बड़ी तेजस्विता के साथ चमकने वाले इस हीरे के ऊपर अनेक राष्ट्रों की दृष्टि लगी हुई है। ब्रिटेनवालों के उद्योग और पराक्रम को पूरी जगह देनेवाले इस क्षेत्र को देखकर अनेक राष्ट्रों में द्वेष भाव उत्पन्न हो गया है। किन्तु महायुद्ध आरम्भ होने के पूर्व तक इंग्लैंड को भी ठीक ठीक ज्ञान नहीं हुआ था कि यूरोप के उद्योग धन्धों में लगनेवाला कच्चा माल भेजने की शक्ति हिन्दुस्थान में कितनी ज़बरदस्त है, किन्तु युद्ध के कारण जो नयी परिस्थिति उत्पन्न हुई, उसमें इस कारण से नयी प्रेरणा का प्रादुर्भाव हो गया है, और हिन्दुस्थान पर जब तक बेजवाबदार रीति से व्हाइट हाल में बैठकर राज्य करने की प्रथा प्रचलित है, तब

तक शान्ति-भंग होने का डर बना है। पूर्व की ओर ब्रिटिश साम्राज्य ब्रिटिश व्यापारियों ने प्राप्त किया और ब्रिटिश व्यापारी कोई परोपकारी महात्मा नहीं थे। हिन्दुस्थान के राज्य-प्रबन्ध और व्यापार को अलग २ कर दिया गया है, तो भी ब्रिटिश लोगों के विचार पर व्यापारिक दबाव तथा स्वामित्व के तत्वों का रुवाब बैठा हुआ दृष्टि आता है। सिली का कथन है कि "इन सब बातों के मूल में स्टेट की कल्पना गर्भित होती है" अमेरिका के खेतों में डेढ़ सौ वर्षों तक ब्रिटेन वालों को जो लूट का चसका लग गया था, यह उसी का परिणाम है। "अपने उपनिवेशों के साथ किस नीति का व्यवहार किया जाना योग्य होगा, इस बात का यथार्थ ज्ञान ब्रिटेन को शनैः शनैः हुआ है। रोम की तरह इंग्लैण्ड भी अपने अधिकाराश्रित प्रदेश की ओर स्टेट की दृष्टि से देखता था, तथा अपने फ़ायदे के लिए वह स्टेट को चाहे जिस रीति से ठेके पर दे दिया करता था। यह नीति कितनी हानिकर है, इसका ज्ञान इंग्लैण्ड को तब जाकर हुआ जब अमेरिका उसके हाथ से निकलगया। (वुड्रो विलसन कृत 'दी स्टेट' नामक पुस्तक देखिये) किन्तु सिली के मतानुसार यह नीति हिन्दुस्थान के राज्य व्यवहार में अब तक भी जीवित बनी हुई है। यह नीति एक सुधरे हुए सभ्य राष्ट्र को शोभा नहीं देती। ख़ैर, शोभा दे या न दे पर हिन्दुस्थान की हुकूमत इंग्लैण्ड के हाथों होने के कारण उसे जो साम्पत्तिक श्रेष्ठत्व प्राप्त हुआ है, उसके कारण लगभग आधे संसार का साम्राज्य तथा समुद्र पर का स्वामित्व उसे मिल गया है। अतएव इंग्लैण्ड के विरुद्ध अन्य राष्ट्रों के मनमें जो द्वेष भाव जागृत हो गया है उसमें अधिकाधिक वृद्धि ही होगी। संसार भर में हिन्दुस्थान देश अत्यन्त

धनवान् और ऐश्वर्य्यशाली है; उसको यह कीर्ति प्राचीन समय से फैली हुई है और इसी कारण से उसपर अलेक्जाण्डर के समय से अनेक लोगों को चढ़ाई करने की इच्छा हुई। किन्तु जब मुसलमानों ने हिन्दुस्थान को जीत लिया, तबसे खुश्की के मार्ग द्वारा उसपर चढ़ाइयाँ होना बन्द हो गया। तुर्कों के कान्स्टन्टिनोपल शहर अपने अधीन कर लेने के कारण यूरोप में से खुश्की मार्ग द्वारा आना रुक गया और उसको जगह जलमार्ग द्वारा आने की इच्छा स्पेन और पोर्तुगाल के खला-सियों के मन में पैदा हुई। इसी हल्ले में कोलम्बस ने अमेरिका का शोध लगाया और वास्कोडिगामा हिन्दुस्थान में जा पहुँचा। तब अमेरिका और हिन्दुस्थान ये दो देश यूरोपियन राष्ट्रों के झगड़े के अखाड़े बन गये। फ्रान्स और इंग्लैण्ड के झगड़ों का निर्णय करने के लिए हज़ारों भारतीय लोगों का खून हो गया, पर अन्त में इन झगड़ों का निपटारा अब्राहम के रणक्षेत्र में जाकर हुआ। युरोपियन युद्ध का पाप अब अमेरिका के सिर पर मढ़ना बन्द हो गया है। संयुक्त राज्यों ने 'मनरो मत' के रूप में अपना जो अभिमत प्रकट किया है, उसके कारण दक्षिण अमेरिका के प्रजासत्ताक राज्य जीवित बने रहेंगे और उन्हें अपनी तरक्की करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। अमे-रिका के राज्यों का एक संयुक्त राज्य बनाते समय इस संघ ने अन्य राज्यों पर कुछ दबाव नहीं डाला कि वे भी उसमें सम्मि-लित हों। इस बात से इस संघका प्रशंसनीय आत्म संयम प्रकट होता है। पर हिन्दुस्थान के भाग्य में यह सुख कहाँ बदा था। यह सच है कि अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्थान से डच और फ्रेञ्चों को निकाल कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया, पर रशिया और जर्मन राष्ट्र ने हिन्दुस्थान जीतने का विचार किया।

यह बात कोई भी अस्वीकार न करेगा कि जर्मनी की हिन्दुस्थान पर जो दृष्टि थी, वह भी इस महायुद्ध के प्रारम्भ करने में कुछ न कुछ कारण अवश्य थी। 'टाइम्स' के तारीख २३ जनवरी १९१८ के अङ्क में जर्मन सम्राट् कैसर का एक भाषण प्रकाशित हुआ है। उसमें कैसर ने कहा था, "हम हिन्दुस्थान को अपने अधिकार में करेंगे, और इतना ही नही पर उसको जीतकर उस सुवर्णमय आय का प्रवाह भी हम जर्मनो की ओर बहावेंगे जो कि अँग्रेज़ लोग हिन्दुस्थानी रजवाड़ों के हाथ में जाने देते है।" हिन्दुस्थानी लोग और विशेषकर वहाँ के सुशिक्षित और बुद्धिमान् लोग राजभक्त होने के कारण वहाँ के गुप्त षडयत्रों को उत्साहित करने के लिए जर्मनों ने जितने भी प्रयत्न किये, वे सब निष्फल हुए। किन्तु दूसरों की ये कार्यवाहियाँ और हिन्दुस्थानी लोगों की इच्छाओं को ध्यान में लाने से एक बात स्पष्ट तौर से प्रकट होती है। वह यह कि एशिया और आफ्रिका खण्ड को समान रूप से लागू होनेवाले कोई नियम जाहिर करने की तथा हिन्दुस्थान की शिष्यावस्था का अन्त कर वहाँ प्रजा-शाही-स्थापन करने की घड़ी आ पहुँची है। क्योंकि ऐसा होने के पश्चात् सब राष्ट्रों को विश्वास हो जायगा कि हिन्दुस्थान का राज्य कारभार हिन्दुस्थानी लोगों ने ही हिन्दुस्थान के तथा अखिल मानव-जाति के हित की ओर दृष्टि देकर चला रक्खा है। इसके सिवा राष्ट्रों की चढ़ाऊपरी के कारण जो द्वेषभाव फैल गया है वह भी विलीन हो जायगा।

ब्रिटेन की नीति ।

तारीख २० अगस्त १९१६ को हाउस ऑफ कामन्स में एक प्रश्न का उत्तर दिये जाते हुए ब्रिटेन की हिन्दुस्थान के विषय में एक ताजी नीति प्रकट की गई थी। वह यह है:—

"राज्य कारभार की प्रत्येक शाखा में हिन्दुस्थानी लोगों का सम्बन्ध अधिकाधिक बढ़ाना, तथा हिन्दुस्थान ब्रिटिश साम्राज्य का बड़ा महत्त्वपूर्ण अवयव है और इसी सम्बन्ध से हिन्दुस्थान में जवाबदार राज्य-पद्धति शनैः शनैः अस्तित्व में आ जाय, इसके लिए स्वराज्य सम्बन्धी संस्थाओं की धीरे धीरे वृद्धि की जाय। यह ब्रिटिश सरकार की नीति है और हिन्दुस्थान सरकारको पूर्णतया स्वीकृत है। अतएव सरकार ने यह प्रस्ताव पास किया है कि इस ओर जहाँ तक बन सके वहाँ तक शीघ्रही आगे कदम बढ़ाया जाय।"

इस प्रस्ताव में हिन्दुस्थान के स्टेट सेक्रेटरी ने जो मर्यादा डाली, वह यह है:—

"मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि इस नीति के अनुसार जो प्रगति की जायगी, वह क्रम क्रम से ही हो सकेगी।

ब्रिटिश सरकार तथा हिन्दुस्थान सरकार पर हिन्दुस्थान के हित और उन्नति की जवाबदारी आ पड़ी है। अतएव समय समय पर कितनी उन्नति की जाय, यह निश्चित करना इस सरकार की सम्मति पर अवलम्बित रहेगी।"

हिन्दुस्थान के स्टेट सेक्रेटरी ने उपरोक्त नीति को मर्यादित करते समय यह कहा है कि हिन्दुस्थान को स्वयँ-निर्णय का तत्त्व न लगाना चाहिये। यह बात जरा विचारपूर्वक देखने से साफ़ ध्वनित होती है कि हिन्दुस्थान एक राष्ट्र नहीं है,

और इसीलिये उसे स्वय-निर्णय तत्त्व न लगाना चाहिये, तथा स्वराज्य का ध्येय सन्मुख रखकर हिन्दुस्थान को धीरे धीरे इस योग्य बनाने में बहुत समय लगेगा। तब तक उसे ट्रस्टी की तरह इंग्लैण्ड के हाथ नीचे रहना चाहिये। इस तरह की दो बातों के आधार पर हिन्दुस्थान को स्वयं-निर्णय तत्त्व लगाने से इनकार किया जाता है। तथापि हम कहेंगे कि लोगों की सम्मति न लेकर सरकार ने उपरोक्त नीति प्रकट की है। उस समय प्रेसिडेन्ट विलसन ने अपना स्वयं-निर्णय का तत्त्व प्रतिपादित नहीं किया था तथा, उसे ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार भी नहीं किया था। किन्तु जब यह तत्त्व प्रकट कर दिया गया और ब्रिटिश लोगों ने उसे स्वीकार भी कर लिया, ऐसी हालत में भी उपरोक्त नीति पर चलना एक उदार मुत्सद्दीपन तथा राजनैतिक चतुरता को शोभा नहीं देता। इसके सिवा इस नीति की तह में जो कारण आधार स्वरूप गृहीत किये गये हैं, वे असमर्थनीय और अन्यायपूर्ण होने के कारण इस विषय में विशेष असन्तोष फैलना सम्भवनीय है। अतएव नीचे लिखे अवतरणों में हम उपरोक्त तत्त्वों की कुछ छान बीन करते हैं।

हिन्दुस्थान राष्ट्र है।

कई लोग कहते हैं कि हिन्दुस्थान एक राष्ट्र नहीं है, वह राष्ट्रों का एक अव्यवस्थित समूह है, वह देश नहीं है, किन्तु एक खण्ड है। कहावतों के समान दीखनेवाले ये छोटे २ वाक्य सत्य बात पर पर्दा डालकर अनजान लोगों को भ्रम में डाल देते हैं। जब हम 'राष्ट्र' शब्द का उच्चारण करते हैं, तब उसका अर्थ क्या होता है? अच्छा, अंग्रेज़, फ्रेंञ्च और

पोलिश लोगों को तो 'राष्ट्र' पदवी लगती है ना? फिर बंगाली, पंजाबी, राजपूत और मराठों को वह क्यों कर न लग सकेगी। बंगाली लोग एक ही प्रदेश में जो कि स्वतन्त्र अभिधान पा चुका है, रहते हैं। लौकिक दृष्टि से उनकी उत्पत्ति एक ही वंश से हुई है। उनमें एक ही भाषा, एक ही सुधार, साहित्य, व्यवहार और पूर्वपरम्परा एक ही चली आ रही है। यदि लौकिक अर्थ लगाया जाय तो राष्ट्रीयता के लिए इन तमाम बातों की अत्यन्त आवश्यकता है। इग्लैण्ड में लोगों के भिन्न भिन्न वर्ग हैं, किन्तु इससे उनकी राष्ट्रीयता को कोई बाधा नहीं पहुंचती; इसी तरह हिन्दुस्थान में भी जातियों के होने से कोई बाधा नहीं आ सकती है। धार्मिक मतों के कारण राष्ट्र के दो भाग नहीं हो सकते; और यदि हो सकते हैं तो धार्मिक स्वतन्त्रता का नाश हो जायगा। इंग्लैण्ड में खिस्ती धर्म के जो भिन्न भिन्न पंथ हैं, और उनमें परस्पर जितना वैमनस्य है, उसकी अपेक्षा हिन्दुस्तान के पंथों में बहुत कम होगा। इंग्लैण्ड में धर्म के अन्तर्गत भेद सैकड़ों की संख्या में गिने जा सकते हैं, पर सारे हिन्दुस्थान में मुख्य पाँच धर्म हैं। इनमें से सैकड़ा ९५ लोग केवल दो ही धर्मों के अनुयायी हैं। जो बातें ऊपर बंगाली लोगों के सम्बन्ध में कहीं गई हैं, वही बातें हिन्दुस्थान के अन्य प्रान्तों को भी लागू होती है।

इस प्रकार के हिन्दुस्थान में कोई १२ प्रान्त हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रिटिश राज्य हिन्दुस्थान में शुरू होने तक प्रत्येक प्रान्त एक जुदा २ संस्थान के समान था। उनका काम भी स्वतन्त्रता के साथ चलता था। इन स्वतन्त्र प्रान्तों का प्रबन्ध अँग्रेज़ों की कृत्रिम प्रान्तिक रचना के कारण कुछ २ बिगड़

गया। किन्तु राष्ट्रीयता की भावना प्रत्येक प्रान्त में फैली हुई है। जब लार्ड कर्ज़न ने बंगाल के दो टुकड़े किये, तब इस भावना को ज़बरदस्त धक्का बैठा था, ऐसा ही धक्का जब जब बैठता है तब तब इस भावना का स्वरूप व्यक्त होता है। जिस प्रकार इंग्लैण्ड, फ्रान्स, बेलजियम और पोलैण्ड आदि राष्ट्र हैं, उसी प्रकार हिन्दुस्थान का प्रत्येक लोक-समूह ही एक एक राष्ट्र है। अतएव हिन्दुस्थान को भी स्वयं-निर्णय का तथा तमाम हिन्दुस्थान को एक संयुक्त राज्य बनाने के लिये संघटनात्मक रूप लेने का अधिकार है।

हमने यहाँपर उपरोक्त प्रान्तों का विचार करते समय राष्ट्र शब्द के लौकिक अर्थ पर ही दृष्टि रखी है, किन्तु यदि उसका वास्तविक अर्थ किया जाय तो यही मालूम होगा कि तमाम हिन्दुस्थान देश एक ही राष्ट्र है। कई लोग कहते हैं कि हिन्दुस्थान देश तमाम संसार की एक प्रतिमूर्ति है, किन्तु उसमें विविधता होते हुए भी वह एक है। मि० स्मिथ ने अपने "हिन्दुस्थान के प्राचीन इतिहास" नामक पुस्तक में कहा है कि "एक ओर से समुद्र और दूसरी ओर से पर्वतों से मर्यादित हिन्दुस्थान देश भौगोलिक दृष्टि से निस्सन्देह एक है।" महाशय खिशोध अपनी भूगोल में कहते हैं "केवल एक ब्रह्मदेश को छोड़कर बाकी हिन्दुस्थान देश को प्रकृतिने जिस उत्तमता के साथ रचा है, वैसा संसार में दूसरा कोई स्वतन्त्र देश नहीं है।" लौकिक दृष्टि से हिन्दुस्थान के लोग एकही आर्य वंश से पैदा हैं। कहीं कहीं अपवाद स्वरूप कुछ अन्य लोग भी हैं, किन्तु वे भा इनमें एकरूप होकर मिल गए हैं। ई० सन के ३२५ वर्ष पूर्व जब अलेक्जण्डर ने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की थी, उसके भी कई वर्षों पूर्व हिन्दु-

स्थान के लोग हिन्दू बन गए थे। हिन्दू धर्म में अनार्यवंशी लोगों का भी समावेश हुआ, किन्तु प्रधानता हिन्दू सुधार की ही रही। हिन्दुस्थान का महापुराण जो महाभारत ग्रन्थ है, उसमें जो प्राचीन परंपरा की बातें, भावनाएँ और इच्छाओं का संग्रह दृष्टि आता है, उन्हीं पर इस सुधार का पाया रचा गया था। संस्कृत भाषा अखिल भारत की भाषा बन गई थी। जिस प्रकार मध्ययुग में यूरोप के विद्वानों की भाषा लेटिन थी, उसी प्रकार संस्कृत तमाम हिन्दुस्थान के विद्वानों की एक व्यवहार्य्य भाषा बन चुकी थी।

यद्यपि हिन्दुस्थान में लगभग ५०० छोटी भाषाएँ हैं, तथापि धर्म की भाषा एक ही है। इतना ही नहीं, पर यद्यपि वंश, पंथ, भाषा-भेद आदि कितनी ही बातें क्यों न हों, किन्तु हिन्दू धर्मानुयायियों का पूज्य धार्मिक साहित्य भी एक ही है। वह साहित्य और भाषा संस्कृत है। संस्कृत भाषा संसार की कुल भाषाओं में सब से प्राचीन है, यह बात मोनियर विलियम ने भी स्वीकार कर ली है। जिस प्रकार लैटिन से फ्रेञ्च, स्पेनिश और पोर्तुगीज भाषाएँ निकली हैं, उसी प्रकार हिन्दुस्थान के तीन चतुर्थांश मनुष्य संस्कृत से निकली हुई भाषाएँ बोलते हैं। यद्यपि हिन्दुस्थान में छोटी छोटी भाषाएँ अनेक हैं, किन्तु मुख्य कर केवल बारह भाषाओं का व्यवहार बहुत लोग करते हैं। राजकीय दृष्टि से देखा जाय तो आज समस्त भारतवर्ष एक है, और प्राचीन समय में, विशेष कर अशोक के समय में भी वह एक था। किन्तु हिन्दुस्थान के प्राचीन सम्राट् वर्तमान समय के ज़ार और कैसर से अधिक उदार मतवादी थे और इसीलिये उन्होंने भाषा, पंथ, जाति और संस्कृत को सख़्ती से एक न करके

हर एक के लिये अपनी परिस्थिति के अनुसार उन्नति करने का सुभीता रखा था। अतएव हिन्दुस्थान में राष्ट्रीयता के सब अङ्ग मौजूद हैं—अर्थात् यहां के लोग एक ही रक्त, एक ही संस्कृति, एक ही इतिहास और एक ही धर्म के हैं। मुसलमान लोगों के आक्रमण तथा मुगल राज्य के कारण हिन्दू राष्ट्रीयता में कुछ कुछ बिगाड़ हुआ, किन्तु अधिकांश मुसलमान हिन्दुओं के ही वंश के हैं। यद्यपि वे मुसलमानी धर्म को मानते हैं, किन्तु उन्होंने अपने प्रान्त की भाषा और रस्म रिवाजों को अभी तक वैसा ही कायम रखा है, और केवल एक धार्मिक बात को छोड़ कर तमाम बातों में उन पर हिन्दू संस्कृति का ही प्राधान्य बना हुआ है। "हमारे पूर्व पुरुषाओं ने अनेक शताब्दियों तक हमारी भावनाएँ और विचारों को बनाने का काम किया है।" (लि० वॉ०) केवल धर्म-परिवर्तन से अनेक शताब्दियों के पड़े हुए संस्कार नहीं मिट सकते। "यदि कोई सूक्ष्म दृष्टि वाला मनुष्य हिन्दुस्थान का अवलोकन करे तो यद्यपि उसे शारीरिक, सामाजिक, भाषा विषयक, आचार-विचार-सम्बन्धी तथा धार्मिक भेद अनेक प्रकार के दृष्टिगोचर होंगे, किन्तु उसे हिमालय से लगाकर कन्या कुमारी तक सबों के जीवन में एक प्रकार की गुप्त समानता दृष्टि आवेगी।"—(सर हर्बर्ट)। विन्सेन्ट स्मिथ कृत 'अर्ली हिस्टरी ऑफ़ इण्डिया' में कहा गया है," हिन्दुस्थान की संस्कृति संसार के सब देशों से कई बातों में भिन्न है। पर हिंदुस्थान के सब देशों में वह सामान्यतया होने से यदि हम उसे मनुष्य जाति के सामाजिक और बौद्धिक इतिहास का एक स्वतंत्र भाग समझें तो कोई हर्ज नहीं। हिन्दुस्थान में ऐक्य की भावना इतनी प्रबल है कि यदि

कोई देश के अलग अलग टुकड़े करना चाहे तो समस्त देश उसका तीव्र निषेध करेगा। इतना ही नहीं पर इस भावना के मूल इतने गहरे पैठ गए हैं कि जातीय तत्त्व पर प्रान्तों को विभाजित करने की सूचना अनेक भारतीयों को उनमें फूट डालने वाली युक्ति मालूम देती है। सारांश यह है कि हिन्दुस्थान एक राष्ट्र नहीं, यह सिद्धान्त भ्रामक और निराधार है। लॉर्ड एक्टन कहते हैं, "प्राचीन समय का यह विचार था कि एक ही पूर्वजों की प्रजा या एक धर्मानुयायियों का ही राष्ट्र बन सकता है, और राष्ट्र भैागोलिक तथा भौतक कारणों से बनता है; परन्तु आज कल यह ख़याल बदल गया है। आज कल राष्ट्र का सम्बन्ध नैतिक और राजकीय कारणों पर अवलम्बित हो गया है और वह राष्ट्र सत्ता की क्रिया द्वारा इतिहास बनकर बनता है। राष्ट्र सत्ता द्वारा उत्पन्न होता है और वह सत्ता पर अधिकार नहीं कर सकता। सत्ता राष्ट्रीयत्व को पैदा कर सकती है, किन्तु यह कहना कि, राष्ट्रीयता ही सत्ता है, आधुनिक सुधार से विपरीत जँचता है।" इस प्रकार की राष्ट्रीयता बनने के लिए लोगों के हृदयों में स्वजनों के साथ आनन्दपूर्वक सहकारिता करने की बुद्धि और एक ही सत्ता के नीचे रहने की इच्छा का होना आवश्यक है। इस प्रकार की सहकारिता करने की इच्छा हिन्दुस्थान में है और ब्रिटिश आधिपत्य के कारण उपरोक्त इच्छा की तीव्रता और वेग अधिक ही हो गया है। पर, सच पूछा जाय तो सर हेनरी मेन के कथनानुसार "राष्ट्रीयता के विचार का जन्म प्रथम हिन्दुस्थान में हुआ, और बाद में उसका प्रचार पाश्चिमात्य देशों में हुआ है"। इस कारण से ही सान्धिक ऐक्य स्थापित करना शक्य हो गया है। इसके अनुसार आस्ट्रिया

हंगरी, पूर्वकालीन रशिया, आयर्लैण्ड, इंग्लैण्ड अथवा यूरोप के किसी भी अन्य देश के लोग सहकारिता करके संघरूप में रहने के लिए जितने उतावले हैं, उससे कहीं अधिक मराठे, बंगाली, और मद्रासी हैं। सन् १६१६ में लखनऊ में हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर जो एक मन से प्रस्ताव स्वीकृत किये, उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि भारतीय लोग अपना परस्पर का भेदभाव किस सहूलियत के साथ मिटा सकते हैं। पर भिन्न भिन्न वंशों में पैदा हुए भारतीय केवल एक धर्म और एक भाषा को ही स्वीकार कर लें यह कहना पागलपन की चरम सीमा है। मध्य युग में एक विचार पैदा हुआ था, वह यह कि समस्त यूरोप के रहने वाले समान भाव से एक ही धर्म के बन जाना चाहिये, इस विचार से जो जो अत्याचार और जुल्म यूरोप में हुए, वैसे ही उपरोक्त आग्रह के कारण होना सम्भवनीय है। बड़ी खुशी की बात है कि अब इस प्रकार के अत्याचारों से संसार मुक्त हो गया है। संघ शक्ति का तत्त्व अमेरिका ने संसार के सन्मुख रखा है। राजनैतिक क्षेत्र में यह तत्त्व बिलकुल नया है, पर इसके द्वारा संसार में शान्ति और स्वतन्त्रता का साम्राज्य प्रारम्भ होने की आशा मालूम पड़ने लगी है। लार्ड एक्टन के मतानुसार सरकारी सत्ता सुव्यवस्थित तथा व्यवहारोपयोगी किस प्रकार बनाई जा सकती है, स्थानिक रस्म रिवाज और परम्परागत हकों का ठीक प्रकार पालन करना किस प्रकार सम्भवनीय है, स्वतन्त्रता के महान् परिणाम किस प्रकार दिखाई देंगे और एकतन्त्री तथा बेजबाबदार राज्यप्रणाली द्वारा किस प्रकार सत्यानाश होता है, ये सब बातें अमेरिका के संघ से स्पष्ट दीख पड़ेंगी। इस प्रकार का सुप्रबन्ध हिन्दुस्थान में न

हो सकेगा, ऐसा कहना बिलकुल निराधार है। इसके विपरीत एक्टन ने जिस परिस्थिति और जिस बुद्धि का होना आवश्यक करार दिया है, वह बुद्धि और परिस्थिति हिन्दुस्थान में प्रचुरता के साथ है। इस प्रकार की सुप्रबन्ध युक्त राज्यप्रणाली का विकास हिन्दुस्थान में नहीं हुआ, इस अपयश का खप्पर भारत की नौकरशाही के ही सिर फोड़ना चाहिये। उसके ट्रस्टीपन के कठिन विचार को अपने हृदय में प्रस्थापित कर लेने के कारण तथा सत्ता का फिजूल केन्द्रीकरण कर लेने के कारण नौकरशाही का परिणाम लोगों की बुद्धि सत्त्वहीन उत्साहरहित होने में हुआ है। इसका सब दोष नौकरशाही के सिर पर है।

राजकीय ट्रस्टीपन (Trusteeship)

ट्रस्टी या वली बनने के भाव में यह अर्थ भरा हुआ है कि ट्रस्टी खुद अपने काम के लायक है। किन्तु, क्या पाश्चिमात्य संसार प्राच्य संसार का ट्रस्टी होने योग्य है? क्या अध्यात्मवादी लोगों का ट्रस्टी जड़वादी संसार कभी बन सकता है? दोनों की संस्कृति में इतनी भिन्नता है कि एक इंग्लिश कवि को कविता बनाने की यह स्फूर्ति हुई कि "पूर्व तो पूर्व ही है, और पश्चिम तो पश्चिम ही है; इन दोनों का सम्मिलन कभी स्थिर नहीं रह सकता।" म. बर्नार्ड ह्यूटन 'पाज़िटिह्व रिह्वयू' के दिसम्बर १६१८ के अंक में कहते हैं, "हिन्दुस्थान की संस्कृति बिलकुल भिन्न है, उसको अँग्रेज़ी साँचे में ढालना ऐसा ही निष्फल होगा जैसे कि ओक (oak) वृक्ष की कलम बड़ के पेड़ से संयुक्त करना।" अतएव यह बात स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड हिन्दुस्थान का ट्रस्टी बनने लायक

नहीं है। क्योंकि ट्रस्टी यह विचार कर कि मेरा हित किस बात में है, अपने अधिकाराश्रित मनुष्यों पर अपनी इच्छा को बलपूर्वक लादता है। इसका परिणाम बहुत बुरा हुआ है। हिन्दुस्थान देश जर्मनी और जापान के बहुत पीछे रह गया है। जापान और जर्मनी ने तो पचास वर्ष में ही अपनी उन्नति कर ली, किन्तु उसकी अपेक्षा हिन्दुस्थान में ब्रिटिश राज्य डेढ़ सौ वर्ष से स्थापित है, पर उसकी बहुत कम उन्नति हुई है। भारतीय लोगों की बुद्धि जापानी और जर्मनों के समान ही तीव्र है। व्यापार और उद्योग धन्धों में बहुत आगे बढ़ जाने के कारण आज जर्मनी संसार के उद्योगों का केन्द्र बन गया है। और हिन्दुस्थान में सब तरह की सामग्री-सब तरह के साधन—रहते हुए भी आज वह एक छोटे बालक के समान हो गया है। गत एक शताब्दि पूर्व हिन्दुस्थान और इंग्लैण्ड के शिक्षित पुरुषों की प्रति शतक सख्या प्रायः बरावर थी। पर, आज कल इंग्लैण्ड में तो शिक्षित पुरुषों की संख्या प्रति शतक ६५ है, और हिन्दुस्थान में प्रति शतक ६ मनुष्य भी मारकूट कर बड़ी मुश्किल से निकलेंगे। इसी प्रकार के अनेक दोष हैं, जिनका वर्णन करना यहाँ अप्रासंगिक है। जिस प्रकार पौधा छाया में बढ़ नहीं सकता, उसी प्रकार ट्रस्टी की छाया तले—उसके अधिकार के नीचे—देश की कभी उन्नति नहीं हो सकती। इतना होते हुए भी नौकरशाही ट्रस्टीपन के ममत्व को अपने हृदय में बड़ी दृढ़ता के साथ आज भी धारण किये हुए है।

इस प्रकार के ट्रस्टीपन के विचार को आग्रहपूवक प्रतिपादन करने से भारतीय लोगों की भावना पर वे कितना बड़ा आघात कर रहे हैं, इस बात की कल्पना अँग्रेज़ों को

नहीं है। जो लड़का नाबालिग़ होता है, उसके लिये ट्रस्टी की आवश्यकता होती है। भारतीय राष्ट्र कोई तत्काल जन्मा हुआ बालक नहीं है, या वह कोई जंगली अवस्था में अथवा बिना सुधरा हुआ राष्ट्र भी नहीं है; किन्तु हिन्दुस्थान देश मानवी कुटुम्ब में ज्येष्ठ भ्राता है और इसकी गोद से वे धर्म अवतरित हुए हैं, जो आज भी करीब आधे संसार को सान्त्वना दे रहे हैं। तत्त्वज्ञान के विषय में इस देश की कीर्ति दुन्दुभी आज भी संसार में बज रही है। दिवानी कानून के अनुसार ट्रस्टी की नियुक्ति तभी तक रहती है, जब तक मालिक बालिग़ न हो जाय। अतएव कुछ समय बाद यह ट्रस्टीपन स्वयं विलीन हो जाता है। यदि स्व-निर्मित ट्रस्टीपन का अन्त तब जाकर हो जब कि खुद ट्रस्टी मालिक को योग्य समझे, तब तो समाज की कितनी भयङ्कर दुर्दशा हो जायगी, इसका विचार करते ही हृदय धड़कने लगता है। ऐसी हालत में जब तक तमाम मिलकियत का सत्यानाश न हो ले, तब तक कोई भी ट्रस्टी अपनी खुशी से अपना ट्रस्टीपन नहीं त्याग सकता। इसी तरह राजनैतिक विषयों के ट्रस्टी अपनी नियुक्ति अनन्तकाल तक बनी रखने के लिये हज़ारों प्रकार की युक्तियां और कारण ढूंढ निकालते हैं। ट्रस्टीपन का विचार ही स्वयं-निर्णय, स्वतंत्रता और प्रजा-सत्ताक राज्य के विरुद्ध है। प्रजा के राज्य चलाते समय उसके हाथों चाहे कितनी बड़ी बड़ी ग़लतियाँ क्यों न हो जायँ, पर तो भी उसका राज्य करना श्रेयस्कर ही होता है। यदि भारतीयों को स्वतंत्रता दे दी जाय—स्वराज्य दे दिया जाय—तो वे भी जापान के समान केवल चालीस वर्ष में ही अपने तमाम प्रश्नों को अच्छी तरह हल

कर सकते हैं। विदेशी लोग, फिर चाहे वे निःस्वार्थता के पुतले ही क्यों न हों, यह कार्य सैकड़ों वर्ष में भी न कर सकेंगे। कारण यह है कि वे प्रजा की आवश्यकता और इच्छाओं को नहीं समझ सकते। विदेशी गवर्नर अपने शासित लोगों को कभी स्वराज्य की शिक्षा नहीं दे सकता। जो लोग नौकरशाही के कट्टर पक्षपाती हैं, उन्होंने भी अब यह स्वीकार कर लिया है कि नौकरशाही हिन्दुस्थान को जवाबदार राज्य-प्रणाली की शिक्षा नहीं दे सकी। अब नौकरशाही के पक्षपाती यह बहाना करने लगे हैं कि आगे की नौकारशाही भारतीयों को जवाबदार राज्य-प्रणाली की शिक्षा बड़ी मुस्तैदी के साथ देगी। किन्तु परदेशियों से यह काम होना कदापि सम्भवनीय नहीं, उसके लिये तो देशी मनुष्य ही चाहिएँ। महाशय बर्नार्ड हूटन 'पाज़िटिविस्ट' के दिसम्बर सन् १६१८ के अङ्क में यों फ़र्माते हैं, "जिस राष्ट्र की संस्कृति इतनी प्राचीन, और जिसके मूल बड़ी गहराई तक पैठ गये हैं, उसको राजकीय गुलामी में रखना, या उसकी प्रणाली द्वारा प्रश्नों को हल करते समय उसमें स्वतः अनेक बाधाएँ उपस्थित करना, एक महान् राजनैतिक भूल है। इतना ही नहीं, पर समस्त मानव जाति से विद्रोह करना है।" ऐसी परिस्थिति में अमेरिका ने फिलिपाइन्स के विषय में जो किया है, उसी प्रकार भारतीय काँग्रेस के द्वारा कम से कम इस स्वयंमन्य ट्रूस्टीपन के अमलदारी का समय निश्चित हो जाना चाहिये। जब तक ऐसा समय का बन्धन नहीं है, तब तक ब्रिटिश ट्रूस्टीपन आडम्बर मात्र है। इस दोष से रोम बड़ी मुश्किलों में छूटा है। हिन्दुस्थान ने काँग्रेस के अधिवेशन में, और अखिल भारतीय मुस्लिम

परिषद् ने जो कि सन् १९१८ में माँटेग्यु-चेम्सफर्ड सुधार का विचार करने बैठी थी, दोनों ने मिलकर यह निश्चित कर दिया है कि चाहे जो हो, पर इस ट्रस्टीपन का समय अब पन्द्रह वर्ष से ज़्यादा कभी न हो।

उपरोक्त पन्द्रह वर्ष के समय-बन्धन से यह बात आप ही आप सिद्ध होती है कि निदान अभी से कुछ न कुछ प्रारम्भ हो जाना चाहिये। हिन्दुस्थान सरकार ऐसी सरकार है जो सत्ता का केन्द्री भवन करती है और जिसकी राज्य-प्रणाली एकतन्त्री है। प्रोफ़ेसर लोवेल अपनी "इंग्लैण्ड का राज्य-प्रबन्ध" नामक पुस्तक में लिखते हैं, "हिन्दुस्थान का वाइसराय और रशिया का झार ये दोनों ही आधुनिक संसार के बहुत बड़े और बेजवाबदार शासक (Autocrat) हैं।" हिन्दुस्थान ने निर्णय कर दिया है कि उसे सुधार की पहिली किश्त कांग्रेस लीग योजना के अनुसार देना चाहिये। ब्रिटिश सरकार ने सुधार की जो सूचनाएँ की हैं उसका सारांश यह है कि हिन्दुस्थान की राज्य-प्रणाली में जो बेजवाबदारी (Autocracy) है, वह तो कायम रहे और उसके नीचेवाली प्रान्तिक राज्य-व्यवस्था में मिश्रित राज्य-व्यवस्था प्रारम्भ हो। इस व्यवस्था में प्रजा को सब से निचली श्रेणी में खड़ा किया जाय और प्रति दस वर्षों में लोगों की योग्यता सरकारी रीति से देख कर फिर उन्हें स्वराज्य की सीढ़ी दर सीढ़ी पर चढ़ाया जाय। छोटी-मोटी बातों पर वाद विवाद करने का यह स्थान नहीं है, पर भारतवासियों के स्वदेशाभिमान, बुद्धि और योग्यता पर जो कलंक इस सूचना में लगाया गया है, उससे हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। यह बात सर्वसम्मत है कि हिन्दवासी लोग यूरोपियनों के ही समान

होशियार, नियमानुसार चलने वाले और बुद्धिमान् हैं। परम पूजनीय प्राचीन संस्कृति ने भारतवासियों का चरित्र-गठन किया है और उन्हें हर एक सुधरे हुए राष्ट्र में नागरिकत्व के हकों के योग्य बनाया है। उनके विरुद्ध जो सब से बड़ा आक्षेप किया जाता है वह यह है कि वहाँ के जन-समाज का एक बड़ा भाग निरक्षर है। पर यह उनका दोष नहीं। यह तो नौकरशाही से उनके झगड़ों का एक विषय है। गत डेढ़ सौ वर्ष की राजसत्ता के समय उनको सुशिक्षित बनाने का कर्तव्य नौकरशाही का था।

ग्रेटब्रिटेन, जापान और अन्य देशों ने उपरोक्त समय में यह बात कर दिखाई। पर केवल हिन्दुस्थान ही सब के पीछे रह गया है। इतना ही नहीं, पर कुछ समय पूर्व जब नौकरशाही को यह सूचना की गई कि वह कम से कम प्राथमिक शिक्षा को ही अनिवार्य्य कर दे, किन्तु नौकरशाही ने उसका भी विरोध ही किया। ऐसी हालत में भारत-वासियों को राजकीय हक देने के विरुद्ध यह कारण बतलाना कि वे निरक्षर हैं, यह तो वही बात हुई कि लातें मारकर ऊपर से गालियों की बौछार करना। किन्तु, यदि इस अपमान की बात को क्षणभर एक ओर रख दिया जाय, तो भी यह ज़रूरी है कि अपने विकास के लिये उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय, पर यह मुख्य बात भी सुधार-योजना करनेवालों के ध्यान में न आई। उन्नति शनैः शनैः होती रहेगी, किन्तु स्वतन्त्रता शनैः शनैः नहीं दी जाती है। गुलाम को गुलामगिरी से सीढ़ी दर सीढ़ी मुक्त नहीं किया जाता है। पराधीनता की बेड़ी एक एक कड़ी को तोड़ते हुए नहीं तोड़ी जाती है। स्वतन्त्रता धीरे धीरे नहीं मिलती है, पर वह तो एक ही झटके में तत्काल

मिलना चाहिये। तभी जाकर उन्नति होती है। यह ते। सच है कि सुधार शनैः शनैः कुछ काल तक होने चाहिये, पर आजकल के विज्ञान-युगमें, जब कि सुलभ दुर्ग-भेद, लिफ्टस और हवाई जहाज़ों का समय है, एक सीढ़ी चढ़ने के लिए 'दस वर्ष' का समय बहुत ही ज़्यादा है। कहा जाता है कि आजकल की ब्रिटिश राज्यप्रणाली का विकास होने के लिए छः सौ वर्ष का समय लगा है। पर एथेन्स ने यह कार्य्य एक ही पीढ़ी में कर दिखाया, तथा फ्रांस को ते। केवल छः महीने ही लगे। म० लार्ड एक्टन ने कहा है, "सन् १७८६ की जनवरी मास से जुलाई मास तक फ्रान्स ने इतनी 'जल तय कर ली, जितना इंग्लैण्ड ने छः सौ वर्षों में (अर्ल आफ लीस्टर के समय से लगाकर बीकन्स फील्ड के समय तक) तय की थी।" जहा एक बार जमीन साफ़ करके उस पर रेलवे के रूल डाल दिये गए कि फिर मुसाफिर लोग वायु वेग के समान उस पर से प्रवास कर सकते हैं। न्यूटन ने जब गुरुत्वाकर्षण नियम का आविष्कार किया था, उसके कई वर्षों पूर्व तक उसे महान् परिश्रम करना पड़ा था, पर आज एक पाठशाला का लड़का बड़ी सुलभता के साथ उक्त नियम को जान लेता है। इस बात में पदार्थ-विज्ञान और राजनीति समान है। मि. आगस्ट केन्ट अपने 'पाजिटिव पोलिटी' नामक ग्रन्थ में कहते हैं, "जब किसी केन्द्रवर्ती स्थान में राजनीति की सब बातें ठीक २ जम जाती है, तब उसका लोगों में प्रसार करने के लिए प्रथम की सब बातों की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं रहती।" यदि भारतवासियों के मार्ग में कोई विघ्न बाधा उपस्थित न करे, ते। निस्सन्देह वे थोड़े ही समय में प्रजा-सत्ताक राज्य प्रणाली द्वारा स्वदेश के तमाम प्रश्नों को योग्यता

पूर्वक हल कर सकते हैं। यह ख़याल भी ग़लत है कि पूर्व के निवासी केवल एकतन्त्री राज्य प्रणाली के ही आदी हैं। ठीक २ हालत यह है कि प्रथम तो हिन्दुस्तान में प्रजासत्ताक राज्य व्यवस्था थी और बाद में एकतन्त्री राज व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। हमारे पूर्व पुरुष प्रजासत्ताक राज्य प्रणाली से पूर्ण परिचित थे। हिन्दुस्थान के महापुराण में ऐसे राज्यों का उल्लेख ही नहीं पर वर्णन भी दिया हुआ है। और बौद्ध ग्रन्थों में तो इस प्रकार के राज्यों का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। ग्रीक लोगों को हिन्दुस्थान के कस्बों में प्रजासत्ताक राज्य का पता लगा था। मेगस्थनीज़ से लगाकर मनरो तक के दो हजार वर्षों में हिंदुस्थान के पाँच लाख गाँवोँ में सब जातियों की प्रजासत्ताक राज्य व्यवस्था उत्कृष्ट रूपमें थी। उसका अन्त एँग्लो-इण्डियन सत्ता के केन्द्रीभवन द्वारा हुआ। आज कल भी जातियों की अधिकार सम्पन्न पञ्चायतों में प्रजासत्ता का बीज अच्छी तरह देखने को मिलता है। प्रजासत्ताक संस्थाएँ चलाने का अनुभव हिन्दू लोगों की तरह संसार की किसी भी जाति को नहीं है। अतएव यह कहना पागलपन ही ठहरेगा कि हिंदू लोगों को प्रजासत्ताक राज्य चलाने की बुद्धि नहीं है। यदि हिंदुस्थान को उसकी उन्नति करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय तो जापान के समान वह भी अपनी उन्नति बहुत अल्प समय में कर लेगा। यदि ऐसा हो गया तो फिर हिन्दुस्थान ग्रेटब्रिटेन का बहुत कुछ उपकार कर सकेगा और मानवीय संस्कृति में बहुत कुछ सहायता पहुँचावेगा। हिन्दुस्थान के मन में अपना प्राचीन वैभव पुनः प्राप्त कर लेने की इच्छा का प्रादुर्भाव हो गया है। इस बात में अणुमात्र सन्देह नहीं। स्वतन्त्रता से हिन्दुस्थान नवजीवन प्राप्त

करेगा। अतएव हमें आशा है कि इंग्लैण्ड के राजकाजी समय को पहचान कर उस प्रस्ताव का अनुमोदन करेंगे, जो हिन्दुस्थान ने शान्ति-परिषद् में पेश किया है। यह माँग प्रजासत्ताक राज्य स्थापित कर स्वयं अपनी उन्नति करने के विषय में है। इसके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य को अधिक दृढ़ता प्राप्त होगी।

उपसंहार।

जिन सिद्धान्तों का हम ने अब तक विचार किया है, उन सिद्धान्तों के अनुसार हमारी यह माँग है कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट हिन्दुस्थान को साम्राज्यान्तर्गत पूर्ण स्वराज्य देने की योजना पास करे, तथा काँग्रेस और मुस्लिमलीग ने जो समय निर्धारित कर दिया है, उस समय के अन्दर अन्दर ही ये सब योजनायें कार्य में परिणत हो जायँ। हम जिस प्रकार का स्वराज्य मांगते हैं, उसका संक्षेप में यह स्वरूप है:— राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर हिन्दुस्थान के कुछ विभाग करना होंगे। हर एक प्रान्त अपनी भीतरी राज्य-व्यवस्था चलावे, और इसके लिए उसे जिन अधिकारों की आवश्यकता हो वह उसे दिये जायँ। राज्यप्रणाली प्रजासत्ताक हो। इन प्रान्तों का सङ्गठन करके एक राज्य बनाया जाय, जिसका नाम "भारतीयसंयुक्त राष्ट्र" रहे। इसका कार्य चलाने के हेतु समस्त भारत के लिए मध्यवर्त्ती कानून बनाने वाली और उनको अमल में लाने वाली सभाएं स्थापित करके समस्त भारत का आन्तरिक प्रबन्ध उनके सुपुर्द कर दिया जाय। ये 'भारतीय संयुक्त राष्ट्र' (United states of India) ब्रिटिश साम्राज्य का एक अवयव बनकर रहे, और उसे साम्राज्य के

अन्य राष्ट्रों के समान ही सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। यह उच्च सभा तमाम ब्रिटिश साम्राज्य का कारभार चलाने, कानून आदि बनाने और उन्हें अमल में लाने के लिए बनाई जाय, जिसके अधिकार में युद्ध, सन्धि, नौकाबल, सेना और विदेशा-विभाग के कार्य सौंपे जायं। इस रचना में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रत्येक अङ्ग एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ रहे और उन्हें अपनी २ उन्नति करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय। इस पद्धति को लार्ड एक्टन का आशीर्वाद मिल गया है। वे कहते हैं, "एक ही साम्राज्य के अन्दर भिन्न २ वंशवाले लोगों का निवास हो और उनमें अनेक राज्य हों, तब तो स्वतन्त्रता को पुष्टि देने वाली उसके अलावा कोई दूसरी योजना ही नहीं हो सकती। राज्य-प्रबन्ध की दृढ़ता के लिये इन बातों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के राज्य में सर्वोत्तम फल प्रकट होंगे और सत्ता का केन्द्रीभवन तथा एकतन्त्री प्रणाली का सर्वनाश हो जायगा।" इस रचना में इसके आगे वाले लक्ष्य पर भी ध्यान रहता है। वह लक्ष्य यह है कि "शत्रुता के साम्राज्य की जगह प्रेममय जगत् व्यापी साम्राज्य की स्थापना करना।" हर्बर्ट स्पेन्सर। अलस्टर के निमित्त से छोटे राज्यों के संगठन करने का प्रश्न ब्रिटिश राजनीति के सन्मुख आया हुआ है। ब्रिटिश साम्राज्य का पुनस्सङ्गठन कोई जोड़ लगाने से नहीं होगा। उसके लिये सङ्गठन के सिद्धान्तानुसार बड़े बड़े फेरफार करना आवश्यक हैं। हमने जो स्वतन्त्रता की माँग की है, वह मिल जानेपर ब्रिटिश साम्राज्य-संघ लोगों के प्रेमरूपी सुदृढ़ पाये पर रचा हुआ समझना चाहिये। इसके द्वारा द्वेषभाव का समूल नाश हो जायगा, तथा केवल हिन्दुस्थान का ही नहीं पर अखिल

मानव-जाति का कल्याण होगा। ऐसी आशा धारण करके हम यह माँगते हैं कि हमें सम्पूर्ण संसार की सहानुभूति और सहायता प्राप्त हो।

हिन्दुस्थान क्या चाहता है।

(लोकमान्य तिलक ने इंग्लैण्ड के केक्सटन हाल में जो भाषण दिया था उसका सारांश)।

इस महायुद्ध में हिन्दुस्थान ने साम्राज्य की जो कुछ सेवा की है, उसके लिये ब्रिटेन के लोगों ने अपनी पूर्ण सहानुभूति दर्शाई है। अतएव मैं हिन्दुस्थान की ओर से आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। हिन्दुस्थान ने इस महायुद्ध में लगभग १५ लाख मनुष्य भिजवाये तथा १ अरब ५० करोड़ रुपये किसी भी तरह का बदला न लेते हुए सहायतार्थ प्रदान किये। परन्तु हिन्दुस्थान में हालही में जो घटनाएँ हुई हैं, उसके लिये मुझे दुःख है; किन्तु इसका सब दोष नौकरशाही पर है। समस्त हिन्दुस्थान के लोग विरुद्ध होते हुए भी रौलट कानून पास किये गए, और इसी कारण से उपरोक्त दंगे हुए हैं। इतना कहकर लो० ने मेगस्थनीज़ और ह्युएनसाँग आदि विदेशी प्रवासी इतिहास-लेखकों ने हिन्दुस्थान की सम्पत्ति और वैभव का जो वर्णन किया है, उसका उल्लेख करके अशोक और गुप्त के समय की हिन्दी-साम्राज्य की वैभव स्थिति का श्रोताओं को स्मरण करा दिया। पहले हिन्दुस्थान खेती, व्यापार आदि सभी बातों में परिपूर्ण था, किन्तु दुःख है कि अब उस समय की सारी स्थिति बदल गई है। इस समय हिन्दुस्थान में अठारह बिस्वे दारिद्र भरा हुआ है। लाखों मनुष्यों को भरपेट भोजन तक नहीं

मिलता। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्थान के उद्योग-धन्धे और व्यापार को डुबा दिया। "weaver" वीवर (बुनने का काम करने वाला) शब्द मूलतः हिन्दुस्थान से लिया गया है। यूरोप ने बुनने का धन्धा हिन्दुस्थान से लिया। व्यापार और धन्धों के डूब जाने के कारण लोगों को केवल खेती करने का ही अवलम्ब रह गया। हिन्दुस्थान में जो बारम्बार अकाल पड़ते हैं, उसका कारण केवल पानी का ही परावलम्बित्व नहीं है; क्योंकि वह तो सब देशों में समान है, किन्तु इसका खास कारण लोगों की निर्धनता है। मैं आप लोगों के सन्मुख केवल वस्तु-स्थिति का ही विवेचन करता हूँ, और मेरी प्रत्येक बात के लिए मेरे पास सुदृढ़ प्रमाण हैं। किन्तु इसी बात पर ब्रिटिश-विरोधी Anti-British लोग यह दर्शाने का प्रयत्न करते हैं कि मैं ब्रिटिश का विरोधी हूँ। हिन्दुस्थान के लोग ब्रिटिशों के विरुद्ध नहीं हैं, किन्तु नौकरशाही के उन कुछ लोगों के विरुद्ध हैं जो यह चाहते हैं कि हिन्दुस्थान हमारे और हमारे वर्ग के हित के लिए निरन्तर दास्य-पङ्क में सना रहे। एङ्ग्लो-इंडियन लोग भारतीयों के विषय में जो जो झूठे-सच्चे सिद्धान्त गढ़ लेते हैं, उनके लिए आप लोगों को सावधान रहना चाहिए। भारतीय लोग सुसंस्कृत हैं, और वे बुद्धि तथा संस्कृति में किसी भी अन्य लोगों की अपेक्षा कम नहीं हैं। उनके वैभवशाली पूर्व इतिहास के लिए हर एक कोई अभिमान ही करेगा। वे स्वराज्य के लिए पूरी तरह से योग्य हैं। वे साम्राज्य का स्वायत्त अवयव बन कर रहना चाहते हैं। कुछ लोगों का यह कहना है कि भारतवासी अशिक्षित हैं, अतएव वे स्वराज्य के पात्र नहीं हो सकते। मैं कहता हूँ कि हाँ, ठीक है, किन्तु अशिक्षित

मनुष्य बड़े बड़े कारखाने और लेनदेन चला सकता है। श्री छत्रपति महाराज शिवाजी अशिक्षित थे किन्तु उसी हालत में उन्होंने बड़े बड़े साम्राज्य चला कर बतला दिये हैं। अशिक्षितता का कारण बिलकुल पोच है और वह लागू नहीं हो सकता। जिस समय सन् १८३२ और १८६७ में ब्रिटेन को राजकीय सुधार प्राप्त हुए, उस समय वहाँ की शिक्षा का परिमाण क्या था? इसके अतिरिक्त जिस नौकरशाही ने हिन्दुस्थान को अशिक्षित स्थिति में जान बूझ कर रक्खा, और वही नौकरशाही इस कारण को पेश करे, यह तो न्याय और कानून की बात नहीं है। क्योंकि कानून का एक यह तत्त्व है कि अपने ही दोष और ग़लतियों का प्रयोग अपने ही सिद्धान्त पर नहीं हो सकता। दूसरे कुछ लोगों का यह कहना है कि हिन्दुस्थान में अनेक जातियाँ हैं और वे आपस में लड़ झगड़ कर फूट डाल देती हैं। अतएव वे स्वराज्य के योग्य नहीं हैं। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्थान में जातियाँ हैं; पर मैं चाहता हूँ कि वे इस समय जिस स्थिति में हैं, उस स्थिति में न रहें। पहले जब जातियाँ उत्पन्न हुई थीं, उस समय की उनकी उपयुक्तता अवशेष नहीं रही। तथापि ये संस्थाएं सामाजिक रूप में हैं और उनका विशेष सम्बन्ध राजकीय विषयों से नहीं है। जिस प्रकार से अमेरिका में "रेड इण्डियन और निग्रो" आदिकों के लिए सामाजिक व्यवस्था के प्रश्न उपस्थित हुए, उसी प्रकार से पहले हिन्दुस्थान में भी हुए थे। ख़ैर, यह बात भी नहीं है कि जातियाँ केवल ब्रिटिश हिन्दुस्थान में ही हैं। वे देशी राज्यों में भी हैं और पेशवाई के समय भी थीं। फिर ये जातियाँ वहाँ पर स्वराज्य में बाधक क्यों न हुई और

अब भी क्यों नहीं आतीं? यद्यपि जातियों के सम्बन्ध में समयानुसार सुधार होना आवश्यक है, किन्तु राजकीय सुधार में वे बिलकुल रुकावट नहीं लातीं। और आपस में राजनैतिक झगड़े कहाँ नहीं उपस्थित होते? आप के यहीं पर मज़दूर दल और कारखाने वालों में क्या कम झगड़े हैं? इसके सिवा हमने हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े आपस में मिटा लिए हैं। हिन्दुस्थान में आयलैंड के समान 'अल्स्टर' का कांटा शेष नहीं है। कांग्रेस और लीग दोनों ही ने मिलकर एक मत से सुधार-योजना का मसविदा तैयार किया है। फिर यह योजना क्यों नहीं स्वीकार की जाती। नौकरशाही इसके लिए प्रलय काल तक सम्मति नहीं देगी! गुलामगिरी का व्यवसाय इंग्लैंड अमेरिका ने मिलकर बन्द किया, क्या उसके लिए कभी गुलामों के मालिकों ने भी सम्मति दी थी? ऐसा होना असम्भव था, और वही बात नौकरशाही की समझिए। यदि हिन्दुस्थान दरिद्र, अशिक्षित और परावलम्बी रहा, तो इसकी सब जबाबदारी ब्रिटिश जनता पर रहेगी। वह नौकरशाही पर कदापि नहीं रहेगी, क्योंकि वे आपके नौकर हैं। कई लोग यह आक्षेप करते हैं कि आप जो कहते हैं, वह सब यथार्थ है; किन्तु भारतीय लोगों को स्वराज्य 'होमरूल' की आवश्यकता ही कहाँ है? ऐसे लोगों को मैं चैलेंज देता हूं कि वे एक भी ऐसा भारतीय बता दें, अधिक तो क्या पर कोई एक नरम दलवाला ही बतला दें कि वह स्वराज्य नहीं चाहता है। हाँ, यह सम्भव है कि कुछ लोग डर या स्वार्थ-लोलुपता के कारण नौकरशाही के विरुद्ध आवाज़ न उठा सकें, किन्तु यह उनकी यथार्थ और आन्तरिक सम्मति नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ आज

कल जर्मनी का अधिकार बेल्जियम में होने के कारण वहां के भी अनेक लोग डर के मारे जर्मनी के राज्य को अच्छा बतलाते हैं और कहते हैं कि हम इसमें खुशी हैं। यही बात सर्वत्र समझिए। एक दल ऐसा भी है, जो कहता है कि हिन्दुस्तान को शनैः शनैः स्वराज्य दिया जाय, किन्तु कनाडा, आस्ट्रेलिया और साउथ आफ्रिका को भी क्या शनैः शनैः स्वराज्य दिया गया था? यदि नहीं, तो हिन्दुस्थान ने ही क्या पाप किया है? आज कल सुधार का युग है, और शनैः शनैः ऊपर चढ़ने के बजाय एकदम 'लिफ्ट' द्वारा ऊपर चढ़ा जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दुस्थान को स्वराज्य दे देने से वह अंग्रेज़ों को हिन्दुस्थान से निकाल देगा; किन्तु मैं पूँछता हूं कि काहेसे निकाल देगा, क्या लकड़ी से या हाथ के घूँसे से? हाथ में रखने की लकड़ी कितनी मोटी हो, इसके लिए भी नौकरशाही ने नियम बना रक्खे हैं। हम पर-राष्ट्रविभाग, सेना, जहाज़ आदि विषयों में स्वतंत्रता नहीं मांगते। हमारी माँग केवल इतनी ही है कि हमारा आन्तरिक राज्यकारबार हम स्वयं चलावें।"

इसके पश्चात् मिसेस एह्वेलिन् शार्प ने कहा, "आज तक लोकमान्य तिलक को क्रान्तिकारी आदि विशेषण लगाये जाते थे, किन्तु ये तो एक बड़े भारी विचारवान्, शान्त और प्रगल्भ विचार के जवाबदार हिन्दी राष्ट्रभक्त हैं। मैं इसी परिणाम पर पहुँची हूं और मुझे अति हर्ष है कि मेरी ऐसे मनुष्य से मुलाक़ात हुई।"

सन्धि-परिषद् को आवेदन-पत्र

यह पत्र लो० तिलक ने भारत के निर्वाचित प्रतिनिधि की हैसियत से ता० ११ मार्च सन् १९१९ को पेरिस के सन्धि-परिषद् के सभापति मोशियो क्लेमेंशो के पास भारत को स्वभाग्य निर्णय का अधिकार देने के लिये भेजा था जिसका सरांश यह है:—

भारतवर्ष के लोगों को यह सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ है कि सन्धि-परिषद् ने उसे "विशेष स्वार्थोंवाला लड़ाकू राष्ट्र" माना है और निश्चय किया है कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त उसके दो प्रतिनिधि पृथक रूप से उपस्थित रहें। परन्तु दुर्भाग्यवश भारत की वर्तमान स्वेच्छाचारी शासन-पद्धति में प्रजा के सामने उत्तरदाता मंत्री प्रतिनिधि चनाकर नहीं भेजे जा सकते। राजनीति की दृष्टि से भारत के दो भाग हो सकते हैं। एक ब्रिटिश भारत और दूसरा देशी रियासतें। रियासतों की तरफ़ से बीकानेर नरेश को और ब्रिटिश भारत की तरफ़ से सर (अब लोर्ड) सत्येन्द्रप्रसादसिंह को भारत-सरकार ने प्रतिनिधि बनाकर भेजा है। परन्तु यह नियुक्ति प्रजा की सम्मति और स्वीकृति के विना ही की गई है। लोकमत इस नियुक्ति को कैसा समझता है, दहली कांग्रेस के अध्यक्ष के भाषण पढ़ने से ज्ञात हो जायगा। दहली कांग्रेस ने म० गांधी, श्रीयुत हसन इमाम और इस आवेदन-पत्र के लेखक को अपना प्रतिनिधि चुना है। सन्धि-परिषद् के पूर्वोक्त निर्णय की ख़बर पाते ही मैंने इंग्लेन्ड के प्रधान मंत्री को पत्र द्वारा सूचना की कि भारत की भिन्न भिन्न प्रतिनिधि संस्थाओं से १२ प्रतिनिधि चुने जायँ और उन्हीं में से समय

समय पर एक दो को भारत का प्रतिनिधि बनाया जाया करे। परन्तु भारत मन्त्री ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। सुधारों की योजना के सम्बन्ध में सरकार और भारतीय प्रजा के बीच जो भारी मतभेद हो गया है, उसका विचार करते हुए भारत मंत्री की यह इनकारी बहुत खेदजनक है। ऐसी हालत में सन्धि-परिषद् के नियम ११ के अनुसार यह पत्र परिषद् के विचार के लिये भेजता हूं। इस छोटे से आवेदन-पत्र में सुधार योजना के सम्बन्ध में भारतीय जनता का मत विस्तार सहित नहीं दिखाया जा सकता। परन्तु पास पोर्ट मिलने पर किसी भी कमेटी या स्वतः परिषद् के सामने मैं अपने पक्ष का प्रतिपादन कर सकता हूं। दिल्ली कांग्रेस ने जब मुझे अपना प्रतिनिधि चुना इसके पहले ही मैंने पत्र सम्पादक रूप से परिषद् में उपस्थित रहने की अनुमति मांगी थी पर उत्तर मिला कि तुह्मारी यह इच्छा पूरी नही की जा सकती।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि संसार की शान्ति और भारतवासियों की उन्नति के विचार से भारत के प्रश्न का उत्कृष्ट रीति से हल हो जाना कितना आवश्यक है। भारत सब प्रकार भरा पूरा देश है। किसी और देश पर उसकी लार नहीं टपकती। उसकी महत्वाकांक्षा का क्षेत्र अपनी ही सीमा के अन्दर है। अपार विस्तार, भारी जन संख्या, प्रचुर साधन सम्पत्ति इन सब कारणों से भारत संसार का नहीं तो कम से कम एशिया का सर्व प्रधान राष्ट्र होने का अधिकारी है। अतएव किसी भी युद्धाकांक्षी राष्ट्र के हाथों से ब्रिटिश साम्राज्य का बाल बांका न होने देने और पूर्वीय गोलार्द्ध में अटूट शान्ति रखने में वह राष्ट्रसंघ का लायक कर्माधीश हो

सकता है। परन्तु आज की तरह यदि वह बेड़ियों में जकड़ा रहेगा तो वह कुछ भी करने में समर्थ न हो सकेगा। यदि भारत बलवान न बन सका तो युरोपियन राष्ट्र रूपी गीधों के लिये मांस के टुकड़े का काम देगा और जापान और अमेरिका भी उस पर झपटते देखे जायँगे। यह राष्ट्र चाहे भारत पर राज्य करने की अभिलाषा से न झपटें पर उसका कच्चा माल दबोचने के लिये अवश्य झपटेंगे और फलतः उनमें आपस में मत्सर और द्वेष की उत्पत्ति होकर अन्त को युद्ध तक की नोवत पहुंचेगी। जब तक भारत की भीतरी व्यवस्था और व्यापार नीति के विषय में पूर्ण स्वराज्य नहीं दिया जाता और जब तक "ह्वाइट हाल" (इंग्लैंड) में बैठ कर यह नीति स्थिर की जाती है तब तक भारतवर्ष एशिया और युरोप में आशंका का भाव बना रहेगा। इसलिये जनता की शान्ति और पूर्वीय द्वीप में राष्ट्रसङ्घ के आधार स्तम्भ की दृष्टि से भारत को अपने भीतरी प्रबन्ध में स्वराज्य देना आवश्यक है।

कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका

आदि की तरह भारत को भी साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य मिले बिना कुल संसार की मनुष्य संख्या के पांचवें भाग में (भारत में) शान्ति, सन्तोष की स्थिति असम्भव है। स्वराज्य के बिना सच्ची उन्नति नहीं हो सकती। विदेशी शासन में रहने से प्रतिभा को उभरने की जगह नहीं मिलती; आत्म-विश्वास की तो जड़ ही कट जाती है। पराधीनता, राष्ट्रों को अगणित अदृश्य मार्गों से आचार भ्रष्ट कर देती है और राष्ट्र की नैतिक और आर्थिक उन्नति को रोक देता है।

अतएव भारत अपनी अन्तर्व्यवस्था के पेचीले सवालों को सुलझाने के लिये स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार मांग रहा

है। इसको वह अपना पैदायशी हक़ कहता है। विदेशी मनुष्य इन सवालों को नहीं सुलझा सकते। पाश्चात्य सभ्यता की जल वायु में पले हुए अधिकारी कितने ही बुद्धिमान क्यों न हों, पर पश्चिमीय सभ्यता के रंग में एक दम रंगे हुए होने से और भारतीय सभ्यता के वास्तविक और सच्ची सहानुभूति से रहित होने से इतनी बड़ी भारतीय जनता के भाग्य के मार्ग दर्शक बनने के अयोग्य हैं, इसलिये भारतीय प्रश्नों के सरल करने की ज़ुम्मेवारी उन्हें अपने ऊपर नहीं लेना चाहिये। इसीलिये राष्ट्रीय महासभा ने और मुसलिम लीग ने भारत के लिये स्वभाग्य-निर्णय मांगा है।

भारत के साथ स्वभाग्य-निर्णय का प्रयोग न करनी किसी प्रकार भी न्याय संगत नहीं। इस कार्य में वे विदेशी जिन्हें भारत की अवस्था का ज्ञान नहीं है और जो थोड़ी पूंजी लगा कर अनुचित लाभ उठा रहे हैं, वे ही बाधक हैं। यह बात स्वीकार की जाती है कि भारत की सभ्यता रोम और यूनान की सभ्यता से भी बहुत अधिक प्राचीन और आदरणीय है। स्वयं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भी अनेक बार कहा है कि जब यूरोप ने जंगलीपन छोड़ा है उससे शताब्दियों पहले भारत संसार का सभ्य राष्ट्र था। विदेशी सहायता और हस्तक्षेप के बिना भारतीय समाज हज़ारों वर्षों तक सुसभ्य रही है। भारत पर सिकन्दर के आक्रमण होने के कई सो वर्ष पहले भारत के भिन्न भिन्न भागों में प्रजा सत्तात्मक शासन प्रणाली की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इसी से सम्पूर्ण शिक्षित भारतवासी अपने आप को ऐसी शासन-पद्धति चलाने के अयोग्य कहा जाना नहीं सुन सकते। उसका बड़े क्रोध से प्रतिवाद करते हैं। मुझे पूरा भरोसा है कि भारत

की दरिद्रता, शारीरिक अधःपात, साम्पत्तिक उन्नति शिल्प सम्बन्धि और प्रारम्भिक शिक्षा तथा जाति और रिवाज सम्बन्धि कठिन प्रश्नों का निर्णय विदेशी सभ्यता के पले हुए विदेशी द्वारा होना असम्भव है; इस कार्य को तो एकमात्र भारतीय ही सफलता पूर्वक कर सकते हैं। ब्रिटिश मज़दूर दल भी इस बात को स्वीकार करता है उनका प्रस्ताव यह है:—

यह मज़दूर दल की कान्फ्रेंस "भारत के लिये स्वराज्य" की नीति की पुष्टि करती है और इस का विश्वास है कि, वह समय आ गया है कि भारतवासी अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों के बराबर ही अपने मामलों का प्रबन्ध करने के लिये योग्य हैं। यह कान्फ्रेंस इस आवश्यक सुधार को प्राप्त करने के लिये सब तरह से मदद करने की प्रतिज्ञा करती है।" (नौटिंघम कान्फ्रेंस, २३ जनवरी, १६१८)

सुधार योजना के सम्बन्ध में भारत के २५ करोड़ मनुष्यों का एक वाक्य होना असम्भव है। जर्मनी के अधिकार में रहने के दिनों में, बेल्जियम में ऐसे निर्लज्ज लोग निकल आये थे, जो कहते थे कि हमें जर्मनी की ही हुकूमत में सुख है। फिर भारत में कुछ ऐसे लोग दिखाई पड़ जाँय तो क्या आश्चर्य है? तथापि यह लोग भी भारत को स्वराज्य के अयोग्य नहीं समझते केवल उनके विचारों में अधिकारियों की निगाह पहचान कर बात करने में देश का भला जान पड़ता है। भारतीय अपने मतभेदों को दूर कर समझौता करने की योग्यता रखते है। सन् १६१६ में लखनऊ की कांग्रेस में हिन्दू मुसलमानों की राजनैतिक आकांक्षाओं की एकता होना इस योग्यता का सब से उत्तम प्रमाण है। अधिकारियों के कोप भाजन होने का भय प्रत्यक्ष रहते भी सर्वसाधारण स्व-

भाग्य-निर्णय की मांग कर रहे हैं और सुधार योजना को "असन्तोषजनक और निराशा पूर्ण" बता रहे हैं। (इसके बाद इस आवेदन पत्र में भारत की वर्तमान शासन-पद्धति का स्वरूप समझाते हुए बताया गया है कि मांटेगू—चेम्सफोर्ड योजना के अनुसार उसमें कितना परिवर्तन होगा। अनन्तर कांग्रेस स्कीम से तुलना करते हुए मांटेगू योजना के दोष दिखाये गये हैं।)

सरकारी और गैर सरकारी योजना की तुलना से यह सिद्ध है कि स्वाधीनता ही सारे सुधारों की जड़ है। पर यह तत्व सरकार के ध्यान में नहीं आ सकता। अनेक बाधाओं से स्वयं रास्ता ढूंढ निकालने के लिये स्वाधीनता की आवश्यकता है। वर्तमान सभ्यता के लिये परीक्षा के तौर पर बहुत अधिक समय के लिये टाल रखना और दसवें वर्ष जांच की व्यवस्था करना असत्य है। भारतीय प्रधान सरकार के अधिकारों में हिस्सा चाहते हैं। यह अधिकार पाने से जनता की ऐसी स्थिति हो सकती है कि वह स्वभाग्य-निर्णय सिद्धान्त के अनुसार निश्चय करे कि देश को कितने प्रान्तों में बांटा जाय, उनकी सीमायें कहां हों, स्वराज्य का पहला ग्रास कितना बड़ा हो, भीतरी व्यवस्था के संबंध में कुल अधिकार कितने दिन में लेने से पच सकेंगे इत्यादि।

भारतवासी साम्राज्य से अलग होना नहीं चाहते, इस बात का अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों को विश्वास दिलाने के लिये हम जल स्थल सेना, वैदेशिक सम्बन्ध, युद्ध और सन्धि आदि के अधिकार नहीं मांगते। परन्तु इस दशा में भी शर्त यह होगा कि स्थल सेना और जल सेना के उच्च पदों पर अंग्रेज़ों के समान ही भारतीयों की भी नियुक्ति होगी। भार-

तीय इस सीमा के भीतर कुछ समय के लिये रहने को तैयार हैं जिससे ब्रिटिश सरकार को वे अपने सद्भाव का भरोसा दिला सकें, इस भरोसे पर कि पंद्रह वर्ष के अन्दर हम स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों से सब बातों में बराबर हो जाँय।

भारत की राष्ट्रीय महासभा के निर्वाचित प्रतिनिधि की हैसियत से मेरी प्रार्थना है कि उपनिवेशों की तरह भारत को भी राष्ट्रसंघ में अपना प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाय और यह घोषणा करदी जाय कि भारतीय स्वराज्य के योग्य और सभ्य हैं, और उन्नतिशील राष्ट्र होने से वे स्वभाग्य-निर्णय का सिद्धान्त काम में लाये जाने के अधिकारी हैं; तथा उस सिद्धान्त के अनुसार उन्हें अधिकार है कि वे अपनी परिस्थिति के अनुरूप प्रजा सत्ता के सिद्धान्त पर अपनी राज्य-पद्धति का स्वरूप स्थिर करें। सत्य शास्वतता और 'बलवान सो राजा' सिद्धान्त पर उसको जो विजय मिली है, उसको ध्यान में रखते हुए भारत को स्वभाग्य निर्णय का अधिकार मिलना आवश्यक है। इस दान का प्रकाश्य वचन मिलने से ३१ करोड़ अन्तः करण तो अत्यन्त उत्साह और हार्दिक कृतज्ञता से उछलने लगेंगे हो पर इस से अधिक महत्वशाली लाभ यह होगा कि शान्ति का बीमा लिया जा सकेगा। भारत सुख समृद्धिशाली होगा और भारत जैसे विशाल देश का ब्रिटेन से लाभदायक सम्बन्ध बना रहना निश्चित हो जायगा।

(हस्ताक्षर) बाल गंगाधर तिलक।

केम्ब्रिज युनीवर्सिटी

लो० तिलक और श्री० केलकर ता० ४ जून सन् १९१९ को केम्ब्रेज युनीवर्सिटी में पधारें। यहां भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के ८०—९० विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन लोगों की अलग सभा है। लोकमान्य ने 'भारत के प्रति तुम्हारा कर्तव्य' पर उपदेश देते हुए पूछा "तुम लोग ऊंचे दर्जे की शिक्षा और स्वतंत्रता की जल वायु में उपजने वाले विचार लेकर भारत को जानेवाले हो! परन्तु तुम में से कितने युवकों ने निरी स्वार्थ साधन की मशीन न बन कर देश हित के लिये अपने आपको उत्सर्ग करने का निश्चय किया है?" इस पर बहुत से विद्यार्थियों ने उत्तर दिया कि हम ठीक आपके आदर्श के अनुसार आचरण करेंगे। एक ब्राह्मण कुमार ने कहा कि आपके दृष्टान्त से मैंने पहिले ही निश्चय कर लिया है कि सिविल सर्विस पास कर लूंगा पर नौकरी न करूंगा और अपना जीवन देश की सेवा में लगा दूंगा।

पंजाब के अत्याचार

पंजाब के हत्याकांड के विषय में जो कांग्रेस की तरफ़ से जांच कमेटी बैठी थी उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि पंजाब में १२०० आदमी मरे और ३६०० घायल हुए। जब यह बातें विलायत पहुंची तो लो० तिलक ने वहां पर जगह जगह सभाऐं कर घोर आन्दोलन शुरू किया। ता० २० अक्टूबर सन् १९ को लंडन के कैक्स्टन हाल में डा० जी० बी० क्लार्क की अध्यक्षता में पंजाब के अत्याचारों का प्रतिवाद करने के लिए एक बड़ी भारी सभा हुई उसमें लोकमान्य ने कहाः—
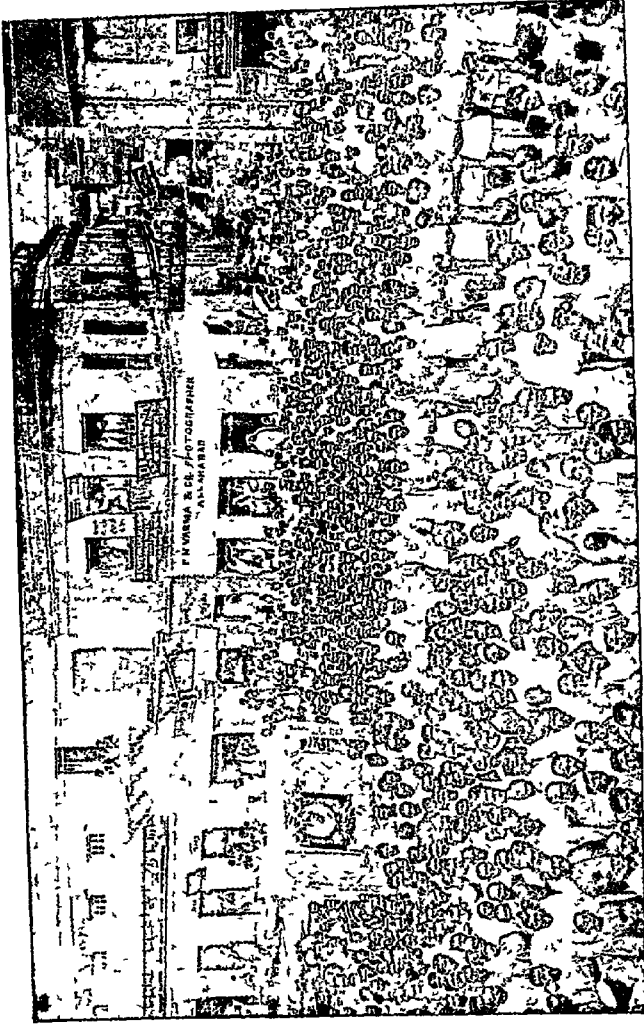
प्रयाग में लो० तिलक की अस्थियों का जुलूस ।

क्योंकि मार्शल ला जारी किया गया था, इसलिये वहां पर ज़रूर गदर हुआ होगा। ला० हरकिशनलाल सरीखे लोगों ने भी मार्शल ला की घोषणा के पहले सत्याग्रह आन्दोलन का समर्थन किया था इसीलिये उन लोगों पर भी वागियों की तरह मुक़द्दमा चलाया गया। इस हत्याकांड के दो मास पूर्व सर ओडायर ने पंजाब प्रदेश को संन्तोषी और शान्ति प्रिय बतलाया था। यदि अधिकारियों को माफ़ी मिलने में यह कारण बताया जाता है कि उन्होंने नेक नीयती से काम किया था तो मैं कहता हूं कि लोगों ने भी नेकनीयती से काम किया था और इसीलिये उन्हें भी छोड़ देना चाहिये। यदि हिन्दुस्तानियों पर केस चलाया गया है तो वाइसराय पर भी लंडन की अदालत में खुली तौर से मामला चलाया जाना चाहिये। मैं कहता हूं कि सर ओडायर पर तो यहां की अदालत में अवश्य ही मामला चलाना चाहिये। जब कि भारत सरकार ने खुद ही कह दिया है कि भारत में गदर था तो अब उसकी ही नियुक्त की हुई जांच कमेटी तो उसी की बात को और भी पुष्ट करेगी। भारत के लोगों ने तो केवल उपवास किया था तथा अपनी दुकानें बन्द रक्खी थी। अगर अंग्रेज अपने कर्त्तव्य को भूल जायँगे तो भारी खलबली मचेगी। हम साम्राज्य के भीतर रह कर ही स्वतंत्रता चाहते हैं। यदि कोई स्वेच्छाचारिणी सरकार वैध कामों को ही गदर समझती है तो यह जो लड़ाई लड़ी गई और इसमें सहायता दी गई वह सब व्यर्थ ही गई। भारतवर्ष अपनी स्वतंत्रता के लिये लड़ने के लिये हमेशा तैयार है और मार्ग में होने वाले कष्टों को सहने के लिये भी वह तैयार है।

लो० तिलक के व्याख्यान

(यह व्याख्यान लो० तिलक ने विलायत से लौटने पर हिन्दुस्थान में दिये थे ।)

लो० तिलक के विलायत से लौटने पर मि० बेपटिस्टा के सभापतित्व में जो लोकमान्य को जनता की ओर से मानपत्र ता० २७ नवम्बर सन् १९ को दिया गया था उसके उत्तर में लो० तिलक ने कहाः—

जिस उद्देश्य से हम इंग्लैंड गये थे, यद्यपि वह पूरा नहीं हुआ तथापि हम अपने कार्य्य और आशा को नहीं छोड़ेंगे। सरकार से हमारा साफ़ साफ़ कहना है कि जब तक पंजाब में उसकी की हुई भूलें नहीं सुधारी जावेंगी और अपराधी दंड नहीं पावेंगे तब तक भारत में शान्ति नहीं रह सकती। केवल मांटेगू सुधारों से लोग सन्तुष्ट नहीं होंगे। इस बिल (सुधार) से हिन्दुस्थान में शान्ति होना असम्भव है। विलायत का मज़दूर दल हिन्दुस्थान के पक्ष में है। वह हिन्दुस्थान को स्वराज्य दिलाने में यथाशक्ति सहायता करने का वचन देता है। हिन्दुस्थान को निराश नहीं होना चाहिये। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये लगातार प्रयत्न करना चाहिये। जो मिलता है उस से सन्तुष्ट न होइये पर पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के लिये आन्दोलन करते रहिये अब सोने का समय नहीं है पर ज़ोर से आन्दोलन करने का समय है।

आन्दोलन जारी रक्खो

(यह व्याख्यान ता० २२ मार्च सन् १९२० में देहली में दिया था।)

गत २२ मार्च को बड़ी धूमधाम से लो० तिलक की सवारी निकाली गई—लगभग सात सहस्र आदमी मौजूद थे। लोकमान्य को देहली की जनता की ओर से एक मानपत्र भी भेंट किया गया था। एक महती सार्वजनिक सभा में सभापति की हैसियत से आपने कहा कि आप लोग सुधारों को उसी रूप में ग्रहण कीजिये जिसके लायक वे हैं और सरकार को भी अपनी वैसी ही सहयोगिता का परिचय दीजिये। हम केवल सम्राट के प्रति राजभक्ति रखते हैं इसलिये अधिकारीतंत्र और आप के बीच में 'जिस राजभक्तिपूर्ण सहयोग की पुकार उठाई जा रही है वह कुछ भी नहीं है। दोनों (सरकार और प्रजा) तरफ से होनेवाला सच्चा सहयोग कहलाता है न कि सहयोग यह हो सकता है कि अधिकारीगण राजभक्तिपूर्ण सहयोग की आड़ में अपने स्वेच्छाचारिता को मन माने ढंग से काम में लावें। भारतवर्ष को निरन्तर कहते रहना चाहिये कि वह आत्म-शासन करने में पूर्ण समर्थ हो चुका है। मिश्र तथा आयर्लैंड की स्थिति इस समय बड़ी गड़बड़ी में पड़ी हुई है। समस्त संसार इस वक्त एक सनसनी से भरे हुए समय में गुज़र रहा है। सम्भवतः ऐसा अवसर शताब्दि भर में एकाध वार हो आता होगा। यदि इस उलट पुलट के समय भारतवर्ष अपनी मांग जोश और खरोश के संग रख सका, जिसके पाने का वह हक़दार है, तो वह अपने जन्म-सिद्ध अधिकार को पा सकता है। लेकिन

यदि भारतवर्ष अपने सुधारों के ही जाल में फंसा रहा और उसी में लवलीन हो गया तो फिर संसार की स्थिति ठंडी पड़ती जायगी, और फिर यह असंभव सा होगा कि फिर से स्थिति उपयुक्त बनाई जा सके। उथल पुथल का यह युग व्यतीत हो चुकेगा पर भारतवर्ष तब भी अपनी पात्रता का दम भरता हुआ ज्यों का त्यों बना रहेगा। सिविल सर्विस भले ही अच्छी वस्तु हो, पर मैं तो इतना जानता हूं कि नौकर चाहे कितना ही योग्य हो उसे मालिकपना कभी न दिखाने देना चाहिये। अधिकारी लोग तो वही "टुकड़े करो और शासन करो" वाली नीति काम में लावेंगे परन्तु सर्व-साधारण को इससे सचेत रहना चाहिये। अब्राह्मणों और ब्राह्मणों का ही प्रश्न ले लीजिये—ऐसे मामलों में अधिकारी-वर्ग को अपने खेल खेलने का अवसर मिल जाता है इसलिये आप अपने वोटों की रक्षा करके होशियारी से काम कीजिये। जब तक अन्य उपनिवेशों को भांति पूर्ण दायित्व पूर्ण शासन न मिल जाय तब तक चैन न लीजिये और अपना आन्दोलन खूब ज़ोर शोर से जारी रखिये। अन्त में मेरा निवेदन है कि भारतमाता के सार्वजनिक लाभ के लिये आप सब लोगों को—चाहे आप हिंदू हों, मुसलमान हो या ईसाई हो—एक साथ मिलकर काम करना चाहिये।

सुधार कानून रुपये में दो पैसे है।

हंटरकमिटी रिपोर्ट निकल जाने से उस पर विचार करने के लिये ता० ३० मई सन् १९२० को काशी में आल इंडिया कांग्रेस कमिटी का अधिवेशन हुआ।

उसमें लो० तिलक ने जो भाषण दिया उसका सारांश इस प्रकार है:—

लोकमान्य तिलक ने राजधर्म पर कुछ देर हिन्दी में और फिर अंग्रेज़ी में व्याख्यान दिया। आपने कहा कि राजा का धर्म प्रजा की रक्षा और भलाई करना है परन्तु लोगों की निगरानी विना राजा स्वेच्छाचारी हो जाता है जिस से सब प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। आपने प्राचीन हिन्दू राजधर्म और वर्तमान पाश्चात्य राजध र्म की तुलना करते हुए कहा कि इस देश में नौकरशाही राजा है। हमें उस पर दृष्टि रखनी होगी। अपना अधिकार अपने हाथ में लेना है कि जिस से जलियानवाला बागकी सी घटना इस देश में फिर कभी न हो। जलियानवालावाग़ में हत्याकाण्ड मचानेवाले डायर को क्या सज़ा हुई है? यही कि वह इस देश में नौकरी नहीं पावेगा परन्तु साम्राज्य के दूसरे देशों में तो नौकरी पा सकता है। यह सज़ा नहीं है तवादिला है। लार्ड चेम्सफोर्ड और सर ओडायर यथा स्थान हैं मि० मांटेगू ने उनकी भर पूर बड़ाई की है। लोकमान्य ने कहा कि हमें इसी बात के लिये उद्योग करना है कि हम अधिकार अपने हाथ में लें। यही स्वराज्य है। जिम्मेदार गवर्नमेन्ट प्राप्त करने के लिये सब जगह राजनैतिक आन्दोलन होना चाहिये और खूब होना चाहिये। सारे संसार में स्वभाग्य-निर्णय और स्वराज्य की चर्चा है। इस समय हमें चुप न वैठना चाहिये। सुधार का कानून क्या है? उसने हम को रुपये में सिर्फ दो पैसे का अधिकार दिया है और नौकरशाही चाहती है कि हम उसी को लेकर १० वर्ष सन्तुष्ट रहें परन्तु हमको कभी सन्तुष्ट न होना चाहिये। और अपने हक के लिये लगातार लड़ते भग-

ड़ते रहना चाहिये। संसार भर में हलचल है इस समय अपना आन्दोलन जारी रखने से हमें अपना अधिकार प्राप्त होगा। आप लोगों को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला है। उन्हीं लोगों को कौंसिल के लिये प्रतिनिधि चुनिये जो अपने हक के लिये लड़ें। हां में हां मिलाने वालों को कभी मत चुनिये।

कांग्रेस के लोकशाही-दल की नीति।

कांग्रस के डेमोक्रेटिक (लोकशाही) दल की नीति उसके नाम से ही प्रकट होती है। उसके मूल तत्व दो हैं; एक तो कांग्रेस पर अटल प्रेम, और दूसरे डेमोक्रेसी (लोकशाही) पर दृढ़ विश्वास। इस दल का विश्वास है कि भारतीय राष्ट्र के सम्मुख जो जो प्रश्न हैं, उन सब को हल करने की शक्ति लोकशाही के सिद्धान्तों में विद्यमान् है। इस कार्य को करने के लिए दो ही दिव्यास्त्र हैं; पहला शिक्षा-प्रचार और दूसरा मतदारों की संख्या-वृद्धि। यह दल इस बात का भी प्रतिपादन करेगा कि जाति भेद अथवा रूढि के कारण नागरिक, व्यावहारिक तथा सामाजिक विषयों में जिस किसी की भी अयोग्यता समझी जाती हो तो वह दूर की जाय धार्मिक विषयों में सहिष्णुता होना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति का धर्म उसके लिए पवित्र है। यदि दूसरा कोई उसके धर्म में बाधा डालने का प्रयत्न करे तो सरकार का कर्त्तव्य है कि वह उससे उस धर्म की रक्षा करे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों की इस माँग की भी कि उनकी धार्मिक भावना तथा कुरान शरीफ़ के वचनानुसार खिलाफ़त के प्रश्न का निर्णय किया जाय, यह दल पुष्टि करता है।

अखिल मानव-जाति में बन्धुभाव की वृद्धि और मनुष्य मात्र की उन्नति होने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य-मण्डल में भारतवर्ष भी सम्मिलित होना चाहिए और वह उसका एक अवयव रहे, यह दल इस बात को चाहता है कि जिस प्रकार स्वयं ग्रेटब्रिटन तथा अन्य देश साम्राज्य-मण्डल के हिस्सेदार हैं, उसी प्रकार भारतवर्ष का भी दर्जा उनके बराबर रहे और उसका शासन पूर्णतया उसी के हाथ में हो। बृटिश-साम्राज्य के किसी भी हिस्से में भारत-निवासियों को अन्य नागरिकों के समान स्वत्व मिलना चाहिए और जहाँ पर इस प्रकार के स्वत्व न मिलें वहाँ पर "जैसे के साथ तैसा" इस सिद्धान्त के अनुसार प्रतिरोध करने का अधिकार भारतवर्ष को मिलना चाहिए। जो राष्ट्र-सङ्घ संसार में शान्ति स्थापन करने वर्तमान और भावी राष्ट्रों का अङ्ग-भङ्ग न होने देने उन्हें अखण्ड रखने, सब राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और सम्मान की रक्षा करने, एक देश की दूसरे देश द्वारा होनेवाली व्यापारिक लूट को बन्द करने इत्यादि बातों के लिए निर्म्माण हुआ है; उसका यह दल सहर्ष अभिनन्दन करता है?

इस दल का विश्वास है कि उत्तरदायित्व पूर्ण प्रातिनिधिक शासन-प्रणाली द्वारा राज-काज के लिए इस देश के लोग पूर्णतया योग्य हैं। अतएव यह दल चाहता है कि इस देश की शासन-प्रणाली कैसी होनी चाहिए और कायदे-कानून किस प्रकार के हों, इन सब बातों के निर्णय करने का अधिकार "स्वयं-निर्णय" के सिद्धान्त के अनुसार केवल भारतवासियों को ही होना चाहिए। मांटेगू साहब का "रिफार्म ऐक्ट" अपर्य्याप्त, असन्तोषकारक और निराशा-जनक है। अतएव, यह दल "रिफार्म एक्ट" के दोषों को

मिटाने के लिए इंग्लैण्ड के मज़दूर-दल की तथा भारत से सहानुभूति रखने वाले पालियामेंट के सभासदों की सहायता से बहुत शीघ्र एक संशोधक बिल पार्लियामेंट में पेश करने का प्रयत्न करने वाला है। इस संशोधक बिल में इस प्रकार की योजना की जायगी कि भारतवर्ष के लोगों को स्वराज्य के सम्पूर्ण स्वत्त्व प्राप्त हों, अर्थात् भारतीय सेना-विभाग पर हिन्दुस्थानियों का पूर्ण अधिकार रहे, आर्थिक-स्वतन्त्रता उन्हें प्राप्त हो तथा जनता के समस्त नैसर्गिक स्वत्त्वों की हामी उन्हें कानून के अनुसार भरी जाय। इस उद्देश को पूर्ण करने के लिए इस दल का विचार है कि भारतवर्ष तथा राष्ट्र-सङ्घ के अन्तर्गत अन्य देशों में दृढता एवं निश्चयता के साथ भारी आन्दोलन किया जाय और ऐसा करने के लिए यह दल औरों से भी अनुरोध करता है। सारांश यह है कि इस दल के मन्त्र-वाक्य "शिक्षा, आन्दोलन और सङ्गठन" रहेंगे।

इस दल का विचार है कि मॉंटेगू साहब के रिफार्म एक्ट के अनुसार जो कुछ भी मिल सके उसे प्राप्त करके, शीघ्रही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के काम में उसका उपयोग किया जाय। इस कार्य में लोकमत के अनुसार जिस जगह अभीष्ट हो वहाँ पर सहकारिता और जहाँ आवश्यकता हो वहाँ वैधरीति से विरोध किया जायगा।

यह तो हुई डेमोक्रेटिक दल के मतों और हेतुओं की तात्त्विक विवेचना। अब इनके अनुसार यह दल पहले कार्य क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार कार्य्यों को हाथ में लेगा किन्तु इससे यह न समझ लिया जाय कि यह सूची पूर्ण हो गई है, अब इस और कुछ सम्मिलित करने को रहा ही नही है।

राजकीय (Imperial) शासन में सुधार।

१. रौलेट एक्ट, प्रेस एक्ट, आर्म्स एक्ट आदि के सदृश दमनकारक क़ानूनों को बन्द कराना; फौजदारी के मुकदमों में और विशेष कर राजनैतिक मामलों के मुकदमों में अभियोगी के देश-भाइयों की ज्यूरी (पंचायत) के सन्मुख ही उसका विचार किया जाना; राजनैतिक अपराधियों को सख़्त क़ैद की सज़ा देने की प्रथा को नष्ट करना तथा ग्रेटब्रिटेन की रीति के अनुसार जेलखानों के नियमों में ऐसा सुधार किया जाय जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के अपराधियों के साथ तदनुकूल ही व्यवहार किया जा सके।

२. मज़दूरी की ऐसी उचित दर नियत करना जिससे तथा खेतीबारी के कारख़ानों में मज़दूरों को उनके परिश्रम के बदले में न्यायानुसार मज़दूरी मिल सके, काम करने का उचित समय (घंटे) निश्चित करना, मज़दूरों के लिए रहने के घरों का सुभीता करना, कारख़ाने वालों में तथा मज़दूरों में जो कुछ भी टएटे-बखेड़े उत्पन्न हों उन्हें न्याय और सम-दृष्टि से निर्णय करने, का प्रबन्ध करना एवं इन बातों के लिए एक योग्य संस्था की स्थापना करना।

३. खाद्य वस्तुओं तथा अन्य आवश्यक पदार्थों की मँहगी कम करने के लिए तथा ऐसा प्रबन्ध करने के लिए जिससे इन वस्तुओं की कमी देश में न होने पावे, इन वस्तुओं के निर्गत पर कर लगाकर तथा अन्य उपायों द्वारा उनको रोक करना।

४. स्वदेशी—आन्दोलन को और देश के उद्योग-धन्धों को उत्तेजना देने के लिए सरकार से द्रव्य की सहायता कराना,

संरक्षक कर लगवाना तथा अन्य शिष्ट-सम्मत उपायों की योजना करना।

५. रेलवे का प्रबन्ध कम्पनियों के हाथ से निकाल कर राष्ट्र के अधिकार में लेना, किराये की दर इस प्रकार की रखना जिससे देश में औद्योगिक पुनरुज्जीवन हो, तथा वर्तमान पक्षपात पूर्ण और खास रिआयत की प्रणाली को बन्द करना।

६. समस्त विभागों के ख़र्च को, विशेष करके सेना-विभाग के खर्च को पहले कम करना तथा जब बहुत ही आवश्यकता हो तभी नया कर लगाना। यह कर इस प्रकार से लगाया जायगा कि व्यक्ति, कम्पनियाँ अथवा संस्थाओं पर उनकी हैसियत के मुआफिक बोझा पड़े।

७. राष्ट्रीय स्वयं-सेवकों की एक ऐसी सेना बनाना जो भारतीय अफ़सरों के अधिकार में रहे; सेना, नौसेना तथा आकाश यान-विद्या की शिक्षा का प्रबन्ध करना; तथा सेना के सभी विभागों में जातिभेद किंवा वर्ण-भेद न रखते हुए भारतीय उम्मेदवारों की नियुक्तियाँ अफसरों के स्थान पर करने का प्रबन्ध करना।

८. भारत-सरकार के समस्त विभागों में जो स्थान प्रति स्पर्द्धा-मूलक हैं, उनका परीक्षायें भारतवर्ष में ही लेकर योग्य उम्मेदवारों का चुनाव करना।

९. राष्ट्रीय एकता करने के लिए सब प्रान्तों के लोगों के साधारण व्यवहारार्थ एक देशी भाषा का प्रचार करना, भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों का व्यवहार अधिकाधिक प्रेम पूर्ण करना, विशेष करके हिन्दू-मुसलमानों की एकता को दृढ़ करना।

१०. भाषा के अनुसार प्रान्त-विभाग करना।

प्रान्तीय सुधार।

१. प्रत्येक प्रान्त के लिए अविलम्ब्य-पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना।

२. कृषि की रैयतवारी पद्धति के अनुसार उचित एवं स्थायी लगान कायम करना।

३. पशुओं की वन-चराई, ईंधन, किसानों के लिए आवश्यक लकड़ी तथा अन्य फुटकर जंगली वस्तुओं के लिए रिज़र्व तथा प्रोटेक्टेड फारेस्ट पर ग्राम-पंचायत का अधिकार रखना।

४. भेट बेगार और सरबराई की मनाई करना।

५. जहाँ तक हो सके उच्च-शिक्षा देश भाषा द्वारा दिलवाना।

६. लड़के और लड़कियों को मुफ्त और अनिवार्य्य शिक्षा देना तथा इस कार्य्य को शीघ्र ही करने के लिए प्रान्तिक निधि में से म्युनिसिपालटियों तथा लोकल बोर्डों को अधिक ग्रान्ट और अधिक सहायता देना।

७. ग्राम-पंचायतों का पुनरुद्धार करके उन्हें अपनी अधिकार-सीमा में न्यायानुसन्धान तथा अमल-दरामद का अधिकार देना।

८. मद्यपान बिलकुल बन्द कराना।

९. स्त्री-पुरुषों में भेद-भाव न मानते हुए मतदार-संघ की संख्या बढ़ाना।

१०. स्वास्थ्य-मन्त्री की नियुक्ति करके उसकी निगरानी में आरोग्य-शास्त्र के अनुसार देश में आरोग्य की वृद्धि करना।

११. इस समय तक जनता ने जिन सुधारों की सूचना की है तथा जो सर्व-सम्मति से निश्चित हुए हैं, उन सुधारों का व्यवहार में लाना। उदाहरण के लिए, कृषि-सुधार, नहरों की वृद्धि, सहकारी आन्दोलन, देश की स्थिति के अनुकूल औद्योगिक तथा यान्त्रिक शिक्षा, औषधोपचारों का सुभीता और देशी वैद्यक को उत्तेजना देना इत्यादि।

कांग्रेस के लोकशाही-दल की नीति ऊपर लिखे अनुसार है। जो उम्मेदवार इन विचारों को मान्य करेंगे और उन पर दृढ़ रहेंगे, वही कांग्रेस डेमोक्रेटिक दल के उम्मेदवार समझे जा सकेंगे। जनता से इस दल की प्रार्थना है कि वह इसी प्रकार के उम्मेदवारों को अपना मत दे। इस दल को आशा और भरोसा है कि हमारी प्रार्थना को सब मतदारों की ओर से उत्साहजनक सहानुभूति प्राप्त होगी और भावी कौन्सिल के चुनाव में यह दल विजयी होकर कांग्रेस डेमोक्रेटिक दल के विचारों को कार्य्य में परिणत कर सकेगा।

अनुवादक—पशुपाल वर्म्मा।

Printed by Krishna Ram Mehta, at the Leader Press, Allahabad.